# प्रेमचंद



# मानसरोवर भाग-7

[हिन्दीकोश]

Tittle: Manasarovar Bhag-7

Author: Premchand

Release Date: 31 May 2020

Edition: 2.0

Language: Hindi

# मानसरोवर — भाग 7


1. जेल
2. पत्नी से पति
3. शराब की दुकान
4. जुलूस
5. मैकू
6. समर-यात्रा
7. शान्ति
8. बैंक का दिवाला
9. आत्माराम
10. दुर्गा का मन्दिर
11. बड़े घर की बेटी
12. पंच-परमेश्वर
13. शंखनाद
14. जिहाद
15. फ़ातिहा
16. वैर का अन्त
17. दो भाई
18. महातीर्थ
19. विस्मृति
20. प्रारब्ध
21. सुहाग की साड़ी
22. लोकमत का सम्मान
23. नाग-पूजा

# जेल

मृदुला मैजिस्ट्रेट के इजलास से जनाने जेल में वापस आयी, तो उसका मुख प्रसन्न था। बरी हो जाने की गुलाबी आशा उसके कपोलों पर चमक रही थी। उसे देखते ही राजनैतिक कैदियों के एक गिरोह ने घेर लिया ओर पूछने लगीं, कितने दिन की हुई?

मृदुला ने विजय-गर्व से कहा — मैंने तो साफ-साफ कह दिया, मैंने धरना नहीं दिया। यों आप जबर्दस्त हैं, जो फैसला चाहें, करें। न मैंने किसी को रोक, न पकड़ा, न धक्का दिया, न किसी से आरजू-मिन्नत ही की। कोई गाहक मेरे सामने आया ही नहीं। हाँ, मैं दूकान पर खड़ी जरूर थीं। वहाँ कई वालंटियर गिरफ्तार हो गये थे। जनता जामा हो गयी थी मैं भी खड़ी हो गयी। बस, थानेदार ने आ कर मुझे पकड़ लिया।

क्षमादेवी कुछ कानून जानती थीं। बोलीं — मैजिस्ट्रेट पुलिस के बयान पर फैसला करेगा। मैं ऐसे कितने ही मुकदमे देख चुकी।

मृदुला ने प्रतिवाद किया — पुलिसवालों को मैंने ऐसा रगड़ा कि वह भी याद करेंगे। मैं मुकदमें की कार्रवाई में भाग न लेना

चाहती थी; लेकिन जब मैंने उनके गवाहों सरासर झूठ बोलते देखा, तो मुझसे जब्त न हो सका। मैंने उनसे जिरह करनी शुरू की। मैंने भी इतने दिनों घास नहीं खोदी है। थोड़ा-सा कानून जानती हूँ पुलिस ने समझा होगा, यह कुछ बोलेगी तो है नहीं, हम जो बयान चाहेंगे, देंगे। जब मैने जिरह शुरू की, तो सब बगलें झाँकने लगे। मैंने तीनों गवाहों को झूठा साबित कर दिया। उस समय जाने कैसे मुझे चोट सूझती गई। मैजिस्ट्रेट ने थानेदार को दो तीन बार फटकार भी बतायी। वह मेरे प्रश्नों का ऊल-जलूल जवाब देता था, तो मैजिस्ट्रेट बोल उठता था — वह जो कुछ पूछती हैं, उसका जवाब दो, फजूल की बातें क्यों करते हो। तब मियाँ जी का मुँह जरा-सा निकल आता था। मैंने सबों का मुँह बन्द कर दिया। अभी साहब ने फैसला तो नहीं सुनाया, लेकिन मुझे विश्वास है, बरी हो जाऊँगी। मैं जेल से नहीं डरती; लेकिन बेवकूफ भी नहीं बनना चाहती। वहाँ हमारे मंत्री जी भी थे और बहुत-सी बहनें थीं। सब यही कहती थी, तुम छूट जाओगी।

महिलाएँ उसे द्वेष-भरी आँखों से देखती हुई चली गयी। उनमें किसी की मियाद साल — भर की थीं, किसी की छह मास की। उन्होंने अदालत के सामने जबान ही न खोली थीं। उनकी नीति में यह अधर्म से कम न था। मृदुल पुलिस से जिरह करके उनकी नजरों में गिर गयी थी। सजा हो जाने पर उसका व्यवहार

क्षम्य हो सकता था, लेकिन बरी हो जाने में तो उसका कुछ प्रायश्चित ही न था।

दूर जा एक देवी ने का — इस तरह तो हम लोग भी छूट जाते। हमें तो यह दिखाना है, नौकरशाही से हमें न्याय की कोई आशा ही नहीं।

दूसरी महिला बोली— यह तो क्षमा माँग लेने के बराबर हैं। गयी तो थीं धरना देने, नहीं दुकान पर जाने का काम ही क्या था। वालंटियर गिरफ्तार हुए थे आपकी बला से। आप वहाँ क्यों गयी; मगर अब कहती है, मैं धरना देने गयी ही नहीं। यह क्षमा माँगना हुआ, साफ!

तीसरी देवी मुहँ बनाकर बोली — जेल में रहने के लिए बड़ा कलेजा चाहिए। उस वक्त तो वाह-वाह लूटने के लिए आ गयीं, अब रोना आ रहा हैं ऐसी स्त्रियों को तो राष्टीय कामों के नगीच ही न आना चाहिए। आंदोलन को बदनाम करने से क्या फायदा।

केवल क्षमादेवी अब तक मृदुला के पास चिंता में डूबी खड़ी थीं। उन्होंने एक उद्दंड व्याख्यान देने के अपराध में साल — भर की सजा पायी थीं दूसरे जिले से एक महीना हुआ यहाँ आयी थीं। अभी मियाद पूरी होने में आठ महीने बाकी थे। यहाँ की पंद्रह

कैदियों में किसी से उनका दिल न मिलता था। जरा-जरा सी बातों के लिए उनका आपस में झगड़ना, बनाव-सिंगर की चीजों के लिये लेडीवार्डरों की खुशामदें करना,घरवालों से मिलने के लिए व्यग्रता दिखलाना उसे पंसद न था। वही कुत्सा और कनफुसकियाँ जेल के भीतर भी थी। वह आत्माभिमान, जो उसके विचार में एक पोलिटिकल कैदी में होना चाहिए, किसी में भी न था। क्षमा उन सबों से दूर रहती थी। उसके जाति-प्रेम का वारापार न था। इस रंग में पगी हुई थी; पर अन्य देवियाँ उसे घमंडिन समझती थीं और उपेक्षा का जवाब उपेक्षा से देती थीं मृदुला को हिरासत में आये आठ दिन हुए थे। इतने ही दिनों में क्षमा को उससे विशेष स्नेह हो गया था। मृदुल में वह संकीर्णता और ईर्ष्या न थी, न निन्दा करने की आदत, न श्रृंगार की धुन, न भद्दी दिल्लगी का शौक। उसके हृदय में करुणा थी, सेवा का भाव था : देश का अनुराग था क्षमा न सोचा था। इसके साथ छह महीने आनन्द से कट जाएँगे; लेकिन दुर्भाग्य यहाँ भी उसके पीछे पड़ा हुआ था। कल मृदुला यहाँ से चली जाएगी। फिर अकेली हो जाएगी। यहाँ ऐसा कौन है, जिसके साथ घड़ी भर बैठकर अपना दुःख-दर्द सुनायेगी, देश चर्चा करेगी; यहाँ तो सभी के मिजाज आसमान पर हैं।

मृदुला ने पूछा — तुम्हें तो अभी आठ महीने बाकी है, बहन!

क्षमा ने हसरत के साथ कहा — किसी-न — किसी तरह कट ही जाएँगे बहन! पर तुम्हारी याद बराबर सताती रहेगी। इसी एक सप्ताह के अन्दर तुमने मुझे पर न जाने से क्या जादू कर दिया। जब से तुम आयी हो, मुझे जेल जेल न मालूम होता था। कभी-कभी मिलती रहना।

मृदुला ने देखा, क्षमा की आँखें डबडबायी हुई थीं। ढाढ़स देती हुई बोली — जरूर मिलूँगी दीदी! मुझसे तो खुद न रहा जाएगा। भान को भी लाऊँगीं। कहूँगी — चल, तेरी मौसी आयी है, तुझे बुला रही है। दौड़ा हुआ आयेगा। अब तुमसे आज कहती हूँ बहन, मुझे यहाँ किसी की याद थी, तो भान की। बेचारा — रोया करता होगा। मुझे देखकर रूठ जायेगा। तुम कहाँ चलीं गयी? मुझे छोड़कर क्यों चली गयी? जाओ, मैं। तुमसे नहीं बोलता, तुम मेरे घर से निकल जाओ। बड़ा शैतान है बहन! छन — भर निचला नहीं बैठता, सवेरे उठते ही गाता है — ' झन्ना ऊँता लये अमाला' 'छोलाज का मन्दिर देल में है।' जब एक झंडी कन्धे पर रखकर कहता है — 'ताली-छलाब पानी हलाम है' तो देखते ही बनता है। बाप को तो कहता है — तुम गुलाम हो। वह एक अँगरेजी कम्पनी में है, बार-बार इस्तीफा देने का विचार करके रह जाते हैं। लेकिन गुजर-बसर के लिए कोई उद्यम करना ही पड़ेगा। कैसे छोड़े। वह तो छोड़ बैठे होते। तुमसे सच कहती

हूँ, गुलामी से उन्हें घृणा है, लेकिन में ही समझती रहती हूँ बेचारे कैसे दफ्तर जाते होंगे, कैसे भान को सँभालते होंगे। सास जी के पास तो रहता ही नहीं। वह बेचारी बूढ़ी, उसके साथ कहाँ-कहाँ दौड़ें! चाहती है कि मेरी गोद में दबक कर बैठा रहे। और भान को गोद से चिढ़ है। अम्माँ मुझ पर बहुत बिगड़ेगी, बस यही डर लग रहा है। मुझे देखने एक बार भी नहीं आयें। कल अदालत में बाबू जी मुझसे कहते थे, तुमसे बहुत खफा है। तीन दिन तक तो दाना-पानी छोड़े रहीं। इस छोकरी ने कुल-मरजाद डूबा दी, खानदान में दाग लगा दिया, कलमुँही, न जाने क्या-क्या बकती रहीं मैं उनकी बातों को बुरा नहीं मानती। पुराने जमाने की हैं उन्हें। कोई चाहे कि आकर इन लोगों में मिल जाएँ, तो उसका अन्याय है। चल कार मनाना पड़ेगा। बड़ी मिन्नतों से मानेंगी। कल ही कथा होगी, देख लेना। ब्राह्मण खायेंगे। बिरादरी जमा होगी। जेल प्रायश्चित तो करना ही पड़ेगा। तुम हमारे घर दो-चार दिन रह कर तब बहन! मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगी।

क्षमा आनन्द के इन प्रसंगों से वंचित है। विधवा है, अकेली है। जलियाँवाला बाग में उसका सर्वस्व लुट चुका है, पति और पुत्र दोनों ही की आहुति जा चुकी है। अब कोई ऐसा नहीं, जिसे वह अपना कह सके। अभी उसका हृदय इतना विशाल नहीं हुआ है कि प्राणी — मात्र को अपना समझ सके। इन दस बरसों से

उसका व्यथित हृदय जाति सेवा में धैर्य और शांति खोज रहा हैं जिन कारणों ने उसके बसे हुए घर को उजाड़ दिया, उसकी गोद सूनी कर दी, उन कारणों का अन्त करने — उनको मिटाने-में वह जी-जान से लगी हुई थीं। बड़े-से-बड़े बलिदान तो वह पहले ही कर चुकी थी। अब अपने हृदय के सिवाय उसके पास होम करने को और क्या रह गया था? औरों के लिए जाति-सेवा सभ्यता का एक संस्कार हो, या यशोपार्जन का एक साधन; क्षमा के लिए तो यह तपस्या थी और वह नारीत्व की सारी शक्ति और श्रद्धा के साथ उसकी साधना में लगी हुई थी। लेकिन आकाश में उड़ने वाले पक्षी को भी तो अपने बसेरे की याद आती ही है क्षमा के लिए वह आश्रय कहाँ था? यही वह अवसर थे, जब क्षमा भी आत्म-समवेदना के लिए आकुल हो जाती थी। यहाँ मृदुल को पाकर वह अपने को धन्य मान रही थी; पर यह छाँह भी इतनी जल्दी हट गयी!

क्षमा ने व्यथित कंठ से कहा — यहाँ से जाकर भूल जाओगी मृदुला। तुम्हारे लिए तो रेलगाड़ी का परिचय है और मेरे लिए तुम्हारे वादे उसी परिचय के वादे हैं। कभी भेंट हो जाएगी तो या तो पहचानोगी ही नहीं, या जरा मुस्कराकर नमस्ते करती हुई अपनी राह चली जाओगी। यही दुनिया का दस्तूर है। अपने रोने से छुट्टी ही नहीं मिलती, दूसरों के लिए कोई क्योंकर रोये।

तुम्हारे लिए तो में कुछ नहीं थी, मेरे लिए तुम बहुत अच्छी थी। मगर अपने प्रियजनों में बैठकर कभी-कभी इस अभागिनी को जरूर याद कर लिया करना। भिखारी के लिए चुटकी भर आटा ही बहुत है।

दूसरे दिन मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुना दिया। मृदुला बरी हो गयी। संध्या समय वह सब बहनों से गले मिलकर, रोकर-रुलाकर चली गयी, मानो मैके से विदा हुई हो।

## 2

तीन महीने बीत गये: पर मृदुला एक बार भी न आयी। और कैदियों से मिलनेवाले आते रहते थे किसी-किसी के घर से खाने-पीने की चीजें और सौगातें आ जाती थी; लेकिन क्षमा का पूछने वाला कौन बैठा था? हर महीने के अन्तिम रविवार को प्रातः काल से ही मृदुल की बाट जोहने लगती। जब मुलाकात का समय निकल जाता, तो जरा देर रोकर मन को समझा लेती — जमाने का यही दस्तूर है

एक दिन शाम को क्षमा संध्या करके उठी थी कि देखा, मृदुला सामने चली आ रही है। न वह रूप-रंग है, न वह कांति।

दौड़कर उसके गले से लिपट गयी ओर रोती हुई बोली — यह तेरी क्या दशा है मृदुला! सूरत ही बदल गयी। क्या, बीमार है क्या?

मृदुला की आँखों से आँसुओं की झाड़ी लगी थी। बोली — बीमार तो नहीं हूँ बहन; विपत्ति से बिंधी हुई हूँ। तुम मुझे खूब कोस रही होगी। उन सारी निठुराइयों का प्रायश्चित करने आयी हूँ। और सब चिंताओं से मुक्त होकर आया हूँ।

क्षमा काँप उठी। अन्तस्तल की गहराइयों से एक लहर—सी उठती हुई जान पड़ी, जिसमें उनका अपना अतीत जीवन टूटी हुई नौकाओं की भांति उतराता हुआ दिखायी दिया। रुँधे हुए कंठ से बोली — कुशल तो है बहन, इतनी जल्दी तुम यहाँ फिर क्यों आ गयीं? अभी तो तीन महीने भी नहीं हुए।

मृदुला मुस्करायी; पर उसकी मुस्कराहट में रुदन छिपा हुआ था। फिर बोली — अब सब कुशल है। बहन, सदा के लिए कुशल है। कोई चिंता ही नहीं रही। अब यहाँ जीवन पर्यन्त रहने को तैयार हूँ। तुम्हारे स्नेह और कृपा का मूल्य अब समझ रही हूँ।

उसने एक ठंडी साँस ली और सजल नेत्रों से बोली — तुम्हें बाहर की खबरें क्या मिली होंगी! परसों शहरों मे गोलियों चली। देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है।

किसानों के पास रूपये हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें। अनाज का भाव दिन-दिन गिरता जाता है। पौने दो रुपये में मन भर गेहूँ आता है। मेरी उम्र ही अभी क्या है, अम्माँ जी भी कहती है कि अनाज इतना सस्ता कभी नहीं था। खेत की उपज से बीजों तक के दाम नहीं आते। मेहनत और सिंचाई इसके ऊपर। गरीब किसान लगान कहाँ से दें? उस पर सरकार का हुक्म है कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाए। किसान इस पर भी राजी हैं कि हमारी जमा-जथा नीलाम कर लो, घर कुर्क कर लो, अपनी जमीन ले लो; मगर यहाँ तो अधिकारियों को अपनी कारगुजारी दिखाने की फिक्र पड़ी हुई है। वह चाहे प्रजा को चक्की में पीस ही क्यों न डालें; सरकार उन्हें मना न करेगी। मैंने सुना है कि वह उलटे और शाह देती है। सरकार को तो अपने कर से मतलब हैं प्रजा मरे या जिये, उससे कोई प्रयोजन नहीं। अकसर जमींदारों ने तो लगान वसूल करने से इन्कार कर दिया है। अब पुलिस उनकी मदद पर भेजी गयी है। भैरोगंज का सारा इलाका लूटा जा रहा है। मरता क्या न करता, किसान भी घर-बार छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं। एक किसान के घर में घुसकर कई कांस्टेबलों ने उसे पीटना शुरू किया। बेचारा बैठा मार खाता रहा। उसकी स्त्री से न रहा गया। शामत की मारी कांस्टेबलों का कुवचन कहने लगी। बस, एक सिपाही ने उसे नंगा कर दिया। क्या कहूँ

बहन, कहते शर्म आती है। हमारा ही भाई इतनी निर्दयता करें, इससे ज्यादा दुःख और लज्जा की और क्या बात होगी? किसान से जब्त न हुआ। कभी पेट भर गरीबों को खाने को तो मिलता ही नहीं, इस पर इतना कठिन परिश्रम, न देह में बल है, न दिल में हिम्मत, पर मनुष्य का हृदय ही तो ठहरा। बेचारा बेदम पड़ा हुआ था। स्त्री का चिल्लाना सुनकर उठ बैठा और उस दुष्ट सिपाही को धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया। फिर दोनों में कुश्तम-कुश्ती होने लगी। एक किसान किसी पुलिस के आदमी के साथ इतनी बेअदबी करे, इसे भला वह कहीं बरदाश्त कर सकती है। सब कांस्टेबलों ने गरीब को इतना मारा कि वह मर गया।

क्षमा ने कहा — गाँव के और लोग तमाशा देखते रहे होंगे?

मृदुला तीव्र कंठ से बोली — बहन, प्रजा की तो हर तरह से मरन हैं अगर दस — बीस आदमी जमा हो जाते, तो पुलिस कहती, हमसे लड़ने आये हैं। डंडे चलाने शुरू करती और अगर कोई आदमी क्रोध में आकर एकाध कंकड़ फेंक देता, तो गोलियाँ चला देती। दस-बीस आदमी भुन जाते। इसलिए लोग जमा नहीं होते; लेकिन जब वह किसान मर गया तो गाँव वालो को तैश आ गया। लाठियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े और कांस्टेबलों को घेर लिया। सम्भव है दो-चार आदमियों ने लाठियाँ चलायी भी हो। कांस्टेबलों

ने गोलियाँ चलानी शुरू की। दो-तीन सिपाहियों को हल्की चोटें आयी। उसके बदले में बारह आदमियों मी जानें ले ली गयी और कितनों ही के अंग-भंग कर दिये गये। इन छोटे-छोटे आदमियों को इसलिए तो इतने अधिकार दिये गये हैं कि उनका दुरुपयोग करें। आधे गाँव का कत्लेआम करके पुलिस विजय के नगाड़े बजाती हुई लौट गयी। गाँववालों की फरियाद कौन सुनता! गरीब है, अपंग है, जितने आदमियों को चाहो, मार डालो। अदालत ओर हाकिमों से तो उन्होने न्याय की आशा करना ही छोड़ दिया। आखिर सरकार ही ने तो कांस्टेबलों को यह मुहिम सर करने के लिए भेजा था। वह किसानों की फरियाद क्यों सुनने लगी। मगर आदमी का दिल फरियाद करने किये बगैर नहीं मानता।

गाँववालों ने अपने शहरों के भाइयों से फरियाद करने का निश्चय किया। जनता और कुछ नहीं कर सकती, हमदर्दी तो करती है। दुःख-कथा सुनकर आँसू तो बहाती है। दुखियारों को हमदर्दी के आँसू भी कम प्यारे नहीं होते। अगर आस-पास के गाँवों के लोग जमा होकर उनके साथ रो लेते तो गरीबों के आँसू पूँछ जाते; किन्तु पुलिस ने उस गाँव की नाकेबंदी कर रखी थी, चारों सीमाओं पर पहरे बिठा दिये गये थे। यह घाव पर नमक था मारते भी हो और रोने भी नहीं देते। आखिर लोगों ने लाशें उठायीं और शहर वालों को अपनी विपत्ति की कथा सुनाने चले।

इस हंगामे की खबर पहले ही शहर में पहुँच गयी थी। इन लाशों को देखकर जनता उत्तेजित हो गयी और जब पुलिस के अध्यक्ष ने इन लाशों का जुलूस निकालने की अनुमति न दी, तो लोग और भी झल्लायें। बहुत बड़ा जमाव हो गया। मेरे बाबूजी भी इसी दल में थे। और मैंने उन्हें रोका-मत जाओ, आज का रंग अच्छा नहीं है। तो कहने लगे — मैं किसी से लड़ने थोड़े ही जाता हूँ। जब सरकार की आज्ञा के विरूद्ध जनाजा चला तो पचास हजार आदमी साथ थे। उधर पाँच सौ सशस्त्र पुलिस रास्ता रोके खड़ी थी — सवार, प्यादे, सारजट — पूरी फौज थी। हम निहत्थों के सामने इन नामर्दों को तलवारें चमकाते और झंकारते शर्म भी नहीं आती! जब बार-बार पुलिस की धमकियों पर भी लोग न भागे, तो गोलियाँ चलाने का हुक्म हो गया। घंटे-भर बराबर फैर होते रहे, घंट-भर तक! कितने मरे, कितने घायल हुए, कौन जानता है। मेरा मकान सड़क पर है। मैं छज्जे पर खड़ी, दोनों हाथों से दिल, थामे, काँपती थी। पहली बाढ़ चलते ही भगदड़ पड़ गयी। हजारों आदमी बदहवास भागे चले आ रहे थे। बहन! वह दृश्य अभी तक आँखों के सामने है। कितना भीषण, कितना रोमांचकारी और कितना लज्जास्पद! ऐसा जान पड़ता था कि लोगों के प्राण आँखों से निकल पड़ते है; मगर इन भागने वालो की पीछे वीर व्रतधारियों का दल था, जो पर्वत की भाँति

अटल खड़ा छातियों पर गोलियाँ खा रहा था और पीछे हटने का नाम न लेता था बन्दूकों की आवाजें साफ सुनायी देती थीं और हरे धायँ-धायँ के बाद हजारों गलों से जय की गहरी गगन-भेदी ध्वनि निकलती थी। उस ध्वनि में कितनी उत्तेजना थी! कितना आकर्षण! कितना उन्माद! बस, यही जी चाहता था कि जाकर गोलियों के सामने खड़ी हो जाऊँ हँसते-हँसते मर जाऊँ। उस समय ऐसा भान होता था कि मर जाना कोई खेल है। अम्माँ जी कमरे में भान को लिए मुझे बार-बार भीतर बुला रही थीं। जब मैं न गयी, तो वह भान को लिए हुए छज्जे पर आ गयी। उसी वक्त दस-बारह आदमी एक स्ट्रेचर पर हृदयेश की लाश लिए हुए द्वार पर आये। अम्माँ की उन पर नजर पड़ी। समझ गयी। मुझे तो सकता-सा हो गया। अम्माँ ने जाकर एक बार बेटे का देखा, उसे छाती से लगाया, चूमा, आशीर्वाद दिया और उन्मत्त दशा में चौरास्ते की तरफ चली, जहां से अब भी धाँय और जय की ध्वनि बारी-बारी से आ रही थी। मैं हतबुद्धि-सी खड़ी कभी स्वामी की लाश को देखती थी, कभी अम्माँ को। न कुछ बोली, न जगह से हिली, न रोयी, न घबरायी। मुझमें जेसे स्पंदन ही न था। चेतना जेसे लुप्त हो गयी हो।

क्षमा — तो क्या अम्माँ भी गोलियों के स्थान पर पहुँच गयी?

मृदुला — हाँ, यही तो विचित्रता है बहन! बंदूक की आवाजें सुनकर कानों पर हाथ रख लेती थीं, खून देखकर मूर्छित हो ताजी थीं। वही अम्माँ वीर सत्याग्रहियों का सफों को चीरती हुई सामने खड़ी हो गयी और एक ही क्षण में उनकी लाश भी जमीन पर गिर पड़ी। उनके गिरते ही योद्धाओं का धैर्य टूट गया। व्रत का बंधन टूट गया। सभी के सिरों पर खून-सा सवार हो गया। निहत्थे थे, अशक्त थे, पर हर एक अपने अंदर अपार शक्ति का अनुभव कर रहा था पुलिस पर धावा कर दिया। सिपाहियों ने इस बाढ़ को आते — देखा तो होश जाते रहे। जानें लेकर भागे, मगर भागते हुए भी गोलियाँ चलाते जाते थे। भान छज्जे पर खड़ा था, न जाने किधर से एक गोली आकर उसकी छाती में लगी। मेरा लाल वहीं पर गिर पड़ा, साँस तक न ली; मगर मेरी आँखों में अब भी आँसू न थे। मैंने प्यारे भान को गोद मे उठा लिया। उसकी छाती से खून से के फव्वारे निकल रहे थे। मैंने उसे जो दूध पिलाया था, उसे वह खून से अदा कर रहा था। उसके खून से तर कपड़े पहने हुए मुझे वह नशा हो रहा था जो शायद उसके विवाह में गुलाल से तर रेशमी कपड़े पहनकर भी न होता। लड़कपन, जवानी और मौत! तीनों मंजिलें एक ही हिचकी में तमाम हो गयी। मैने बेटे को बाप की गोद में लेटा दिया। इतने में कई स्वयं अम्माँ जी को भी लाये। मालूम होता था, लेटी हुई

मुस्करा रही है। मुझे तो रोकती रहती थीं ओर खुद इस तरह जाकर आग में कूद पड़ी, मानो वह स्वर्ग का मार्ग हो! बेटे ही के लिए जीती थीं, बेटे को अकेला कैसे छोड़तीं।

जब नदी के किनारे तीनों लाशें एक ही चिता में रखी गयीं, तब मेरा सकता टूटा, होश आया। एक बार जी में आया चिता में जा बैठूँ, सारा कुनबा एक साथ ईश्वर के दरबार में जा पहुँचे। लेकिन फिर सोचा — तूने अभी ऐसा कौन काम किया है, जिसका इतना ऊँचा पुरस्कार मिले? बहन चिता का लपटों में मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि अम्माँ जी सचमुच भान को गोद में लिए बैठी मुस्करा रहीं है और स्वामी जी खड़े मुझसे कह रहे हैं, तुम जाओ और निश्चित होकर काम करो। मुझ पर कितना तेज था। रक्त और अग्नि ही में तो देवता बसते हैं।

मैंने सिर उठाकर देखा। नदी के किनारे न जाने कितनी चिताएँ जल रही थीं। दूर से वह चितावली ऐसी मालूम होती थी, मानो देवता ने भारत का भाग्य गढ़ने के लिए भट्टियाँ जलायीं हों।

जब चिताएँ राख हो गयी; तो हम लोग लौटे; लेकिन उस घर मे जाने की हिम्मत न पड़ी। मेरे लिए अब वह घर, घर न था! मेरा घर तो अब यह है, जहाँ बैठी हूँ, या फिर वही चिता। मैंने घर का द्वार भी न खोला। महिला आश्रम में चली गयी। कल की

गोलियों में कांग्रेस-कमेटी का सफाया हो गया था। यह संस्था बागी बना डाली गयी थी। उसके दफ्तर पर पुलिस ने छापा मारा और उस पर अपना ताला डाल दिया। महिला आश्रम पर भी हमला हुआ। उस पर अपना ताला डाल दिया। हमने एक वृक्ष की छाँह में अपना नया दफ्तर बनाया और स्वच्छंदता के साथ काम करते रहे। यहाँ दीवारें हमें कैद न करी सकती थीं। हम भी वायु के समान मुक्त थे।

संध्या समय हमने एक जुलूस निकालने का फैसला किया। कल के रक्तपात की स्मृति, हर्ष और मुबारकबाद में जुलूस निकालना आवश्यक था। लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है? इससे यह सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं, अटल हैं और मैदान से हटे नहीं है। हमें अपने हार न मानने वाले आत्माभिमान का प्रमाण देना था। हमें यह दिखाना था कि, हम गोलियों और अत्याचार से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से हटने वाले नहीं और हम उस व्यवस्था का अन्त करके रहेंगे, जिसका आधार स्वार्थ-परता और खून पर है। उधर पुलिस ने भी जुलूस को रोककर अपनी शक्ति और बिजय का प्रमाण देना आवश्यक समझा। शायद जनता को धोखा हो गया हो कि कल की दुर्घटना ने नौकरशाही का नैतिक ज्ञान जाग्रत कर दिया है इस धोखे को दूर करना उसने अपना कर्त्तव्य समझा। वह यह दिखा देना चाहती

थी कि हम तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे। तुम्हारी खुशी या नाराजी की हमें परवाह नहीं हैं। जुलूस निकालने की मनाही हो गयी। जनता को चेतावनी दी गई गयी कि खबरदार जुलूस में न आना, नहीं दुर्गति होगी। इसका जनता ने वह जवाब दिया, जिसने अधिकारियों की आंखे खोल दी होगी। संध्या समय पचास हजार आदमी जमा हो गये। आज का नेतृत्व मुझे सौंपा गया था। में अपने हृदय में एक विचित्र बल उत्साह का अनुभव कर रही थी। एक अबला स्त्री जिसे संसार का कुछ ज्ञान नहीं, जिसने कभी घर से बाहर पाँव नहीं निकाला, आज अपने प्यारों के उत्सर्ग की बदौलत उस महान् पद पर पहुँच गयी थी, जो बड़े-बड़े अफसरों को भी, बड़े-से-बड़े महाराजा को भी प्राप्त नहीं — में इस समय जनता के हृदय पर राज कर रही थी। पुलिस अधिकारियों की इसीलिए गुलामी करती है कि उसे वेतन मिलता है। पेट की गुलामी उससे सब कुछ करवा लेती है। महाराजा का हुक्म लोग इसलिए मानते है कि उससे उपकार की आशा या हानि का भय होता है। यह अपार जन-समुह क्या मुझसे किसी फायदे की आशा रखता था, उसे मुझसे किसी हानि का भय था? कदापि नहीं। फिर भी वह कड़े-से कड़े हुक्म को मानने के लिए तैयार था इसलिए कि जनता मेरे बलिदानों का आदर करती थीं, इसलिए कि उनके दिलों में स्वाधीनता की जो तड़प थी, गुलामी के जंजीरों

को तोड़ देने की जो बेचैनी थी मै उस तड़प और बेचैनी की सजीव मूर्ति समझी जा रही थीं निश्चित समय पर जुलूस ने प्रस्थान किया। उसी वक्त पुलिस ने मेरी गिरफ्तारी का वारंट दिखाया। वारंट देखते ही तुम्हारी याद आयी। अब मुझे तुम्हारी जरूरत है। उस वक्त तुम मेरी हमदर्दी की भूखी थीं। अब मैं सहानुभूति की भिक्षा मांग रही हूँ। मगर मुझमें अब लेशमात्र भी दुर्बलता नहीं हैं मैं चिंताओं से मुक्त हूँ। मैजिस्ट्रेट जो कठोर-से कठोर दंड प्रदान करे उसका स्वागत करूँगी। अब मैं पुलिस के किसी आक्षेप का असत्य आरोपण का प्रतिवाद न करूँगी; क्योंकि मैं जानती हूँ, मैं जेल के बाहर रहकर जो कुछ कर सकती हूँ, जेल के अन्दर रहकर उससे कहीं ज्यादा कर सकती हूँ। जेल के बाहर भूलों की सम्भावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्धा की चिन्ता है, जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है, जिसके भीतर शैतान कदम नहीं रख सकता। मैदान में जलता हुआ अलाव वायु मे अपनी उष्णता को खो देता है; लेकिन इंजिन में बन्द होकर वही आग संचालक शक्ति का अखंड भंडार बन जाती है।

अन्य देवियाँ भी आ पहुँचीं और मृदुला सबसे गले मिलने लगी। फिर 'भारत माता की जय' की ध्वनि जेल की दीवारों को चीरती हुई आकाश में जा पहुँची।

# पत्नी से पति

मिस्टर सेठ को सभी हिन्दुस्तानी चीजों से नफरत थी ओर उनकी सुन्दरी पत्नी गोदावरी को सभी विदेशी चीजों से चिढ़! मगर धैर्य और विनय भारत की देवियों का आभूषण है। गोदावरी दिल पर हजार जब्र करके पति की लायी हुई विदेशी चीजों का व्यवहार करती थी, हालांकि भीतर ही भीतर उसका हृदय अपनी परवशता पर रोता था। वह जिस वक्त अपने छज्जे पर खड़ी होकर सड़क पर निगाह दौड़ाती और कितनी ही महिलाओं को खद्दर की साड़ियों पहने गर्व से सिर उठाते चलते देखती, तो उसके भीतर की वेदना एक ठंडी आह बनकर निकल जाती थी। उसे ऐसा मालूम होता था कि मुझसे ज्यादा बदनसीब औरत संसार में नहीं हैं मै अपने स्वदेशवासियों की इतनी भी सेवा नहीं कर सकती? शाम को मिस्टर सेठ के आग्रह करने पर वह कहीं मनोरंजन या सैर के लिए जाती, तो विदेशी कपड़े पहने हुए निकलते शर्म से उसकी गर्दन झुक जाती थी। वह पत्रों मे महिलाओं के जोश-भरे व्याख्यान पढ़ती तो उसकी आंखें जगमगा उठती, थोड़ी देर के लिए वह भूल जाती कि मैं यहां बन्धनों मे जकड़ी हुई हूँ।

होली का दिन था, आठ बजे रात का समय। स्वदेश के नाम पर बिके हुए अनुरागियों का जुलूस आकर मिस्टर सेठ के मकान के सामने रुका ओर उसी चौड़े मैदान में विलायती कपड़ों ही होलियाँ लगाने की तैयारियाँ होने लगीं। गोदावरी अपने कमरे में खिड़की पर खड़ी यह समारोह देखती थी ओर दिल मसोसकर रह जाती थी एक वह है, जो यों खुश-खुश, आजादी के नशे-मतवाले, गर्व से सिर उठाये होली लगा रहे हैं, और एक में हूँ कि पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह फड़फड़ा रही हूँ। इन तीलियों को कैसे तोड़ दूँ? उसने कमरे मे निगाह दौड़ायी। सभी चीजें विदेशी थीं। स्वदेशी का एक सूत भी न था यही चीजें वहाँ जलायी जा रही थी ओर वही चीजें यहाँ उसके हृदय में संचित ग्लानि की भांति सन्दूकों में रखी हुई थीं। उसके जी में एक लहर उठ रही थी कि इन चीजों को उठाकर उसी होली में डाल दे, उसकी सारी ग्लानि और दुर्बलता जलकर भस्म हो जाय। मगर पति को अप्रसन्नता के भय ने उसका हाथ पकड़ लिया। सहसा मि. सेठ के आकर अन्दर कहा — जरा इन सिरफरों को देखों, कपड़े जला रहे हैं। यह पागलपन, उन्माद और विद्रोह नहीं तो और क्या है। किसी ने सच कहा है, हिंदुस्तानियों के न अक्ल आयी है न आयेगी। कोई कल भी तो सीधी नहीं।

गोदावरी ने कहा — तुम भी हिंदुस्तानी हो।

सेठ ने गर्म होकर कहा — हाँ, लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है कि ऐसे अभागे देश में क्यों पैदा हुआ। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे हिन्दुस्तानी कहे या समझे। कम-से-कम मैंने आचार-व्यवहार वेश-भूषा, रीति-नीति, कर्म-वचन में कोई ऐसी बात नहीं रखी, जिससे हमें कोई हिन्दुस्तानी होने का कलंक लगाए। पूछिए, जब हमें आठ आने गज में बढ़िया कपड़ा मिलता है, तो हम क्यों मोटा टाट खरीदें। इस विषय में हर एक को पूरी स्वाधीनता होनी चाहिए। न जाने क्यों गवर्नमेंट ने इन दुष्टों को यहाँ जमा होने दिया। अगर मेरे हाथ में अधिकार होता, तो सबों को जहन्नुम रसीद कर देता। तब आटे — दाल का भाव मालूम होता।

गोदावरी ने अपने शब्द मे तीक्ष्ण तिरस्कार भर के कहा — तुम्हें अपने भाइयों का जरा ख्याल नहीं आता? भारत के सिवा और भी कोई देश है, जिस पर किसी दूसरी जाति के शासन हो? छोटे-छोटे राष्ट्र भी किसी दूसरी जाति के गुलाम बनकर नहीं रहना चाहते। क्या एक हिन्दुस्तानी के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि वह अपने ही भाइयों के साथ अन्याय करे?

सेठ ने भौंहें चढ़ाकर कहा — मैं इन्हे अपना भाई नहीं समझता।

गोदावरी — आखिर तुम्हें सरकार जो वेतन देती है, वह इन्हीं की जेब से तो आता हैं!

सेठ — मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि मेरा वेतन किसकी जेब से आता है मुझे जिसके हाथ से मिलता है, वह मेरा स्वामी है, न जाने इन दुष्टों को क्या सनक सवार हुई है कहते हैं, भारत आध्यात्मिक देश है। क्या अध्यात्म का यही आशय है कि परमात्मा के विधानों का विरोध किया जाय? जब यह मालूम है कि परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध एक पत्ती भी नहीं हिल सकती, तो यह मुमकिन है कि यह इतना बड़ा देश परमात्मा की मर्जी बगैर अंगरेजों के अधीन हो? क्यों इन दीवानों को इतनी अक्ल नहीं आती कि जब तक परमात्मा की इच्छा न होगी, कोई अंगरेजों का बाल भी बाँका न कर सकेगा!

गोदावरी — तो फिर क्यों नौकरी करते हो? परमात्मा की इच्छा होगी, तो आप ही आप भोजन मिल जाएगा। बीमार होते हो, तो क्यों दौड़े वैद्य के घर जाते हो? परमात्मा उन्हीं की मदद करता है, जो अपनी मदद आप करते है।

सेठ — बेशक करता है; लेकिन अपने घर में आग लगा देना, घर की चीजों को जला देना, ऐसे काम है, जिन्हें परमात्मा कभी पसंद नहीं कर सकता।

गोदावरी —तो यहाँ के लोगों का चुपचाप बैठे रहना चाहिए?

सेठ — नहीं, रोना चाहिए। इस तरह रोना चाहिए, जैसे बच्चे माता के दूध के लिए रोते है।

सहसा होली जली, आग की शिखाएँ आसमान से बातें करने लगीं, मानों स्वाधीनता की देवी अग्नि-वस्त्र धारण किए हुए आकाश के देवताओं से गले मिलने जा रही हो।

दीनानाथ ने खिड़की बन्द कर दी, उनके लिए यह दृश्य भी असह्य था।

गोदावरी इस तरह खड़ी रही, जैसे कोई गाय कसाई के खूंटे पर खड़ी हो। उसी वक्त किसी के गाने का आवाज आयी —

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती हैं'

गोदावरी के विषाद से भरे हुए हृदय में एक चोट लगी। उसने खिड़की खोल दी और नीचे की तरफ झाँका। होली अब भी जल रही थी और एक अंधा लड़का अपनी खँजरी बजाकर गा रहा था —

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

वह खिड़की के सामने पहुंचा तो गोदावरी पे पुकारा — ओ अन्धे! खड़ा रहा।

अन्धा खड़ा हो गया। गोदावरी ने सन्दूक खोला, पर उसमें उसे एक पैसा मिला। नोट और रुपये थे, मगर अन्धे फकीर को नोट या रुपये देने का सवाल ही न था। पैसे अगर दो-चार मिल जाते, तो इस वक्त वह जरूर दे देती। पर वहाँ एक ही पैसा था, वह भी इतना घिसा हुआ कि कहार बाजार से लौटा लाया था। किसी दूकानदार ने न लिया था। अन्धे को वह पैसा देते हुए गोदावरी को शर्म आ रही थी। वह जरा देर तक पैसे को हाथ में लिए संशय में खड़ी रही। तब अन्धे को बुलाया और पैसा दे दिया।

अन्धे ने कहा — माता जी कुछ खाने को दीजिए। आज दिन भर से कुछ नहीं खाया।

गोदावरी — दिन भर माँगता है, तब भी तुझे खाने को नहीं मिलता?

अन्धा — क्या करूँ माता, कोई खाने को नहीं देता।

गोदावरी — इस पैसे का चबैना लेकर खा ले।

अन्धा — खा लूँगा माता जी, भगवान् आपको खुशी रखे। अब यहीं सोता हूँ।

## 2

दूसरे दिन प्रातः काल कांग्रेस की तरफ से एक आम जलसा हुआ। मिस्टर सेठ ने विलायती टूथ पाउडर विलायती ब्रुश से दाँतों पर मला, विलायती साबुन से नहाया, विलायती चाय विलायती प्यालियों में पी, विलायती बिस्कुट विलायती मक्खन के साथ खाया, विलायती दूध पिया। फिर विलायती सूट धारण करके विलायती सिंगार मुँह में दबाकर घर से निकले, और अपनी मोटर साइकिल पर बैठ फ्लावर शो देखने चले गये।

गोदावरी को रात भर नींद नहीं आयी थी, दुराशा ओर पराजय की कठिन यन्त्रणा किसी कोड़े की तरह उसे हृदय पर पड़ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके कंठ में कोई कड़वी चीज अटक गयी है। मिस्टर सेठ का अपने प्रभाव मे लाने की उसने वह सब योजनाएँ की, जो एक रमणी कर सकती है; पर उस भले आदमी पर उसके सारे हाव-भाव, मृदु मुस्कान ओर वाणी-विलास को कोई असर न हुआ। खुद तो स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार करने पर क्या राजी होते, गोदावरी के लिए एक खद्दर की साड़ी लाने पर भी सहमत न हुए। यहाँ तक कि गोदावरी ने उनसे कभी कोई चीज माँगने की कसम खा ली।

क्रोध और ग्लानि ने उसकी सद्भावना को इस तरह विकृत कर दिया जेसे कोई मैली वस्तु निर्मल जल को दूषित कर देती है उसने सोचा — जब यह मेरी इतनी सी बात नहीं मान सकते; तब फिर मैं क्या इनके इशारों पर चलूँ, क्यों इनकी इच्छाओं की लौंडी बनी रहूँ? मैंने इनके हाथ कुछ अपनी आत्मा नहीं बेची है। अगर आज ये चोरी या गबन करें, तो क्या में सजा पाऊँगी? उसी सजा ये खुद झेलेंगे। उसका अपराध इनके ऊपर होगा। इन्हें अपने कर्म और वचन का अख्तियार हैं मुझे अपने कर्म और वचन का अख्तियार। यह अपनी सरकार की गुलामी करें, अंगरेजों की चौखट पर नाक रगड़े, मुझे क्या गरज है कि उसमें उनका सहयोग करूँ! जिसमें आत्माभिमान नहीं, जिसने अपने को स्वार्थ के हाथों बेच दिया, उसके प्रति अगर मेरे मन में भक्ति न हो तो मेरा दोष नहीं। यह नौकर है या गुलाम? नौकरी और गुलामी में अन्तर है नौकर कुछ नियमों के अधीन अपना निर्दिष्ट काम करता है। वह नियम स्वामी और सेवक दोनों ही पर लागू होते हैं। स्वामी अगर अपमान करे, अपशब्द कहे तो नौकर उसको सहन करने के लिए मजबूर नहीं। गुलाम के लिए कोई शर्त नहीं, उसकी दैहिक गुलामी पीछे होती है, मानसिक गुलामी पहले ही हो जाती हैं। सरकार ने इनसे कब कहा है कि देशी चीजें न खरीदों।' सरकारी टिकटों तक पर शब्द लिखे होते हैं 'स्वदेशी

चीजें खरीदो। इससे विदित है कि सरकार देशी चीजें का निषेध नहीं करती। फिर भी यह महाशय सुर्खरू बनने की फिक्र में सरकार से भी दो अंगुल आगे बढ़ना चाहते है!

मिस्टर सेठ ने कुछ झेंपते हुए कहा — कल न फ्लावर शो देखने चलोगी?

गोदावरी ने विरक्त मन से कहा — नहीं!

'बहुत अच्छा तमाशा है।'

'मैं कांग्रेस के जलसे में जा रही हूँ।

मिस्टर सेठ के ऊपर यदि छत गिर पड़ी होती या उन्होंने बिजली का तार हाथ से पकड़ लिया होता, तो भी वह इतने बदहवास न होते। आँखें फाड़कर बोले — तुम कांग्रेस के जलसे में जाओगी?

'हां जरूर जाऊँगी!,

'मै नहीं चाहता कि तुम वहाँ जाओ।'

'अगर तुम मेरी परवाह नहीं करते, तो मेरा धर्म नहीं कि तुम्हारी हर एक आज्ञा का पालन करूँ।'

मिस्टर सेठ ने आँखों मे विष भर कर कहा — नतीजा बुरा होगा।

गोदावरी मानों तलवार के सामने छाती खोल कर बोली — इसकी चिंता नहीं, तुम किसी के ईश्वर नहीं हो।

मिस्टर सेठ खूब गर्म पड़े, धमकियाँ दी; आखिर मुँह फेरकर लेटे रहे। प्रातः काल फ्लावर शो जाते समय भी उन्होंने गोदावरी से कुछ न कहा।

## 3

गोदावरी जिस समय कांग्रेस के जलसे में पहुंची, तो कई हजार मर्दों और औरतों का जमाव था। मन्त्री ने चन्दे की अपील की थी और कुछ लोग चन्दा दे रहे थे। गोदावरी उस जगह खड़ी हो गई जहाँ और स्त्रियाँ जमा थी ओर देखने लगी कि लोग क्या देते हैं। अधिकांश लोग दो-दो चार-चार आना ही दे रहे थे। वहां ऐसा धनवान था ही कौन? उसने अपनी जेब टटोली, तो एक रुपया निकला। उसने समझा यह काफी है। इसी इन्तजार में थी कि झोली सामने आवे तो उसमें डाल दूँ? सहसा वही अन्धा लड़का, जिसे कि उसने पैसा दिया था, न जाने किधर से आ गया और ज्यों ही चन्दे की झोली उसके सामने पहुँचीं, उसने उसमें कुछ डाल दिया। सबकी आँखें उसकी तरफ उठ गयीं। सबको कुतूहल हो

रहा था कि अन्धे ने क्या दिया? कही एक-आध पैसा मिल गया होगा। दिन-भर गला फाड़ता है, तब भी तो उस बेचारे को रोटी नहीं मिलती! अगर यही गाना पिश्वाज और साज के साथ किसी महफिल में होता तो रुपये बरसते; लेकिन सड़क पर गाने वाले अन्धे की कौन परवाह करता है।

झोली में पैसा डालकर अन्धा वहाँ से चल दिया और कुछ दूर जाकर गाने लगा —

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

सभापति ने कहा — मित्रों, देखिए, यह वह पैसा है,जो एक गरीब अन्धा लड़का इस झोली में डाल गया है। मेरी आँखों में इस एक पैसे की कीमत किसी अमीर के एक हजार रूपये से कम नहीं। शायद यही इस गरीब की सारी बिसात होगी। जब ऐसे गरीबों की सहानुभूति हमारे साथ है, तो मुझे सत्य की विजय में संदेह नहीं मालूम होता। हमारे यहाँ क्यों इतने फकीर दिखायी देती हैं? या तो इसलिए कि समाज में इन्हें कोई काम नहीं मिलता या दरिद्रता से पैदा हुई बीमारियों के कारण यह अब इस योग्य ही नहीं रह गये कि कुछ काम करें। या भिक्षावृति ने इनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं छोड़ी। स्वराज्य के सिवा इन गरीबों का अब उद्धार कौन कर सकता है। देखिए, वह गा रहा है —

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

इस पीड़ित हृदय में कितना उत्सर्ग! क्या अब भी कोई संदेह कर सकता है कि हम किसकी आवाज हैं? (पैसा उपर उठा कर) आप में कौन इस रत्न को खरीद सकता है?

गोदावरी के मन में जिज्ञासा हुई, क्या वह वही तो पैसा नहीं है, जो रात मैंने उसे दिया था? क्या उसने सचमुच रात को कुछ नहीं खाया?

उसने जाकर समीप से पैसे को देखा, जो मेज पर रखा दिया गया था। उसका हृदय धक् से हो गया। यह वही घिसा हुआ पैसा था।

उस अन्धे की दशा, उसके त्याग का स्मरण करके गोदावरी अनुरक्त हो उठी। काँपते हुए स्वर में बोली — मुझे आप यह पैसा दे दीजिए, मैं पाँच रूपये दूँगी।

सभापति ने कहा — एक बहन इस पैसे के दाम पाँच रूपये दे रही है।

दूसरी आवाज आयी —दस रुपये।

तीसरी आवाज आयी — बीस रुपये।

गोदावरी ने इस अन्तिम व्यक्ति की ओर देखा। उसके मुख पर आत्माभिमान झलक रहा था, मानों कह रहा हो कि यहाँ कौन है, जो मेरी बराबरी कर सके! गोदावरी के मन मे स्पर्द्धा का भाव जाग उठा। चाहे कुछ हो जाय, इसके हाथ में यह पैसा न जाय। समझता है, इसने बीस रुपये क्या कह दिये, सारे संसार का मोल ले लिया।

गोदावरी ने कहा — चालीस रूपये।

उस पुरूष ने तुरंत कहा — पचास रूपये।

हजारों आँखें गोदावरी की ओर उठ गयीं मानो कह रही हों, अब की आप ही हमारी लाज रखिए।

गोदावरी ने उस आदमी की ओर देखकर धमकी से मिले हुए स्वर में कहा — सौ रुपये।

धनी आदमी ने भी तुरंत कहा — एक सौ बीस रूपये।

लोगों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। समझ गये, इसी के हाथ विजय रही। निराश आँखों से गोदावरी की ओर ताकने लगे; मगर ज्यों ही गोदावरी के मुँह से निकला डेढ़ सौ, कि चारों तरफ तालियाँ पड़ने लगीं, मानो किसी दंगल के दर्शक अपने पहलवान की विजय पर मतवाले हो गये हों।

उस आदमी ने फिर कहा — पौने दो सौ।

गोदावरी बोली — दो सौ।

फिर चारों तरफ से तालियाँ पड़ी। प्रतिद्वंद्वी ने अब मैदान से हट जाने ही में अपनी कुशल समझी।

गोदावरी विजय के गर्व पर नम्रता का पर्दा डाले हुए खड़ी थी और हजारों शुभ कामनाएँ उस पर फूलों की तरह बरस रही थीं।

## 4

जब लोगो को मालूम हुआ कि यह देवी मिस्टर सेठ की बीबी है।, तो उन्हें ईर्ष्यामय आनन्द के साथ उस पर दया भी आयी।

मिस्टर सेठ अभी फ्लावर शो मे ही थे कि एक पुलिस के अफसर ने उन्हें यह घातक संवाद सुनाया। मिस्टर सेठ सकते में पड़ गये, मानो सारी देह शून्य पड़ गयी हो। फिर दानों मुट्ठियाँ बाँध लीं। दाँत पीसे, ओठ चबाये और उसी वक्त घर चले। उनकी मोटर-साईकिल कभी इतनी तेज न चली थी।

घर में कदम रखते ही उन्होंने चिनगारियों-भरी आँखों से देखते हुए कहा — क्या तुम मेरे मुँह में कालिख पुतवाना चाहती हो?

गोदावरी ने शांत भाव से कहा — कुछ मुँह से भी तो कहो या गालियाँ ही दिये जाओगे? तुम्हारे मुहँ में कालिख लगेगी, तो क्या मेरे मुहँ में न लगेगी? तुम्हारी जड़ खुदेगी, तो मेरे लिए दूसरा कौन-सा सहारा है।

मिस्टर सेठ — सारे शहर में तूफान मचा हुआ है। तुमने मेरे लिए रुपये दिये क्यों?

गोदावरी ने उसी शांत भाव से कहा — इसलिए कि मैं उसे अपना ही रुपया समझती हूँ।

मिस्टर सेठ दाँत किटकिटा कर बोले — हरगिज नहीं, तुम्हें मेरा रुपया खर्च करने का कोई हक नहीं है।

गोदावरी — बिलकुल गलत, तुम्हारे खर्च करने का तुम्हें जितना अख्तियार है, उतना ही मुझको भी है। हाँ, जब तलाक का कानून पास करा लोगे और तलाक दे दोगे, तब न रहेगा।

मिस्टर सेठ ने अपना हैट इतने जोर से मेज पर फेंका कि वह लुढ़कता हुआ जमीन पर गिर पड़ा और बोले — मुझे तुम्हारी अक्ल पर अफसोस आता है। जानती हो तुम्हारी इस उद्दंडता का क्या नतीजा होगा? मुझसे जवाब तलब हो जाएगा। बतलाओ, क्या जवाब दूँगा? जब यह जाहिर है कि कांग्रेस सरकार से दुश्मनी कर

रही है तो कांग्रेस की मदद करना सरकार के साथ दुश्मनी करनी है।

'तुमने तो नहीं की कांग्रेस की मदद!'

'तुमने तो की!'

'इसकी सजा मुझे मिलेगी या तुम्हें? अगर मैं चोरी करूँ, तो क्या तुम जेल जाओगे?'

'चोरी की बात और है, और यह बात और है।'

'तो क्या कांग्रेस की मदद करना चोरी या डाके से भी बुरा है?'

'हाँ, सरकारी नौकर के लिए चोरी या डाके से भी बुरा है।'

'मैंने यह नहीं समझा था।'

अगर तुमने यह नहीं समझा था, तो तुम्हारी ही बुद्धि का भ्रम था। रोज अखबारों में देखती हो, फिर भी मुझसे पूछती हो। एक कांग्रेस का आदमी प्लेटफार्म पर बोलने खड़ा होता है, तो बीसियों सादे कपड़े वाले पुलिस अफसर उसकी रिपोर्ट लेने बैठते हैं। कांग्रेस के सरगनाओं के पीछे कई-कई मुखबिर लगा दिए जाते हैं, जिनका काम यही है कि उन पर कड़ी निगाह रखें। चोरों के साथ तो इतनी सख्ती कभी नहीं की जाती। इसीलिए हजारों चोरियाँ और डाके और खून रोज होते रहते हैं, किसी का कुछ

पता नहीं चलता, न पुलिस इसकी परवाह करती है। मगर पुलिस को जिस मामले में राजनीति की गंध भी आ जाती है। फिर देखो पुलिस की मुस्तैदी। इन्सपेक्टर जरनल से लेकर कांस्टेबिल तक एड़ियों तक का जोर लगाते हैं। सरकार को चोरों से भय नहीं। चोर सरकार पर चोट नहीं करता। कांग्रेस सरकार को अख्तियार पर हमला करती है, इसलिए सरकार भी अपनी रक्षा के लिए अपने अख्तियार से काम लेती है। यह तो प्रकृति का नियम है।

मिस्टर सेठ आज दफ्तर चले, तो उनके कदम पीछे रह जाते थे! न जाने आज वहाँ क्या हाल हो। रोज की तरह दफ्तर में पहुँच कर उन्होंने चपरासियों को डाँटा नहीं, क्लर्कों पर रोब नहीं जमाया, चुपके से जाकर कुर्सी पर बैठ गये। ऐसा मालूम होता था, कोई तलवार सिर पर लटक रही है। साहब की मोटर की आवाज सुनते ही उनके प्राण सूख गये। रोज वह अपने कमरे में बैठ रहते थे। जब साहब आकर बैठ जाते थे, तब आध घण्टे के बाद मिसलें लेकर पहुँचते थे। आज वह बरामदे में खड़े थे, साहब उतरे तो झुककर उन्होंने सलाम किया। मगर साहब ने मुँह फेर लिया।

लेकिन वह हिम्मत नहीं हारे, आगे बढ़कर पर्दा हटा दिया, साहब कमरे में गये, तो सेठ साहब ने पंखा खोल दिया, मगर जान सूखी जाती थी कि देखें, कब सिर पर तलवार गिरती है। साहब ज्यों ही

कुर्सी पर बैठे, सेठ ने लपककर, सिगार-केस और दियासलाई मेज पर रख दी।

एकाएक ऐसा मालूम हुआ, मानो आसमान फट गया हो। साहब गरज रहे थे, तुम दगाबाज आदमी हो!

सेठ ने इस तरफ साहब की तरफ देखा, जैसे उनका मतलब नहीं समझे।

साहब ने फिर गरज कर कहा — तुम दगाबाज आदमी हो।

मिस्टर सेठ का खून गर्म हो उठा, बोले — मेरा तो ख्याल है कि मुझसे बड़ा राजभक्त इस देश में न होगा।

साहब — तुम नमकहराम आदमी है।

मिस्टर सेठ के चेहरे पर सुर्खी आयी — आप व्यर्थ ही अपनी जबान खराब कर रहे हैं।

साहब — तुम शैतान आदमी है।

मिस्टर सेठ की आँखों में सुर्खी आयी — आप मेरी बेइज्जती कर रहे हैं। ऐसी बातें सुनने की मुझे आदत नहीं है।

साहब — चुप रहो, यू ब्लडी। तुमको सरकार पाँच सौ रूपये इसलिए नहीं देता कि तुम अपने वाइफ के हाथ से कांग्रेस का चंदा दिलवाये। तुमको इसलिए सरकार रुपया नहीं देता।

मिस्टर सेठ को अपनी सफाई देने का अवसर मिला। बोले — मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी वाइफ ने सरासर मेरी मर्जी के खिलाफ रुपये दिये हैं। मैं तो उस वक्त फ्लावर शो देखने गया था, जहाँ मिस फ्रॉंक का गुलदस्ता पाँच रुपये में लिया। वहाँ से लौटा, तो मुझे यह खबर मिली।

साहब — ओ! तुम हमको बेवकूफ बनाता है?

यह बात अग्नि-शिला की भाँति ज्यों ही साहब के मस्तिष्क में घुसी, उनके मिजाज का पारा उबाल के दर्जे तक पहुँच गया। किसी हिंदुस्तानी की इतनी मजाल कि उन्हें बेवकूफ बनाये! वह जो हिंदुस्तान के बादशाह हैं, जिनके पास बड़े-बड़े तालुकेदार सलाम करने आते हैं, जिनके नौकरों को बड़े-बडे रईस नजराना देते हैं, उन्हीं को कोई बेवकूफ बनाये! उसके लिये वह असह्य था! रूल उठा कर दौड़ा।

लेकिन मिस्टर सेठ भी मजबूत आदमी थे। यों वह हर तरह की खुशामद किया करते थे! लेकिन यह अपमान स्वीकार न कर सके। उन्होंने रूल का तो हाथ पर लिया और एक डग आगे आगे बढ़कर ऐसा घूँसा साहब के मुँह पर रसीद किया कि साहब की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह इस मुष्टिप्रहार के लिए तैयार न थे। उन्हें कई बार इसका अनुभव हो चुका था कि

नेटिव बहुत शांत, दब्बू और गमखोर होता है। विशेषकर साहबों के सामने तो उनकी जबान तक नहीं खुलती। कुर्सी पर बैठ कर नाक का खून पोंछने लगा। फिर मिस्टर सेठ के उलझने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ीं; मगर दिल में सोच रहा था, इसे कैसे नीचा दिखाऊँ।

मिस्टर सेठ भी अपने कमरे में आ कर इस परिस्थिति पर विचार करने लगे। उन्हें बिलकुल खेद न था; बल्कि वह अपने साहस पर प्रसन्न थे। इसकी बदमाशी तो देखो कि मुझ पर रूल चला दिया! जितना दबता था, उतना ही दबाये जाता था। मेम यारों को लिये घूमा करती है, उससे बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। मुझसे शेर बन गया। अब दौड़ेगा कमिश्नर के पास। मुझे बरखास्त कराये बगैर न छोड़ेगा। यह सब कुछ गोदावरी के कारण हो रहा है। बेइज्जती तो हो ही गयी अब रोटियों को भी मुहताज होना पड़ा। मुझ से तो कोई पूछेगा भी नहीं, बरखास्तगी का परवाना आ जायेगा। अपील कहाँ होगी? सेक्रेटरी हैं हिन्दुस्तानी, मगर अंगरेजों से भी ज्यादा अंगरेज। होम मेम्बर भी हिन्दुस्तानी हैं, मगर अंगरेजों के गुलाम। गोदावरी के चन्दे का हाल सुनते ही उन्हें जूड़ी चढ़ आयेगी। न्याय की किसी से आशा नहीं, अब यहाँ से निकल जाने में ही कुशल है।

उन्होंने तुंरत एक इस्तीफा लिखा और साहब के पास भेज दिया। साहब ने उस पर लिख दिया, ‘बरखास्त’।

## 5

दोपहर को जब मिस्टर सेठ मुँह लटकाये हुए घर पहुँचे तो गोदावरी ने पूछा — आज जल्दी कैसे आ गये?

मिस्टर सेठ दहकती हुई आँखों से देख कर बोले — जिस बात पर लगी थीं, वह हो गयी। अब रोओ, सिर पर हाथ रखके!

गोदावरी — बात क्या हुई, कुछ कहो भी तो?

सेठ — बात क्या हुई, उसने आँखें दिखायीं, मैंने चाँटा जमाया और इस्तीफा दे कर चला आया।

गोदावरी — इस्तीफा देने की क्या जल्दी थी?

सेठ — और क्या सिर के बाल नुचवाता? तुम्हारा यही हाल है, तो आज नहीं, कल अलग होना ही पड़ता।

गोदावरी — खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। आज से तुम भी कांग्रेस में शरीक हो जाओ।

सेठ ने ओठ चबा कर कहा — लजाओगी तो नहीं, ऊपर से घाव पर नमक छिड़कती हो।

गोदावरी — लजाऊँ क्यों, मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारी बेड़ियाँ कट गयीं।

सेठ — आखिर कुछ सोचा है, काम कैसे चलेगा?

गोदावरी — सब सोच लिया है। मैं चल कर दिखा दूँगी। हाँ, मैं जो कुछ कहूँ, वह तुम किये जाना। अब तक मैं तुम्हारे इशारे पर चलती थी, अब से तुम मेरे इशारे पर चलना। मैं तुमसे किसी बात की शिकायत न करती थी; तुम जो कुछ खिलाते थे खाती थी, जो कुछ पहनाते थे पहनती थी। महल में रखते, महल में रहती। झोंपड़ी मे रखते, झोंपड़ी में रहती। उसी तरह तुम भी रहना। जो काम करने को कहूँ वह करना। फिर देखूँ कैसे काम नहीं चलता। बड़प्पन सूट-बूट और ठाठ-बाट में नहीं है। जिसकी आत्मा पवित्र हो, वही ऊँचा है। आज तक तुम मेरे पति थे आज से मैं तुम्हारा पति हूँ।

सेठ जी उसकी ओर स्नेह की आँखों से देख कर हँस पड़े।

# शराब की दूकान

कांग्रेस-कमेटी में यह सवाल पेश था — शराब और ताड़ी की दूकानों पर कौन धरना देने जाय? कमेटी के पच्चीस मेम्बर सिर झुकाए बैठे थे; पर किसी के मुँह से बात न निकलती थी। मुआमला बड़ा नाजुक था। पुलिस के हाथों गिरफ्तार हो जाना तो ज्यादा मुश्किल बात न थी। पुलिस के कर्मचारी अपनी जिम्मेदारियों को समझते हैं। चूंकि अच्छे और बुरे तो सभी जगह होते हैं, लेकिन पुलिस के अफसर, कुछ लोगों को छोड़ कर, सभ्यता से इतने खाली नहीं होते कि जाति और देश पर जान देनेवालों के साथ दुर्व्यवहार करें; लेकिन नशेबाजों में यह जिम्मेदारी कहाँ? उनमें तो अधिकांश ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें घुड़की-धमकी के सिवा और किसी शक्ति के सामने झुकने की आदत नहीं। मारपीट से नशा हिरन हो सकता है; पर शांतवादियों के लिए तो वह दरवाजा बन्द है; तब कौन इस ओखली मे सिर दे, कौन पियक्कड़ों की गालियाँ खाय? बहुत सम्भव है कि वे हाथापाई पर बैठें। उनके हाथों पिटना किसे मंजूर हो सकता था? फिर पुलिस वाले भी बैठे तमाशा न देखेंगे। उन्हें और भी

भड़काते रहेंगे। पुलिस की शह पर ये नशे के बंदे जो कुछ न करे डालें, वह थोड़ा! ईंट का जवाब पत्थर से दे नहीं सकते और इस समुदाय पर विनती का कोई असार नहीं!

एक मेम्बर ने कहा — मेरे विचार मे तो इन जातों में पंचायतों को फिर सँभालना चाहिए। इधर लापरवाही से उनकी पंचायतें निर्जीव हो गई हैं। इसके सिवा मुझे तो और भी कोई उपाय नहीं सूझता।

सभापति ने कहा — हाँ, यह एक उपाय है। मैं इसे नोट किए लेता हूँ, पर धरना देना जरूरी है।

दूसरे महाशय बोले — उनके घरों पर जाकर समझाया जाए, तो अच्छा असर होगा।

सभापति ने अपनी चिकनी खोपड़ी सहलाते हुए कहा — यह भी अच्छा उपाय है; मगर धरने को हम लोग त्याग नहीं सकते।

फिर सन्नाटा हो गया।

पिछली कतार में एक देवी भी मौन बैठी हुई थी। जब कोई मेम्बर बोलता वह एक नजर उसकी तरफ डालकर फिर सिर झुका लेती थीं। यही कांग्रेस की लेडी मेम्बर थीं। उनके पति महाशय जी. पी. सकसेना कांग्रेस के अच्छे काम करने वालों में

थे। उनका देहांत हुए तीन साल हो गए थे। मिसेज सकसेना ने इधर एक साल से कांग्रेस के कामों में भाग लेना शुरू कर दिया था और कांग्रेस-कमेटी ने उन्हें अपना मेम्बर चुन लिया था। वह शरीफ घरानों में जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं। जब कभी कांग्रेस के प्लेटफार्म पर बोलने खड़ी होतीं तो उनका जोश देखकर ऐसा मालूम होता था, आकाश में उड़ जाना चाहती हैं। कुंदन का-सा रंग लाल हो जाता था, बड़ी-बड़ी करूण आँखें जिनमें जल भरा हुआ मालूम होता था, चमकने लगती थीं। बड़ी खुश मिजाज और इसके साथ बला की निर्भीक स्त्री थीं। दबी हुई चिनगारी थी, जो हवा पाकर दहक उठती है। उसके मामूली शब्दों में इतना आकर्षण कहाँ से आ जाता था, कह नहीं सकते। कमेटी के कई जवान मेम्बर, जो पहले कांग्रेस में बहुत कम आते थे, अब बिला नागा आने लगे थे। मिसेज सकसेना कोई भी प्रस्ताव करें, उनका अनुमोदन करने वालों की कमी न थी। उनकी सादगी, उनका उत्साह, उनकी विनय, उनकी मृदु-वाणी कांग्रेस पर उनका सिक्का जमाये देती थी। हर आदमी उनकी खातिर सम्मान की सीमा तक करता था; पर उनकी स्वाभाविक नम्रता उन्हें अपने दैवी साधनों से पूरा-पूरा फायदा न उठाने देती थी। जब कमरे में आतीं, लोग खड़े हो जाते थे; पर वह पिछली सफ से आगे न बढ़ती थीं।

मिसेज सक्सेना ने प्रधान से पूछा — शराब की दूकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं?

सबकी आँखें उनकी ओर उठ गयीं। इस प्रश्न का आशय सब समझ गये।

प्रधान ने कातर स्वर में कहा — महात्मा जी ने तो यह काम औरतों को ही सुपुर्द करने पर जोर दिया है पर...

मिसेज सकसेना ने उन्हें अपना वाक्य पूरा न करने दिया। बोलीं — तो फिर मुझे इस काम पर भेज दीजिए।

लोगों ने कुतूहल की आँखों से मिसेज सकसेना को देखा। यह सुकुमारी जिसके कोमल अंगों मे शायद हवा भी चुभती हो, गंदी गलियों में ताड़ी और शराब की दुर्गंध-भरी दूकानों के सामने जाने और नशे से पागल आदमियों की कलुषित आँखों और बाँहों का सामना करने को कैसे तैयार हो गयी।

एक महाशय ने अपने समीप के आदमी के कान में कहा — बला की निडर औरत है।

उन महाशय ने जले हुए शब्दों मे उत्तर दिया — हम लोगों को काँटो में घसीटना चाहती है, और कुछ नहीं। वह बेचारी क्या

पिकेटिंग करेंगी। दूकान के सामने खड़ा तक तो हुआ न जाएगा।

प्रधान ने सिर झुकाकर कहा — -मै आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ, लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको खबर नहीं, नशेबाज कितने मुँहफट होते हैं। विनय तो वह जानते ही नहीं!

मिसेज सकसेना ने व्यंग्य भाव से कहा — तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा जमाना भी आएगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जाएँगे? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्माजी ने कुछ समझकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है! मैं नहीं कह सकती कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी; पर इस कर्तव्य को टालने से काम न चलेगा।

प्रधान ने पसोपेश में पकड़कर कहा — मैं तो आपको इस काम के लिए घसीटना उचित नहीं समझता, आगे आपको अख्तियार है।

मिसेज सकसेना ने जैसे विनय का आलिंगन करते हुए कहा — मैं आपके पास फरियाद लेकर न आऊँगी कि मुझे फँला आदमी ने मारा या गाली दी। इतना जानती हूँ कि अगर मैं सफल हो गयी,

तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी जो इस काम को सोलहों आने अपने हाथ में न ले लें।

इस पर एक नौजवान मेम्बर ने कहा — मैं सभापति जी से निवेदन करूँगा कि मिसेज सकसेना को यह काम देकर आप हिंसा का सामना कर रहे हैं। इससे यह कहीं अच्छा है कि आप मुझे यह काम सौंपे।

इस नौजवान मेम्बर का नाम था जयराम। एक बार एक कड़ा व्याख्यान देने के लिए जेल हो आये थे, पर उस वक्त उनके सिर गृहस्थी का भार न था। कानून पड़ते थे। अब उनका विवाह हो गया था, दो-तीन बच्चे भी हो गये थे, दशा बदल गयी थी। दिल में वही जोश, वही तड़प, वही दर्द था, पर अपनी हालत से मजबूर थे।

मिसेज सकसेना की ओर नम्र आग्रह से देखकर बोले — आप मेरी खातिर इस गन्दे काम में हाथ न डालें। मुझे एक सप्ताह का अवसर दीजिए! अगर इस बीच में कही दंगा हो जाय, तो आपको मुझे निकाल देने का अधिकार होगा।

मिसेज सकसेना जयराम को खूब जानती थीं। उन्हें मालूम था कि यह त्याग और साहस का पुतला है और अब तक परिस्थितियों के कारण पीछे दबका हुआ था। इसके साथ ही वह यह भी जानती

थीं कि इसमें वह धैर्य और बर्दाश्त नहीं है, जो पिकेटिंग के लिए लाजमी है। जेल में उसने दारोगा को अपशब्द कहने पर चाँटा लगाया था और उसकी सजा तीन महीने और बढ़ गयी थी। बोलीं — आपके सिर गृहस्थी का भार है। मैं घमंड नहीं करती पर जितने धैर्य से मैं यह काम कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते।

जयराम ने उसी नम्र आग्रह के साथ कहा — आप मेरे पिछले रेकार्ड पर फैसला कर रही हैं। आप भूल जाती हैं कि आदमी की अवस्था के साथ उसकी उद्दंडता घटती जाती है।

प्रधान ने कहा — मैं चाहता हूँ, महाशय जयराम इस काम को अपने हाथों में लें।

जयराम ने प्रसन्न होकर कहा — मैं सच्चे हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

मिसेज़ सकसेना ने निराश होकर कहा — महाशय, जयराम, आपने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है और मैं इसे कभी क्षमा न करूँगी। आप लोगों ने इस बात का आज नया परिचय दे दिया कि पुरुषों के अधीन स्त्रियाँ अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकतीं।

# 2

दूसरे दिन, तीसरे पहर जयराम पाँच स्वयंसेवकों को लेकर बेगमगंज के शराबखाने की पिकेटिंग करने जा पहुँचा। ताड़ी और शराब — दोनों की दूकानें मिली हुई थीं। ठीकेदार भी एक ही था। दूकान के सामने सड़क की पटरी पर, अंदर के आँगन में नशेबाजों की टोलियाँ विष में अमृत का आनन्द लूट रहीं थीं। कोई वहाँ अफलातून से कम न था। कहीं वीरता की डींग घी, कहीं अपने दान-दक्षिणा के पचड़े, कहीं अपने बुद्धि-कौशल का आलाप। अहंकार नशे का मुख्य रूप है।

एक बूढ़ा शराबी कह रहा था — भैया, जिंदगानी का भरोसा नहीं। हाँ, कोई भरोसा नहीं। मेरी बात मान लो, जिंदगानी का कोई भरोसा नहीं। बस यही खाना-खिलाना याद रह जाएगा। धन-दौलत, जगह-जमीन सब धरी रह जाएगी!

दो ताड़ीवालों में एक दूसरी बहस छिड़ी हुई थी —

‘हम-तुम रिआया है भाई! हमारी मजाल है कि सरकार के सामने सिर उठा सकें?’

‘अपने घर में बैठकर बादशाह को गालियाँ दे लो: लेकिन मैदान में आना कठिन है।’

‘कहाँ की बात भैया, सरकार तो बड़ी चीज है, लाल पगड़ी देखकर आना कठिन है।’

‘छोटा आदमी भर-पेट खाके बैठता, है तो समझता है, अब बादशाह हमीं है। लेकिन अपनी हैसियत को भूलना न चाहिए।’

‘बहुत पक्की बातें कहते हो खाँ साहब! अपनी असलियत पर डटे रहो। जो राजा है, वह राजा है! जो परजा है, वह परजा है। भला परजा कहीं राजा हो सकता है?’

इतने में जयराम ने आकर कहा — राम-राम भाइयों राम-राम!

पाँच-छह खद्दरधारी मनुष्यों को देखकर सभी लोग उनकी ओर शंका और कुतूहल से ताकने लगे। दूकानदार ने चुपके से अपने एक नौकर के कान में कुछ कहा और नौकर दूकान से उतरकर चला गया।

जयराम ने झंडे को जमीन पर खड़ा करके कहा — भाइयों, महात्मा गाँधी का हुक्म है कि आप लोग ताड़ी-शराब न पियें। जो रुपये आप यहाँ उड़ा देते हैं, वह अगर अपने बाल-बच्चों को खिलाने में खर्च करें, तो कितनी अच्छी बात हो। जरा देर के नशे के लिए आप अपने बाल-बच्चों को भूखों मारते हैं, गन्दे घरों में रहते हैं, महाजन की गालियाँ खाते हैं। सोचिए, इस रुपये से आप अपने प्यारे बच्चों को कितने आराम से रख सकते हैं!

एक बूढ़े शराबी ने अपने साथी से कहा — भैया, है तो बुरी चीज, घर तबाह करके छोड़ देती है। मुदा इतनी उमर पीते कट गयी, तो अब मरते दम क्या छोड़ें?

उसके साथी ने समर्थन किया — पक्की बात कहते हो चौधरी! जब इतनी उमर पीते कट गयी, तो अब मरते दम क्या छोड़ें?

जयराम ने कहा — वाह चौधरी यही तो उमिर है छोड़ने की। जवानी दो दीवानी होती है, उस वक्त सब कुछ मुआफ है।

चौधरी ने तो कोई जवाब न दिया! लेकिन उसके साथी ने, जो काला, मोटा, बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला आदमी था, सरल आपत्ति के भाव से कहा — अगर पीना बुरा है, तो अंगरेज क्यों पीते हैं?

जयराम वकील था, उससे बहस करना भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। बोला-यह तुमने बहुत अच्छा सवाल पूछा भाई। अंगरेजों के बाप-दादा अभी डेढ़-दो सौ साल पहले लुटेरे थे। हमारे-तुम्हारे बाप-दादा ऋषि-मुनि थे। लुटेरों की संतान पिये, तो पीने दो। उनके पास न कोई धर्म है, न नीति! लेकिन ऋषियों की संतान उनकी नकल क्यों करे? हम और तुम उन महात्माओं की संतान है, जिन्होंने दुनिया को सिखाया, जिन्होंने दुनिया को आदमी बनाया। हम अपना धर्म छोड़ बैठे, उसी का फल है कि आज

हम गुलाम हैं। लेकिन अब हमने गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का फैसला कर लिया है और...

एकाएक थानेदार और चार-पाँच कांस्टेबल आ खड़े हुए।

थानेदार ने चौधरी से पूछा — यह लोग तुमको धमका रहे हैं?

चौधरी ने खड़े होकर कहा — नहीं हुजूर, यह तो हमें समझा रहे हैं। कैसे प्रेम से समझा रहें हैं कि वाह!

थानेदार ने जयराम से कहा — अगर यहाँ फिसाद हो जाए, तो आप जिम्मेदार होंगे?

जयराम — मैं उस वक्त तक जिम्मेदार हूँ, जब तक आप न रहे।

'आपका मतलब है कि मैं फिसाद कराने आया हूँ?'

'मैं यह नहीं कहता; लेकिन आप आये हैं, तो अंगरेजी साम्राज्य की अतुल शक्ति का परिचय जरूर ही दीजिएगा। जनता मे उत्तेजना फैलेगी। तब आप पिल पड़ेंगे और दस-बीस आदमियों को मार गिरायेंगे। वही सब जगह होता है और यहाँ भी होगा।'

सब इन्सपेक्टर ने ओठ चबाकर कहा — मैं आपसे कहता हूँ, यहाँ से चले जाइए, वरना मुझे जाब्ते की कार्रवाई करनी पड़ेगी।

जयराम ने अविचल भाव से कहा — और मैं आपसे कहता हूँ कि आप मुझे अपना काम करने दीजिए। मेरे बहुत-से भाई यहाँ जमा

हैं और मुझे उनसे बातचीत करने का उतना ही हक है जितना आपको।

इस वक्त तक सैकड़ों दर्शक जमा हो गये थे। दारोगा ने अफसरों से पूछे बगैर और कोई कार्रवाई करना उचित न समझा। अकड़ते हुए दूकान पर गये और कुरसी पर पाँव रखकर बोले — ये लोग तो मानने वाले नहीं हैं।

दूकानदार ने गिड़गिड़ाकर कहा — हुजूर, मेरी तो बधिया बैठ जाएगी।

दारोगा — दो-चार गुण्डे बुलाकर भगा क्यों नहीं देते? मैं कुछ न बोलूँगा। हाँ, जरा एक बोतल अच्छी-सी भेज देना। कल न जाने क्या भेज दिया, कुछ मजा ही नहीं आया।

थानेदार चला गया, तो चौधरी ने अपने साथी से कहा — देखा कल्लू, थानेदार कितना बिगड़ रहा था? सरकार चाहती है कि हम लोग खूब शराब पीयें और कोई हमें समझाने न पाये। शराब का पैसा भी तो सरकार ही में जाता है?

कल्लू ने दार्शनिक भाव से कहा — हर एक बहाने से पैसा खींचते हैं सब।

चौधरी — तो फिर क्या सलाह है? है तो बुरी चीज?

कल्लू — बहुत बुरी चीज है भैया, महात्मा जी का हुक्म है, तो छोड़ ही देना चाहिए।

चौधरी — अच्छा तो यह लो, आज से अगर पिये तो दोगला।

यह कहते हुए चौधरी ने बोतल जमीन पर पटक दी। आधी बोतल शराब जमीन पर बह कर सूख गयी।

जयराम को शायद जिंदगी में कभी इतनी खुशी न हुई थी। जोर-जोर से तालियाँ बजा कर उछल पड़े।

उसी वक्त दोनों ताड़ी पीनेवालों मे भी 'महात्मा जी की जय' पुकारी और अपनी हाँड़ी जमीन पर पटक दी। एक स्वयंसेवक ने लपक कर फूलों की माला ली और चारों आदमियों के गले में डाल दी।

## 3

सड़क की पटरी पर कई नशेबाज बैठे इन चारों आदमियों की तरफ उस दुर्बल भक्ति से ताक रहे थे, जो पुरुषार्थहीन मनुष्यों का लक्षण है। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति न था, जो अंगरेजों की मांस-मदिरा या ताड़ी को जिंदगी के लिए अनिवार्य समझता हो और

उसके बगैर जिंदगी की कल्पना भी न कर सके। सभी लोग नशे को दूषित समझते थे, केवल दुर्बलेन्द्रिय होने के कारण नित्य आ कर पी जाते थे। चौधरी जैसे घाघ पियक्कड़ को बोतल पटकते देख कर उनकी आँखें खुल गयीं

एक मरियल दाढ़ीवाले आदमी ने आकर चौधरी की पीठ ठोंकी। चौधरी ने उसे पीछे ढकेल कर कहा — पीठ क्या ठोंकते हो जी, जाकर अपनी बोतल पटक दो।

दाढ़ीवाले ने कहा — आज और पी लेने दो चौधरी! अल्लाह जानता है, कल से इधर भूलकर भी न आऊँगा।

चौधरी — जितनी बची हो, उसके पैसे हमसे ले लो। घर जाकर बच्चों को मिठाई खिला देना।

दाढ़ीवाले ने जाकर बोतल पटक दी और बोला — लो, तुम भी क्या कहोगे? अब तो हुए खुश!

चौधरी — अब तो न पीयोगे कभी?

दाढ़ीवाले ने कहा — अगर तुम न पीयोगे, तो मैं भी न पीऊँगा। जिस दिन तुमने पी, उसी दिन फिर शुरू कर दी।

चौधरी की तत्परता से दुराग्रह की जड़ें हिला दीं। बाहर अभी पाँच-छह आदमी और थे। वे सचेत निर्लज्जता से बैठे हुए अभी

तक पीते जाते थे। जयराम ने उनके सामने जा कर कहा — भाइयों, आपके पाँच भाइयों ने अभी आपके सामने अपनी-अपनी बोतल पटक दी। क्या आप उन लोगों को बाजी जीत ले जाने देंगे?

एक ठिगने, काले आदमी ने जो किसी अंगरेज का खाननामा मालूम होता था, लाल-लाल आँखें निकाल कर कहा — हम पीते हैं, तुमसे मतलब? तुमसे भीख माँगने तो नहीं जाते?

जयराम ने समझ लिया, अब बाजी मार ली। गुमराह आदमी जब विवाद करने पर उतर आये, तो समझ लो, वह रास्ते पर आ जायेगा। चुप्पा ऐब वह चिकना घड़ा है, जिस पर किसी बात का असर नहीं होता।

जयराम ने कहा — अगर मै अपने घर में आग लगाऊँ, तो उसे देखकर क्या आप मेरा हाथ न पकड़ लेंगे,? मुझे तो इसमें रत्ती भर संदेह नहीं है कि आप मेरा हाथ ही न पकड़ लेंगे, बल्कि मुझे वहाँ से जबरदस्ती खींच ले जायेंगे।

चौधरी ने खानसामा की तरफ मुग्ध आँखों से देखा, मानों कह रहा है-इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है? और बोला — जमादार, अब इसी बात पर बोतल पटक दो।

खानसामा ने जैसे काट खाने के लिए दाँत तेज कर लिए और बोला — बोतल क्यों पटक दूँ, पैसे नहीं दिये है?

चौधरी परास्त हो गया। जयराम ने बोला — इन्हें छोड़िए बाबू जी, यह लोग इस तरह मानने वाले असामी नहीं है। आप इनके सामने जान भी दे दें तो भी शराब न छोड़ेंगे। हाँ, पुलिस की एक घुड़की पा जायँ तो फिर कभी इधर भूल कर भी न आयें।

खानसामा ने चौधरी की ओर तिरस्कार के भाव रो देखा, जैसे कह रहा हो — क्या तुम समझते हो कि मैं मनुष्य हूँ, यह सब पशु है? फिर बोला — तुमसे क्या मतलब है जी, क्यों बीच में कूद पड़ते हो? मैं तो बाबू जी से बात कर रहा हूँ। तुम कौन होते हो बीच में बोलने वाले? मै तुम्हारी तरह नहीं हूँ कि बोतल पटक कर वाह-वाह कराऊँ। कल फिर मुँह में कालिख लगाऊँ, घर पर मँगवा कर पीऊँ? जब यहाँ छोड़ेंगे, तो सच्चे दिल से छोड़ेंगे। फिर कोई लाख रुपये भी दे तो आँख उठा कर न देखें।

जयराम — मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा है।

चौधरी ने खानसामा की ओर कटाक्ष करके कहा — क्या समझते हो, मैं कल फिर पीने आऊँगा?

खानसामा ने उद्दंडता से कहा — हाँ-हाँ; कहता हूँ, तुम आओगे और बद कर आओगे। कहो, पक्के कागज पर लिख दूँ!

चौधरी — अच्छा भाई, तुम बड़े धरमात्मा हो, मैं पापी सही। तुम छोड़ोगे तो जिंदगी-भर के लिए छोड़ोगे, मैं आज छोड़ कर कल फिर पीने लगूँगा, यही सही। मेरी एक बात गाँठ बाँध लो। तुम उस बखत छोड़ोगे, जब जिंदगी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। इसके पहले तुम नहीं छोड़ सकते। जब जिंदगी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। इसके पहले तुम नहीं छोड़ सकते।

खानसामा — तुम मेरे दिल का हाल क्या जानते हो?

चौधरी — जानता हूँ, तुम्हारे जैसे सैकड़ों आदमी को भुगत चुका हूँ।

खासनामा — तो तुमने ऐसे-वैसे बेशर्मों को देखा होगा। हयादार आदमियों को न देखा होगा।

यह कहते हुए उसने जा कर बोतल पटक दी और बोला — अब अगर तुम इस दूकान पर देखना, तो मुहँ में कालिख लगा देना।

चारों तरफ तालियाँ बजने लगीं। मर्द ऐसे होते हैं!

ठीकेदार ने दूकान के नीचे उतर कर कहा — तुम लोग अपनी-अपनी दूकान पर क्यों नहीं जाते जी? मैं तो किसी की दूकान पर नहीं जाता?

एक दर्शक ने कहा — खड़े हैं, तो तुमसे मतलब? सड़क तुम्हारी नहीं हैं? तुम गरीबों को लूट जाओ। किसी के बाल-बच्चे भूखों मरें तुम्हारा क्या बिगड़ता है। (दूसरे शराबियों से) क्या यारों, अब भी पीते जाओगे! जानते हो, यह किसका हुक्म है? अरे कुछ भी तो शर्म हो?

जयराम ने दर्शकों से कहा — आप लोग यहाँ भीड़ न लगायें और न किसी को भला-बुरा कहे।

मगर दर्शकों का समूह बढ़ता जाता था। अभी तक चार-पाँच आदमी बे-गम बैठे हुए कुल्हड़ चढ़ा रहे थे। एक मनचले आदमी ने जाकर उस बोतल को उठा लिया, जो उनके बीच मे रखी हुई थी और उसे पटकना चाहता था कि चारों शराबी उठ खड़े हुए और उसे पीटने लगे। जयराम और उसके स्वयं सेवक तुरंत वहाँ पहुँच गये और उसे बचाने की चेष्टा करने लगे कि चारों उसे छोड़ कर जयराम की तरफ लपके। दर्शकों ने देखा कि जयराम पर मार पड़ा चाहती है, तो कई आदमी झल्ला कर उन चारों शराबियों पर टूट पड़े। लातें, घूँसे और डंडे चलाने लगे। जयराम को इसका कुछ अवसर न मिलता था कि किसी को समझाये। दोनों हाथ फैलाये उन चारों के वारों से बच रहा था; वह चारों भी आपे से बाहर होकर दर्शकों पर डंडे चला रहे थे। जयराम दोनों तरफ से मार खाता था। शराबियों के वार भी उस पर पड़ते थे,

तमाशाइयों के वार भी उसी पर पड़ते थे; पर वह उनके बीच से हटता न था। अगर वह इस वक्त अपनी जान बचाकर हट जाता, तो शराबियों की खैरियत न थी। इसका दोष कांग्रेस पर पड़ता। वह कांग्रेस का इस आक्षेप से बचाने के लिए अपने प्राण देने पर तैयार था। मिसेज सक्सेना का अपने ऊपर हँसने का मौका वह न देना चाहता था।

आखिर उसके सिर पर डंडा इस जोर से पड़ा कि वह सिर पकड़ कर बैठ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगी। फिर उसे होश न रहा।

## 4

जयराम सारी रात बेहोश पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह को जब उसे होश आया, तो सारी देह में पीड़ा हो रही थी और कमजोरी इतनी थी कि रह-रह कर जी डूबता जाता था। एकाएक सिरहाने की तरफ आँख उठ गयी, तो मिसेज सकसेना बैठी नजर आयीं। उन्हें देखते ही स्वयंसेवकों के मना करने पर भी उठ बैठा। दर्द और कमजोरी दोनो जैसे गायब हो गयी। एक-एक अंग में स्फूर्ति दौड़ गयी।

मिसेज सकसेना ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा — आपको बड़ी चोट आयी। इसका सारा दोष मुझ पर है।

जयराम ने भक्तिमय कृतज्ञता के भाव से देख कर कहा — चोट तो ऐसी ज्यादा न था, इन लोगों ने बरबस पट्टी-सट्टी बाँध कर जख्मी बना दिया।

मिसेज सकसेना ने ग्लानित हो कर कहा — मुझे आपको न जाने देना चाहिए था।

जयराम — आपका वहाँ जाना उचित न था। मैं आपसे अब भी यही अनुरोध करूँगा कि उस तरफ न जाइएगा।

मिसेज सकसेना ने जैसे उन बाधाओं पर हँसकर कहा — वाह! मुझे आज से वहाँ पिकेट करने की आज्ञा मिल गयी है।

'आप मेरी इतनी विनय मान जाइएगा। शोहदों के लिए आवाज कसना बिलकुल मामूली बात है।'

'मैं आवाजों की परवाह नहीं करती!'

'तों फिर मैं भी आपके साथ चलूँगा'

'आप इस हालत में?' –मिसेज सक्सेना ने आश्चर्य से कहा।

'मैं बिलकुल अच्छा हूँ, सच!

‘यह नहीं हो सकता। जब तक डाक्टर यह न कह देगा कि अब आप वहाँ जाने के योग्य हैं, आपको न जाने दूँगी। किसी तरह नहीं।’

‘तो मैं भी आपको न जाने दूँगी।’

मिसेज सकसेना ने मृदु-व्यंग के साथ कहा — आप भी अन्य पुरुषों ही की भाँति स्वार्थ के पुतले हैं। सदा यश खुद लूटना चाहते हैं, औरतों को कोई मौका नहीं देना चाहते। कम से कम यह तो देख लीजिए कि मैं भी कुछ कर सकती हूँ या नहीं।

जयराम ने व्यथित कंठ से कहा — जैसी आपकी इच्छा!

तीसरे पहर मिसेज सकसेना चार स्वयंसेवकों के साथ बेगमगंज चलीं। जयराम आँखें बन्द किए चारपाई पर पड़ा था। शोर सुन कर चौंका और अपनी स्त्री से पूछा — यह कैसा शोर है?

स्त्री ने खिड़की से झाँक कर देखा और बोली — वह औरत, जो कल आयी थी झंडा लिए कई आदमियों के साथ जा रही है। इसमें शर्म भी नहीं आती।

जयराम ने उसके चेहरे पर क्षमा की दृष्टि डाली और विचार में डूब गया। फिर वह उठ खड़ा हुआ और बोला — मैं भी वहीं जाता हूँ।

स्त्री ने उसका हाथ पकड़ कर कहा — अभी कल मार खा कर आये हो, आज फिर जाने की सूझी!

जयराम ने हाथ छुड़ा कर कहा — तुम उसे मार कहती हो, मैं उसे उपहार समझता हूँ।

स्त्री ने उसका रास्ता रोक लिया — कहती हूँ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है, मत जाओ, क्यों मेरी जान के ग्राहक हुए हो? उसकी देह में हीरे नहीं जड़े हैं, जो वहाँ कोई नोच लेगा!

जयराम ने मिन्नत करके कहा — मेरी तबीयत बिलकुल अच्छी है चम्मू! अगर कुछ कसर है तो वह भी मिट जाएगी। भला सोचो, यह कैसे मुमकिन है कि देवी उन शोहदों के बीच में पिकेटिंग करने जाय और मैं बैठा रहूँ। मेरा वहाँ रहना जरूरी है! अगर कोई बात आ पड़ी, तो कम से कम मैं लोगों को समझा तो सकूँगा।

चम्मू ने जल कर कहा — यह क्यों नहीं कहते कि कोई और ही चीज खींचे लिये जाती है!

जयराम ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो — यह बात तुम्हारे दिल से नहीं, कंठ से निकल रही है और कतरा कर निकल गया। फिर द्वार पर खड़ा होकर बोला-शहर में तीन लाख से कुछ ही कम आदमी है, कमेटी में तीस मेम्बर हैं; मगर

सब के सब जी चुरा रहे हैं। लोगों को अच्छा बहाना मिल गया कि शराबखानों पर धरना देने के लिए स्त्रियों ही को इस काम के लिए उपयुक्त समझा जाता है? इसीलिए कि मरदों के सिर भूत सवार हो जाता है और जहाँ नम्रता से काम लेना चाहिए, वहाँ लोग उग्रता से काम लेने लगते हैं। वे देवियाँ क्या इसी योग्य हैं कि शोहदों के फिकरे सुनें और उनकी कुदृष्टि का निशाना बनें? कम से कम मैं यह नहीं देख सकता।

वह लँगड़ाता हुआ घर से निकल पड़ा। चम्मू ने फिर उसे रोकने का प्रयास नहीं किया। रास्ते में एक स्वयंसेवक मिल गया। जयराम ने उसे साथ लिया और एक ताँगे पर बैठ कर चला। शराबखाने से कुछ दूर इधर एक लेमनेड-बर्फ की दूकान थी। उसने ताँगे को छोड़ दिया और वालंटियर को शराबखाने भेज कर खुद उसी दूकान में जा बैठा।

दूकानदार ने लेमनेड का एक गिलास उसे देते हुए कहा — बाबू जी, कलवाले चारों बदमाश आज फिर आये हुए हैं। आपने न बचाया होता तो आज शराब या ताड़ी की जगह हल्दी-गुड़ पीते होते।

जयराम ने गिलास लेकर कहा — तुम लोग बीच में न कूद पड़ते, तो मैंने उन सबों को ठीक कर लिया होता।

दूकानदार ने प्रतिवाद किया — नहीं बाबू जी, वह सब छँटे हुए गुंडे हैं। मैं तो उन्हें अपनी दूकान के सामने खड़ा भी नहीं होने देता। चारों तीन-तीन साल काट आये हैं।

अभी बीस मिनट भी न गुजरे होंगे कि एक स्वयंसेवक आकर खड़ा हो गया। जयराम ने संचित हो कर पूछा — कहो, वहाँ क्या हो रहा है?

स्वयंसेवक ने कुछ ऐसा मुँह बना लिया, जैसे वहाँ की दशा कहना वह उचित नहीं समझता और बोल — कुछ नहीं, देवी जी आदमियों को समझा रही हैं।

जयराम ने उसकी ओर अतृप्त नेत्रों से ताका, मानों कह रहे हों — बस इतना ही! इतना तो मैं जानता ही था।

स्वयंसेवक ने एक क्षण बाद फिर कहा — देवियों का ऐसे शोहदों के सामने जाना अच्छा नहीं।

जयराम ने अधीर होकर पूछा — साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते, क्या बात है।

स्वयंसेवक डरते-डरते बोला — सब के सब उनसे दिल्लगी कर रहे हैं। देवियों का यहाँ आना अच्छा नहीं।

जयराम ने और कुछ न पूछा। डंडा उठाया और लाल-लाल आँखें निकाले बिजली की तरह कौंधकर शराबखाने के सामने जा पहुँचा और मिसेज सकसेना का हाथ पकड़ कर पीछे हटाता हुआ शराबियों से बोला — अगर तुम लोगों ने देवियों के साथ जरा भी गुस्ताखी की, तो तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। कल मैंने तुम लोगों की जान बचायी थी आज इसी डंडे से तुम्हारी खोपड़ी तोड़ कर रख दूँगा।

उसके बदले हुए तेवर को देख कर सब के सब नशेबाज घबड़ा गये। वे कुछ कहना चाहते थे कि मिसेज सकसेना ने गम्भीर भाव से पूछा — आप यहाँ क्यों आये! मैंने तो आपसे कहा था, अपनी जगह से न हिलिएगा। मैंने तो आपसे मदद न माँगी थी?

जयराम ने लज्जित हो कर कहा — मैं इस नीयत से यहाँ नहीं आया था। एक जरूरत से इधर आ निकला था। यहाँ जमाव देख कर आ गया। मेरे ख्याल में आप अब यहाँ से चलें। मैं आज कांग्रेस कमेटी में यह सवाल पेश करूँगा कि इस काम के लिए पुरुषों को भेजें।

मिसेज सकसेना ने तीखे स्वर में कहा — आपके विचार में दुनिया के सारे काम मरदों के लिए है!

जयराम — मेरा यह मतलब न था।

मिसेज सकसेना — तो आप जाकर आराम से लेटें और मुझे अपना काम करने दें।

जयराम वहीं सिर झुकाये खड़ा रहा।

मिसेज सकसेना ने पूछा — अब आप क्यों खड़े हैं?

जयराम ने विनीत स्वर में कहा — मैं भी यहीं एक किनारे खड़ा रहूँगा।

मिसेज़ सकसेना ने कठोर स्वर में कहा — जी नहीं, आप जायें।

जयराम धीरे-धीरे लदी हुई गाड़ी की भाँति चला और आकर फिर उसी लेमनेड की दूकान पर बैठ गया। उसे जोर की प्यास लगी थी। उसने एक गिलास शर्बत बनवाया और सामने मेज पर रख कर विचार में डूब गया; मगर आंखें और कान उसी तरफ़ लगे हुए थे।

जब कोई आदमी दूकान पर आता, वह चौंककर उसकी तरफ़ ताकने लगता — वहाँ कोई नयी बात तो नहीं हो गयी?

कोई आध घंटे बाद वही स्वयंसेवक फिर डरा हुआ-सा आकर खड़ा हो गया। जयराम ने उदासीन बनने की चेष्टा करके पूछा — वहां क्या हो रहा है जी?

स्वयंसेवक ने कानों पर हाथ रख कर कहा — मैं कुछ नहीं जानता बाबू जी, मुझसे कुछ न पूछिए।

जयराम ने एक साथ ही नम्र और कठोर होकर पूछा — फिर कोई छेड़छाड़ हुई?

स्वयंसेवक — जी नहीं, कोई छेड़छाड़ नहीं हुई। एक आदमी ने देवी जी को धक्का दे दिया, वे गिर पड़ीं।

जयराम निस्पंद बैठा रहा; पर उसके अन्तराल में भूकम्प-सा मचा हुआ था। बोला — उनके साथ के साथ के स्वयंसेवक क्या कर रहे हैं?

'खड़े हैं, देवी जी उन्हें बोलने ही नहीं देतीं।'

'तो क्या बड़े जोर से धक्का दिया?'

'जी हाँ, गिर पड़ीं। घुटनों में चोट आ गयी। वे आदमी साथ पी रहे थे। जब एक बोतल उड़ गयी, तो उनमें से एक आदमी दूसरी बोतल लेने चला। देवी जी ने रास्ता रोक लिया। बस, उसने धक्का दे दिया। वही जो काला-काला मोटा-सा आदमी है! कल वाले चारों आदमियों की शरारत है।'

जयराम उन्माद की दशा में वहाँ से उठा और दौड़ता हुए शराबखाने के सामने आया। मिसेज़ सकसेना सिर पकड़े जमीन

पर बैठी हुई थीं और वह काला मोटा आदमी दूकान के कठघरे के सामने खड़ा था। पचासों आदमी जमा थे। जयराम ने उसे देखते ही लपक कर उसकी गर्दन पकड़ ली और इतने जोर से दबाई कि उसकी आंखें बाहर निकल आयीं। मालूम होता था, उसके हाथ फौलाद के हो गये हैं।

सहसा मिसेज़ सक्सेना ने आकर उसका फौलादी हाथ पकड़ लिया और भवें सिकोड़ कर बोलीं — छोड़ दो इसकी गर्दन क्या इसकी जान ले लोगे?

जयराम ने और जोर से उसकी गर्दन दबायी और बोला — हाँ, ले लूँगा? ऐसे दुष्ट की यही सजा है।

मिसेज़ सकसेना ने अधिकार-गर्व से गर्दन उठाकर कहा — आपको यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं है।

एक दर्शक ने कहा — ऐसा दबाओ बाबूजी, कि साला ठंडा हो जाय। इसने देवी जी को ऐसा ढकेला कि बेचारी गिर पड़ीं। हमें तो बोलने का हुक्म नहीं है, नहीं तो हड्डी तोड़ कर रख देते।

जयराम ने शराबी की गर्दन छोड़ दी। वह किसी बाज के चंगुल से छूटी हुई चिड़िया की तरह सहमा हुआ खड़ा हो गया। उसे एक धक्का देते हुए उसने मिसेज़ सकसेना से कहा — आप यहाँ से

चलती क्यों नहीं? आप जायँ, मैं बैठता हूँ; अगर एक छटांक शराब बिक जाय, तो मेरा कान पकड़ लीजियेगा।

उसका दम फूलने लगा। आँखों के सामने अंधेरा छा रहा था। वह खड़ा न रह सका। जमीन पर बैठ कर रुमाल से माथे का पसीना पोंछने लगा।

मिसेज़ सकसेना ने परिहास करके कहा — आप कांग्रेस नहीं हैं कि मैं आपका हुक्म मानूँ। अगर आप यहाँ से न जायँगे, तो मैं सत्याग्रह करूँगी।

फिर एकाएक कठोर होकर बोलीं — जब तक कांग्रेस ने इस काम का भार मुझ पर रखा है, आपको मेरे बीच में बोलने का कोई हक नहीं है। आप मेरा अपमान कर रहे हैं। कांग्रेस-कमेटी के सामने आपको इसका जवाब देना होगा।

जयराम तिलमिला उठा। बिना कोई जवाब दिये लौट पड़ा और वेग से घर की तरफ चला; पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, उसकी गति मंद होती जाती थी। यहां तक कि बाजार के दूसरे सिरे पर आ कर वह रुक गया। रस्सी यहां खतम हो गयी। उसके आगे जाना उसके लिए असाध्य हो गया। जिस झटके ने उसे यहां तक भेजा था, उसकी शक्ति अब शेष हो गयी थी। उन शब्दों में जो

कटुता और चोट थी, अब उसे सहानुभूति और स्नेह की सुगंध आ रही थी।

उसे फिर चिंता हुई न जाने वहां क्या हो रहा है। कहीं उन बदमाशों ने और कोई दुष्टता न की हो, या पुलिस न आ जाय।

वह बाजार की तरफ मुड़ा लेकिन एक कदम ही चल कर फिर रुक गया। ऐसे पसोपेश में वह कभी न पड़ा था।

सहसा उसे वही स्वयंसेवक दौड़ता आता दिखाई देता। वह बदहवास होकर उससे मिलने के लिए खुद भी उसकी तरफ दौड़ा। बीच में दोनों मिल गये।

जयराम ने हाँफते हुए पूछा — क्या हुआ? क्यों भागे जा रहे हो?

स्वयंसेवक ने दम लेकर कहा — बड़ा गजब हो गया बाबू जी! आपके आने के बाद वह काला शराबी बोतल लेकर दूकान से चला, तो देवी जी दरवाजे पर बैठ गयीं। वह बार-बार देवी जी को हटाकर निकलना चाहता है; पर वह फिर आ कर बैठ जाती हैं। धक्कम-धक्के में उनके कुछ कपड़े फट गये हैं और कुछ चोट भी...

अभी बात पूरी न हुई थी कि जयराम शराबखाने की तरफ दौड़ा।

## 5

जयराम शराबखाने के सामने पहुँचा तो देखा, मिसेज़ सक्सेना के चारों स्वयंसेवक दूकान के सामने लेटे हुए हैं और मिसेज़ सक्सेना एक किनारे सिर झुकाये खड़ी हैं। जयराम ने डरते-डरते उनके चेहरे पर निगाह डाली। आंचल पर रक्त की बूँदें दिखाई दीं। उसे फिर कुछ सुध न रही। खून की वह चिनगारियाँ जैसे उसके रोम-रोम में समा गयीं। उसका खून खौलने लगा, मानो उसके सिर खून सवार हो गया हो। वह उन चारों शराबियों पर टूट पड़ा और पूरे जोर के साथ लकड़ी चलाने लगा। एक-एक बूँद की जगह वह एक-एक घड़ा खून बहा देना चाहता था। खून उसे कभी इतना प्यारा न था। खून में इतनी उत्तेजना है, इसकी उसे खबर न थी।

वह पूरे जोर से लकड़ी चला रहा था। मिसेज़ सक्सेना कब आकर उसके सामने खड़ी हो गयीं उसे कुछ पता न चला। जब वह जमीन पर गिर पड़ीं, तब उसे जैसे होश हुआ गया हो। उसने लकड़ी फेंक दी और वहीं निश्चल, निस्पंद खड़ा हो गया, मानों उसका रक्तप्रवाह रुक गया है।

चारों स्वयंसेवकों ने दौड़कर मिसेज़ सक्सेना को पंखा झलना शुरु किया। दूकानदार ठंडा पानी लेकर दौड़ा। एक दर्शक डाक्टर को बुलाने भागा, पर जयराम वहीं बेजान खड़ा था जैसे स्वयं अपने तिरस्कार-भाव का पुतला बन गया हो। अगर इस वक्त कोई उसकी आँखें लाल लोहे से फोड़ देता, तब भी वह चूँ न करता।

फिर वहीं सड़क पर बैठकर उसने अपने लज्जित, तिरस्कृत, पराजित मस्तक को भूमि पर पटक दिया और बेहोश हो गया।

उसी वक्त उस काले मोटे शराबी ने बोतल जमीन पर पटक दी और उसके सिर पर ठंडा पानी डालने लगा।

एक शराबी ने लैसंसदार से कहा — तुम्हारा रोजगार अन्य लोगों की जान लेकर रहेगा। अब तो अभी दूसरा ही दिन है।

लैसंसदार ने कहा — कल से मेरा इस्तीफा है। अब स्वदेशी कपड़े का रोजगार करूँगा, जिसमें जस भी है और उपकार भी।

शरीबी ने कहा — घाटा तो बहुत रहेगा।

दूकानदार ने किस्मत ठोंक कर कहा — घाटा-नफा तो जिंदगानी के साथ है।

# जुलूस

पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झंडियाँ और झंडे लिये बंदेमातरम् गाते हुए माल के सामने से निकले। दोनों तरफ दर्शकों की दीवारें खड़ी थीं, मानो यह कोई तमाशा है और उनका काम केवल खड़े-खड़े देखना है।

शंभुनाथ ने दूकान की पटरी पर खड़े होकर अपने पड़ोसी दीनदयाल से कहा — सब के सब काल के मुँह में जा रहे हैं। आगे सवारों का दल मार-मार भगा देगा।

दीनदयाल ने कहा — महात्मा जी भी सठिया गये हैं। जुलूस निकालने से स्वराज्य मिल जाता तो अब तक कब का मिल गया होता। और जुलूस में हैं कौन लोग, देखो — लौंडे, लफंगे, सिरफिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी नहीं।

मैकू चटिटयों और स्लीपरों की माला गरदन में लटकाये खड़ा था। इन दोनों सेठों की बातें सुन कर हँसा।

शम्भू ने पूछा — क्यों हँसे मैकू? आज रंग चोखा मालूम होता है।

मैकू — हँसा इस बात पर जो तुमने कहीं कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है? बंगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते है, कौन तकलीफ है! मर तो हम लोग रहे है जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिए गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहां आये पुलिस के कोड़े खाने के लिए? तुमने भी भली कही?

शम्भू — तुम यह सब बातें क्या समझोगे मैकू, जिस काम में चार बड़े आदमी अगुआ होते हैं उसकी सरकार पर भी धाक बैठ जाती है। लौंडों-लफंगों का गोल भला हाकिमों की निगाह में क्या जँचेगा?

मैकू ने ऐसी दृष्टि से देखा, जो कह रही थी-इन बातों के समझने की ठीका कुछ तुम्हीं ने नहीं लिया है और बोला — बड़े आदमी को तो हमीं लोग बनाते-बिगाड़ते हैं या कोई और? कितने ही लोग जिन्हें कोई पूछता भी न था, हमारे ही बनाये बड़े आदमी बन गये और अब मोटरों पर निकलते हैं और हमें नीच समझते हैं। यह लोगों की तकदीर की खूबी है कि जिसकी जरा बढ़ती हुई और उसने हमसे आँखें फेरीं। हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने को

लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है। और हमें किसी बड़े आदमी की परवाह नहीं है। सच पूछो, तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। इन्हें सरकार ने कोई अच्छी-सी जगह दे दी, बस उसका दम भरने लगे।

दीनदयाल — नया दारोगा बड़ा जल्लाद है। चौरास्ते पर पहुँचते ही हंटर ले कर पिल पड़ेगा। फिर देखना, सब कैसे दुम दबा कर भागते हैं। मजा आयेगा।

जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरास्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों आर सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।

सहसा दारोगा बीरबल सिंह घोड़ा बढ़ाकर जुलूस के सामने आ गये और बोले — तुम लोगों को आगे जाने का हुक्म नहीं है।

जुलूस के बूढ़े नेता इब्राहिम अली ने आगे बढ़कर कहा — मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दूकानें लूटने या मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मकसद इससे कहीं ऊँचा हैं।

बीरबल — मुझे यह हुक्म है कि जुलूस यहाँ से आगे न जाने पाये।

इब्राहिम — आप अपने अफ़सरों से जरा पूछ न लें।

बीरबल — मैं इसकी कोई जरूरत नहीं समझता।

इब्राहिम — तो हम लोग यहीं बैठते हैं। जब आप लोग चलें जायँगे तो हम तो निकल जायँगे।

बीरबल — यहाँ खड़े होने का भी हुक्म नहीं है। तुमको वापस जाना पड़ेगा।

इब्राहिम ने गंभीर भाव से कहा — वापस तो हम न जायेंगे। आपको या किसी को भी, हमें रोकने का कोई हक नहीं। आप अपने सवारों, संगीनों और बन्दूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिए, मगर आप हमें लौटा नहीं सकते। न जाने वह दिन कब आयेगा, जब हमारे भाई-बन्द ऐसे हुक्मों की तामील करने से साफ़ इन्कार कर देंगे, जिनकी मंशा महज कौम को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखना है।

बीरबल ग्रेजुएट था। उसका बाप सुपरिंटेंडेंट पुलिस था। उसकी नस-नस में रोब भरा हुआ था। अफ़सरों की दृष्टि में उसका बड़ा सम्मान था। खासा गोरा चिट्टा, नीली आँखों और भूरे बालों वाला तेजस्वी पुरुष था। शायद जिस वक्त वह कोट पहन कर ऊपर से हैट लगा लेता तो वह भूल जाता था कि मैं भी यहाँ का रहने वाला हूँ। शायद वह अपने को राज्य करनेवाली जाति का अंग समझने लगता था; मगर इब्राहिम के शब्दों में जो तिरस्कार भरा

हुआ था, उसने जरा देर के लिए उसे लज्जित कर दिया। पर मुआमला नाजुक था। जुलूस को रास्ता दे देता है, तो जवाब तलब हो जायगा; वहीं खड़ा रहने देता है, तो यह सब ना जाने कब तक खड़े रहें। इस संकट में पड़ा हुआ था कि उसने डी. एस. पी. को घोड़े पर आते देखा। अब सोच-विचार का समय न था। यही मौका था कारगुजारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन निकाल लिया और घोड़े को एड़ लगाकर जुलूस पर चढ़ाने लगा। उसे देखते ही और सवारों ने भी घोड़ों को जुलूस पर चढ़ाना शुरू कर दिया। इब्राहिम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे जोर से पड़ा कि उसकी आँखें तिलमिला गयीं। खड़ा न रहा सका। सिर पकड़ कर बैठ गया। उसी वक्त दारोगा जी के घोड़े ने दोनों पाँव उठाये और ज़मीन पर बैठा हुआ इब्राहिम उसके टापों के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शांत खड़ा था। इब्राहिम को गिरते देख कर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके; मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रभावित न हो जाना उसके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है, तो फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें? लोगों

को खयाल आया, शहर के लाखों आदमियों की निगाहे हमारी तरफ़ लगी हुई हैं। यहाँ से यह झंडा लेकर हम लौट जायँ, तो फिर किस मुँह से आजादी का नाम लेंगे; मगर प्राण-रक्षा के लिए भागने का किसी को ध्यान भी न आता था। यह पेट के भक्तों, किराये के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयंसेवकों का, आजादी के दीवानों का संगठित दल था — अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझता था। कितने ही के सिरों से खून जारी था, कितने ही के हाथ जख्मी हो गये थे। एक हल्ले में यह लोग सवारों की सफ़ो को चीर सकते थे, मगर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं — सिद्धांत की, धर्म की, आदर्श की।

दस-बारह मिनट तक यों ही डंडों की बौछार होती रही और लोग शांत खड़े रहे।

## 2

इस मार-धाड़ की खबर एक क्षण में बाजार में जा पहुँची। इब्राहिम घोड़े से कुचल गये, कई आदमी जख्मी हो गये, कई के हाथ टुट गये, मगर न वे लोग पीछे फिरते हैं और न पुलिस उन्हें आगे जाने देती है।

मैकू ने उत्तेजित होकर कहा — अब तो भाई, यहाँ नहीं रही जाता। मैं भी चलता हूँ।

दीनदयाल ने कहा — हम भी चलते हैं भाई, देखी जायगी।

शम्भू एक मिनट तक मौन खड़ा रहा। एकाएक उसने भी दूकान बढ़ायी और बोला — एक दिन तो मरना ही हैं, जो कुछ होना है, हो। आखिर वे लोग सभी के लिए तो जान दे रहे है। देखते-देखते अधिकांश दूकानें बन्द हो गयीं। वह लोग, जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे इधर-उधर से दौड़ पड़े और हजारों आदमियों का एक विराट् दल घटना-स्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था,जिसे सिद्धान्त और आदर्श की परवाह न थी। जो मरने के लिए ही नहीं मारने के लिए भी तैयार थे। कितनों ही के हाथों में लाठियाँ थी, कितने ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस, सब-के-सब मन में एक दृढ़ संकल्प किये लपके चले जा रहे थे, मानो कोई घटा उमड़ी चली आती हो।

इस दल को दूर से देखते ही सवारों में कुछ हलचल पड़ी। बीरबल सिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। डी. एस. पी. ने अपनी मोटर बढ़ायी। शांति और अहिंसा के व्रतधारियों पर डंडे

बरसाना और बात थी, एक उन्मत्त दल से मुकाबला करना दूसरी बात। सवार और सिपाही पीछे खिसक गये।

इब्राहिम की पीठ पर घोड़े न टाप रख दी। वह अचेत जमीन पर पड़े थे। इन आदमियों का शोरगुल सुन कर आप ही आप उनकी आँखें खुल गयीं। एक युवक को इशारे से बुलाकर कहा — क्यों कैलाश, क्या कुछ लोग शहर से आ रहे हैं।

कैलाश ने उस बढ़ती हुई घटा की ओर देखकर कहा — जी हाँ, हजारों आदमी है।

इब्राहिम — तो अब खैरियत नहीं है। झंडा लौटा दो। हमें फौरन लौट चलना चाहिए, नहीं तूफान मच जायगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करनी है। फौरन लौट चलो।

यह कहते हुए उन्होंने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सके।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गये। झंडियों के बाँसों, साफों और रूमालों से चटपट एक स्ट्रेचर तैयार हो गया। इब्राहिम को लोगों ने उस पर लिटा दिया और पीछे फिरे। मगर क्या वह परास्त हो गये थे? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष हो, तो हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगांतकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके हित परिस्थितियों के

कारण हमारे हितों से भिन्न है। हमें उनसे वैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते कि शहर में लूट और दंगे का बाजार गर्म हो जाय और हमारे धर्मयुद्ध का अन्त लूटी हुई दूकानें, फूटे हुए सिर हों, उनकी विजय का सबसे उज्जवल चिन्ह यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग, जो पहले उन पर हँसते थे; उनका धैर्य और साहस देख कर उनकी सहायता के लिये निकल पड़े थे। मनोवृति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उसकी मनोवृत्तियों का बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे, उसी दिन स्वराज्य सूर्य उदय होगा।

## 3

तीन दिन गुजर गये थे। बीरबल सिंह अपने कमरे में बैठे चाय पी रहे थे और उनकी पत्नी मिट्ठन बाई शिशु को गोद में लिए सामने खड़ी थीं।

बीरबल सिंह ने कहा — मैं क्या करता उस वक्त। पीछे डी. एस. पी. खड़ा था। अगर उन्हें रास्ता दे देता तो अपनी जान मुसीबत में फँसती।

मिट्ठन बाई ने सिर हिला कर कहा — तुम कम से कम इतना तो कर ही सकते थे कि उन पर डंडे न चलाने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डंडे चलाना है? तुम ज्यादा से ज्यादा उन्हें रोक सकते थे। कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाय, तो शायद तुम्हें बड़ा आनन्द आयेगा, क्यों।

बीरबल सिंह ने खिसिया कर कहा — तुम तो बात नहीं समझती हो!

मिट्ठन बाई — मैं खूब समझती हूँ। डी. एस. पी. पीछे खड़ा था। तुमने सोचा होगा ऐसी कारगुजारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या तुम समझते हो, उस दल में कोई भला आदमी न था? उसमें कितने आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसों को नौकर रख सकते है। विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बढ़े हुए होंगे। मगर तुम उन पर डंडे चला रहे थे और उन्हें घोड़े से कुचल रहे थे, वाह री जवाँमर्दी!

बीरबल सिंह ने बेहयाई की हँसी के साथ कहा — डी. एस. पी. ने मेरा नाम नोट कर लिया है। सच!

दारोगा जी ने समझा था कि यह सूचना देकर वह मिट्ठन बाई को खुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं, जबान से कही जाती है। स्वार्थ दिल की गहराइयों में बैठा होता है। वह गम्भीर विचार का विषय है।

मगर मिट्ठन बाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा न नजर आयी, ऊपर की बातें शायद गहराइयों तक पहुँच गयीं थीं! बोलीं — जरूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्दी तरक्की भी मिल जाय। मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रंग कर तरक्की पायी, तो क्या पायी! यह तुम्हारी कारगुजारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुजारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।

एकाएक एक सिपाही ने बरामदे में खड़े हो कर कहा — हुजूर, यह लिफाफा लाया हूँ। बीरबल सिंह ने बाहर निकलकर लिफाफा ले लिया और भीतर की सरकारी चिट्ठी निकाल कर पढ़ने लगे। पढ़कर उसे मेज पर रख दिया।

मिट्ठन ने पूछा — क्या तरक्की का परवाना आ गया?

बीरबल सिंह ने झेंपकर कहा — तुम तो बनाती हो! आज फिर कोई जुलूस निकलने वाला है। मुझे उसके साथ रहने का हुक्म हुआ है।

मिटठन — फिर तो तुम्हारी चाँदी है। तैयार हो जाओ। आज फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़-बढ़ कर हाथ दिखलाना! डी. एस. पी. भी जरूर आयेंगे। अबकी तुम इंसपेक्टर हो जाओगे। सच!

बिरबल सिंह ने माथा सिकोड़कर कहा — कभी-कभी तुम बे सिर-पैर की बातें करने लगती हो। मान लो, मै जाकर चुपचाप खड़ा रहूँ, तो क्या नतीजा होगा। मैं नालायक समझा जाऊँगा और मेरी जगह कोई दूसरा आदमी भेज दिया जायगा। कहीं शुबहा हो गया कि मुझे स्वराज्यवादियों से सहानुभूति है, तो कहीं का न रहूँगा। अगर बर्खास्त भी न हुआ तो लैन की हाजिरी तो हो ही जायगी। आदमी जिस दुनिया में रहता है, उसी का चलन देखकर काम करता है। मैं बुद्धिमान न सही; पर इतना जानता हूँ कि ये लोग देश और जाति का उद्धार करने के लिये ही कोशिश कर रहे है। यह भी जानता हूँ कि सरकार इस ख्याल को कुचल डालना चाहती है। ऐसा गधा नहीं हूँ कि गुलामी की जिंदगी पर गर्व करूँ; लेकिन परिस्थिति से मजबूर हूँ।

बाजे की आवाज कानों में आयी। बीरबल सिंह ने बाहर जाकर पूछा। मालूम हुआ स्वराज्य वालों का जुलूस आ रहा है। चटपट वर्दी पहनी, साफा बाँधा और जेब में पिस्तौल रख कर बाहर आये। एक क्षण में घोड़ा तैयार हो गया। कांस्टेबल पहले ही से तैयार बैठे थे। सब लोग डबल मार्च करते हुए जुलूस की तरफ चले।

## 4

ये लोग डबल मार्च करते हुए कोई पन्द्रह मिनट में जुलूस के सामने पहुँच गये। इन लोगों को देखते ही अगणित कंठों से 'वंदेमातरम्' की एक ध्वनि निकली, मानों मेघमंडल में गर्जन का शब्द हुआ हो, फिर सन्नाटा छा गया। उस जुलूस में और इस जुलूस में कितना अन्तर था! वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर और वेदना के बाद आज उस जीवन का अन्त हो गया, जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते समय वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहला कर दफन किया जाय और मेरे मजार पर स्वराज्य

का झंडा खड़ा किया जाय। उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का पर्दा-सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था। जैसे उसे गोली लग गयी हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाजार बन्द हो गये, इक्कों और ताँगों का कहीं पता न था जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक्त जनाजा उठा, लाख-सवालाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आँसुओं से लाल न हो।

बीरबल सिंह अपने कांस्टेबलों और सवारों को पाँच-पाँच गज के फासले पर जुलूस के साथ चलने का हुक्म देकर खुद पीछे चले गये। पिछली सफों में कोई पचास गज तक महिलाएँ थीं। दारोगा ने उसकी तरफ ताका। पहली ही कतार में मिट्ठन बाई नजर आयीं। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा, वही थी। मिट्ठन ने उनकी तरफ एक बार देखा और आँख फेर लीं, पर उसकी एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी कि बीरबल सिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी-सी दौड़ गयी। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हल्के, इतने दुर्बल इतने जलील न हुए थे।

सहसा एक युवती ने दारोगा जी की तरफ देख कर कहा — कोतवाल साहब कहीं हम लोगों पर डंडे न चला दीजिएगा। आपको देख कर भय हो रहा है!

दूसरी बोली — आप ही के कोई भाई तो थे, जिन्होंने उस माल के चौरस्ते पर इस पुरूष पर आघात किये थे।

मिट्ठन ने कहा — आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे।

बीसियों ही मुँहों से आवाजें निकलीं — अच्छा, यह वही महाशय है? महाशय आपका नमस्कार है। यह आप ही की कृपा का फल है कि आज हम भी आपके डंडे के दर्शन के लिए आ खड़ी हुई है!

बीरबल ने मिट्ठनबाई की ओर आँखों का भाला चलाया; पर मुँह से कुछ न बोले। एक तीसरी महिला ने फिर कहा — हम एक जलसा करके आपको जयमाल पहनायेंगे और आपका यशोगान करेंगे।

चौथी ने कहा — आप बिलकुल अंगरेज मालूम होते हैं, जभी इतने गोरे हैं!

एक बुढ़िया ने आँखें चढ़ाकर कहा — मेरी कोख में ऐसा बालक जन्मा होता, तो उसकी गर्दन मरोड़ देती!

एक युवती ने उसका तिरस्कार करके कहा — आप भी खूब कहती हैं, माताजी, कुत्ते तक तो नमक का हक अदा करते हैं, यह तो आदमी हैं!

बुढ़िया ने झल्ला कर कहा — पेट के गुलाम, हाय पेट, हाय पेट!

इस पर कई स्त्रियों ने बुढ़िया को आड़े हाथों ले लिया और वह बेचारी लज्जित होकर बोली — अरे, मैं कुछ कहती थोड़े ही हूँ। मगर ऐसा आदमी भी क्या, जो स्वार्थ के पीछे अंधा हो जाय।

बीरबल सिंह अब और न सुन सके। घोड़ा बढ़ाकर जुलूस से कई गज पीछे चले गये। मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है; स्त्रियाँ लज्जित करती हैं, तो ग्लानि उत्पन्न होती है। बीरबल सिंह की इस वक्त इतनी हिम्मत न थी कि फिर उन महिलाओं के सामने जाते। अपने अफसरों पर क्रोध आया। मुझी को बार-बार क्यों इन कामों पर तैनात किया जाता है? और भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं लाया जाता? क्या मैं ही सब से गया-बीता हूँ। क्या मैं ही सबसे भावशून्य हूँ।

मिट्ठी इस वक्त मुझे दिल मे कितना कायर और नीच समझ रही होगी? शायद इस वक्त मुझे इस वक्त मुझे कोई मार डाले, तो वह जबान भी न खोलेगीं। शायद मन में प्रसन्न होगी कि अच्छा हुआ। अभी कोई जाकर साहब से कह दे कि बीरबल सिंह की

स्त्री जुलूस में निकली थी, तो कहीं का न रहूँ! मिट्टी जानती है, समझती फिर भी निकल खड़ी हुई। मुझसे पूछा तक नहीं। कोई फिक्र नहीं है न, जभी ये बातें सूझती हैं, यहाँ सभी बेफिक्र हैं, कालेजों और स्कूलों के लड़के, मजदूर पेशेवर इन्हें क्या चिंता? मरन तो हम लोगों की है, जिनके बाल-बच्चे हैं और कुल-मर्यादा का ध्यान हैं। सब की सब मेरी तरफ कैसा घुर रही थी, मानों खा जायँगीं।

जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुजरता हुआ चला जा रहा था। दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थी। बीरबल सिंह को आज उनके चेहरों पर एक नयी स्फूर्ति, एक नया उत्साह, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्ति थी वृक्षों के चेहरे पर, उत्साह युवकों के और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनको यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथभ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की भाँति सिर झुका कर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहला शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों को बीच के नालों और जंगलों की परवाह नहीं हैं। सब उन सुनहले लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

ग्यारह बजते-बजते जुलूस नदी के किनारे जा पहुँचा, जनाजा उतारा गया और लोग शव को गंगा-स्नान कराने के लिए चले। उसके शीतल, शांत, पीले मस्तक पर लाठी की चोट साफ नजर आ रही थी। रक्त जम कर काला हो गया था। सिर के बड़े-बड़े बाल खून जम जाने से किसी चित्रकार की तूलिका की भाँति चिमट गये थे। कई हजार आदमी इस शहीद के अंतिम दर्शनों के लिए, मंडल बाँधकर खड़े हो गये। बीरबल सिंह पीछे घोड़े पर सवार खड़े थे। लाठी की चोट उन्हें भी नजर आयी। उनकी आत्मा ने जोर से धिक्कारा। वह शव की ओर न ताक सके। मुँह फेर लिया। जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिनके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं उसका मैंने इतना अपमान किया। उनकी आत्मा इस समय स्वीकार कर रही थी कि उस निर्दय प्रहार में कर्तव्य के भाव का लेश भी न था — केवल स्वार्थ था, कारगुजारी दिखाने की हवस और अफसरों को खुश करने की लिप्सा थी। हजारों आँखें क्रोध से भरी हुई उनकी ओर देख रही थी; पर वह सामने ताकने का साहस न कर सकते थे।

एक कांस्टेबल ने आकर प्रशंसा की — हुजूर का हाथ गहरा पड़ा था। अभी तक खोपड़ी खुली हुई है। सबकी आँखें खुल गयीं।

बीरबल ने उपेक्षा की — मैं इसे अपनी जवाँमर्दी नहीं, अपना कमीनापन समझता हूँ।

कांस्टेबल ने फिर खुशामद की —बड़ा सरकश आदमी था हुजूर!

बीरबल ने तीव्र भाव से कहा — चुप रहो! जानते भी हो, सरकश किसे कहते है? सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते है। उन्हें सरकश नहीं कहते जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरते हों। हमारी बदनसीबी है कि जिनकी मदद करनी चाहिए उनका विरोध कर रहे हैं यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है। स्नान समाप्त हुआ। जुलूस यहाँ से फिर रवाना हुआ।

## 5

शव को जब खाक के नीचे सुला कर लोग लौटने लगे तो दो बज रहे थे। मिट्ठन कई स्त्रियों के साथ-साथ कुछ दूर तक तो आयी, पर क्वीन्स-पार्क में आकर ठिठक गयी। घर जाने की इच्छा न हुई। वह जीर्ण, आहत, रक्तरंजित शव, मानों उसके विरक्त हो गया था कि अब उसे धिक्कारने की भी उसकी इच्छा न

थी। ऐसे स्वार्थी मनुष्य पर भय के सिवा और किसी चीज का असर हो सकता है, इसका उसे विश्वास ही न था।

वह बड़ी देर तक पार्क में घास पर बैठी सोचती रही, पर अपने कर्तव्य का कुछ निश्चय न कर सकी। मैके जा सकती थी, किन्तु वहाँ से महीने दो महीने में फिर इसी घर आना पड़ेगा। नहीं मैं किसी की आश्रित न बनूँगी। क्या मैं अपने गुजर —बसर को भी नहीं कमा सकती? उसने स्वयं भाँति-भाँति की कठिनाइयों की कल्पना की; पर आज उसकी आत्मा में न जाने इतना बल कहाँ से आ गया। इन कल्पनाओं का ध्यान में लाना ही उसे अपनी कमजोरी मालूम हुई।

सहसा उसे इब्राहिम अली की वृद्धा विधवा का खयाल आया। उसने सुना था, उनके लड़के-बाले नहीं हैं। बेचारी बैठी रो रही होंगी। कोई तसल्ली देना वाला भी पास न होगा। वह उनके मकान की ओर चलीं। पता उसने पहले ही अपने साथ की औरतों से पूछ लिया था। वह दिल में सोचती जाती थी — मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उन्हें किन शब्दों में समझाऊँगी। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह इब्राहिम अली के घर पर पहुँच गयी। मकान एक गली में था, साफ-सुथरा; लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थीं। उसने धड़कते हुए हृदय से अंदर कदम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर वह वृद्धा बैठी हुई

थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान दिया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से बातें कर रहा था। मिट्ठन उस युवक को देखकर चौंक पड़ी — वह बीरबल सिंह थे।

उसने क्रोधमय आश्चर्य से पूछा — तुम यहाँ कैसे आये?

बीरबल सिंह ने कहा — उसी तरह जैसे तुम आयीं। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ!

मिट्ठन के गोरे मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्जवल विभूति नजर आयी, वह अकथनीय थी! ऐसा जान पड़ा, मानों उसके जन्म-जन्मांतर के क्लेश मिट गये हैं, वह चिंता और माया के बंधनों से मुक्त हो गयी है।

# मैकू

कादिर और मैकू ताड़ीखाने के सामने पहुँचे; तो वहाँ कांग्रेस के वालंटियर झंडा लिए खड़े नजर आये। दरवाजे के इधर-उधर हजारों दर्शक खड़े थे। शाम का वक्त था। इस वक्त गली में पियक्कड़ों के सिवा और कोई न आता था। भले आदमी इधर से निकलते झिझकते। पियक्कड़ों की छोटी-छोटी टोलियाँ आती-जाती रहती थीं। दो-चार वेश्याएँ दूकान के सामने खड़ी नजर आती थीं। आज यह भीड़-भाड़ देख कर मैकू ने कहा — बड़ी भीड़ है बे, कोई दो-तीन सौ आदमी होंगे।

कादिर ने मुस्करा कर कहा — भीड़ देखकर डर गये क्या? यह सब हुर्र हो जायँगे, एक भी न टिकेगा। यह लोग तमाशा देखने आये हैं, लाठियाँ खाने नहीं आये हैं।

मैकू ने संदेह के स्वर में कहा — पुलिस के सिपाही भी बैठे हैं। ठीकेदार ने तो कहा था, पुलिस न बोलेगी।

कादिर — हाँ बे, पुलिस न बोलेगी, तेरी नानी क्यों मरी जा रही है। पुलिस वहाँ बोलती है, जहाँ चार पैसे मिलते है या जहाँ कोई

औरत का मामला होता है। ऐसी बेफजूल बातों में पुलिस नहीं पड़ती। पुलिस तो और शह दे रही है। ठीकेदार से साल में सैकड़ों रुपये मिलते हैं। पुलिस इस वक्त उसकी मदद न करेगी तो कब करेगी?

मैकू — चलो, आज दस हमारे भी सीधे हुए। मुफ्त में पियेंगे वह अलग, मगर हम सुनते हैं, कांग्रेसवालों में बड़े-बड़े मालदार लोग शरीक है। वह कहीं हम लोगों से कसर निकालें तो बुरा होगा।

कादिर — अबे, कोई कसर-वसर नहीं निकालेगा, तेरी जान क्यों निकल रही है? कांग्रेसवाले किसी पर हाथ नहीं उठाते, चाहे कोई उन्हें मार ही डाले। नहीं तो उस दिन जुलूस में दस-बारह चौकीदारों की मजाल थी कि दस हजार आदमियों को पीट कर रख देते। चार तो वही ठंडे हो गये थे, मगर एक ने हाथ नहीं उठाया। इनके जो महात्मा हैं, वह बड़े भारी फकीर है! उनका हुक्म है कि चुपके से मार खा लो, लड़ाई मत करो।

यों बातें करते-करते दोनों ताड़ीखाने के द्वार पर पहुँच गये। एक स्वयंसेवक हाथ जोड़कर सामने आ गया और बोला — भाई साहब, आपके मजहब में ताड़ी हराम है।

मैकू ने बात का जवाब चाँटे से दिया। ऐसा तमाचा मारा कि स्वयंसेवक की आँखों में खून आ गया। ऐसा मालूम होता था,

गिरा चाहता है। दूसरे स्वयंसेवक ने दौड़कर उसे सँभाला। पाँचों उँगलियो का रक्तमय प्रतिबिम्ब झलक रहा था।

मगर वालंटियर तमाचा खाकर भी अपने स्थान पर खड़ा रहा। मैकू ने कहा — अब हटता है कि और लेगा?

स्वयंसेवक ने नम्रता से कहा — अगर आपकी यही इच्छा है, तो सिर सामने किये हुए हूँ। जितना चाहिए, मार लीजिए। मगर अंदर न जाइए।

यह कहता हुआ वह मैकू के सामने बैठ गया।

मैकू ने स्वयंसेवक के चेहरे पर निगाह डाली। उसकी पाँचों उँगलियों के निशान झलक रहे थे। मैकू ने इसके पहले अपनी लाठी से टूटे हुए कितने ही सिर देखे थे, पर आज की-सी ग्लानि उसे कभी न हुई थी। वह पाँचों उँगलियों के निशान किसी पंचशूल की भाँति उसके हृदय में चुभ रहे थे।

कादिर चौकीदारों के पास खड़ा सिगरेट पीने लगा। वहीं खड़े-खड़े बोला — अब, खड़ा क्या देखता है, लगा कसके एक हाथ।

मैकू ने स्वयंसेवक से कहा — तुम उठ जाओ, मुझे अन्दर जाने दो।

'आप मेरी छाती पर पाँव रख कर चले जा सकते हैं।'

‘मैं कहता हूँ, उठ जाओ, मै अन्दर ताड़ी न पीऊँगा, एक दूसरा ही काम है।’

उसने यह बात कुछ इस दृढ़ता से कही कि स्वयंसेवक उठकर रास्ते से हट गया। मैकू ने मुस्करा कर उसकी ओर ताका। स्वयंसेवक ने फिर हाथ जोड़कर कहा — अपना वादा भूल न जाना।

एक चौकीदार बोला — लात के आगे भूत भागता है, एक ही तमाचे में ठीक हो गया!

कादिर ने कहा — यह तमाचा बच्चा को जन्म-भर याद रहेगा। मैकू के तमाचे सह लेना मामूली काम नहीं है।

चौकीदार — आज ऐसा ठोंको इन सबों को कि फिर इधर आने को नाम न लें।

कादिर — खुदा ने चाहा, तो फिर इधर आयेंगे भी नहीं। मगर हैं सब बड़े हिम्मती। जान को हथेली पर लिए फिरते हैं।

मैकू भीतर पहुँचा, तो ठीकेदार ने स्वागत किया —आओ मैकू मियाँ! एक ही तमाचा लगा कर क्यो रह गये? एक तमाचे का भला इन पर क्या असर होगा? बड़े लतखोर हैं सब। कितना ही पीटो, असर ही नहीं होता। बस आज सबों के हाथ-पाँव तोड़ दो; फिर इधर न आयें।

मैकू — तो क्या और न आयेंगे?

ठीकेदार — फिर आते सबों की नानी मरेगी।

मैकू — और जो कहीं इन तमाशा देखनेवालों ने मेरे ऊपर डंडे चलाये तो!

ठीकेदार — तो पुलिस उनको मार भगायेगी। एक झड़प में मैदान साफ हो जाएगा। लो, जब तक एकाध बोतल पी लो। मैं तो आज मुफ्त की पिला रहा हूँ।

मैकू — क्या इन ग्राहकों को भी मुफ्त?

ठीकेदार —क्या करता, कोई आता ही न था। सुना कि मुफ्त मिलेगी तो सब धँस पड़े।

मैकू — मैं तो आज न पीऊँगा।

ठीकेदार — क्यों? तुम्हारे लिए तो आज ताजी ताड़ी मँगवायी है।

मैकू — यों ही, आज पीने की इच्छा नहीं है। लाओ, कोई लकड़ी निकालो, हाथ से मारते नहीं बनता।

ठीकेदार ने लपक कर एक मोटा सोंटा मैकू के हाथ में दे दिया, और डंडेबाजी का तमाशा देखने के लिए द्वार पर खड़ा हो गया।

मैकू ने एक क्षण डंडे को तौला, तब उछलकर ठीकेदार को ऐसा डंडा रसीद किया कि वहीं दोहरा होकर द्वार में गिर पड़ा। इसके बाद मैकू ने पियक्कड़ों की ओर रुख किया और लगा डंडों की वर्षा करने। न आगे देखता था, न पीछे, बस डंडे चलाये जाता था।

ताड़ीबाजों के नशे हिरन हुए। घबड़ा-घबड़ा कर भागने लगे, पर किवाड़ों के बीच में ठीकेदार की देह बिंधी पड़ी थी। उधर से फिर भीतर की ओर लपके। मैकू ने फिर डंडों से आवाहन किया। आखिर सब ठीकेदार की देह को रौंद-रौंद कर भागे। किसी का हाथ टूटा, किसी का सिर फूटा, किसी की कमर टूटी। ऐसी भगदड़ मची कि एक मिनट के अन्दर ताड़ीखाने में एक चिड़िये का पूत भी न रह गया।

एकाएक मटकों के टूटने की आवाज आयी। स्वयंसेवक ने भीतर झाँक कर देखा, तो मैकू मटकों को विध्वंस करने में जुटा हुआ था। बोला — भाई साहब, अजी भाई साहब, यह आप गजब कर

रहे हैं। इससे तो कहीं अच्छा कि आपने हमारे ही ऊपर अपना गुस्सा उतारा होता।

मैकू ने दो-तीन हाथ चलाकर बाकी बची हुई बोतलों और मटकों का सफाया कर दिया और तब चलते-चलते ठीकेदार को एक लात जमा कर बाहर निकल आया।

कादिर ने उसको रोक कर पूछा —तू पागल तो नहीं हो गया है बे? क्या करने आया था, और क्या कर रहा है।

मैकू ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देख कर कह — हाँ अल्लाह का शुक्र है कि मैं जो करने आया था, वह न करके कुछ और ही कर बैठा। तुममें कूवत हो, तो वालंटरों को मारो, मुझमें कूवत नहीं है। मैंने तो जो एक थप्पड़ लगाया। उसका रंज अभी तक है और हमेशा रहेगा! तमाचे के निशान मेरे कलेजे पर बन गये हैं। जो लोग दूसरों को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देने को खड़े हैं, उन पर वही हाथ उठायेगा, जो पाजी है, कमीना है, नामर्द है। मैकू फिसादी है, लठैत,गुंडा है, पर कमीना और नामर्द नहीं हैं। कह दो पुलिसवालों से, चाहें तो मुझे गिरफ्तार कर लें।

कई ताड़ीबाज खड़े सिर सहलाते हुए, उसकी ओर सहमी हुई आँखो से ताक रहे थे। कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती थी।

मैकू ने उनकी ओर देख कर कहा —मैं कल फिर आऊँगा। अगर तुममें से किसी को यहाँ देखा तो खून ही पी जाऊँगा! जेल और फाँसी से नहीं डरता। तुम्हारी भलमनसी इसी में है कि अब भूल कर भी इधर न आना। यह कांग्रेसवाले तुम्हारे दुश्मन नहीं है। तुम्हारे और तुम्हारे बाल-बच्चों की भलाई के लिए ही तुम्हें पीने से रोकते हैं। इन पैसों से अपने बाल-बच्चो की परवरिश करो, घी-दूध खाओ। घर में तो फाके हो रहे हैं, घरवाली तुम्हारे नाम को रो रही है, और तुम यहाँ बैठे पी रहे हो? लानत है इस नशेबाजी पर।

मैकू ने वहीं डंडा फेंक दिया और कदम बढ़ाता हुआ घर चला। इस वक्त तक हजारों आदमियों का हुजूम हो गया था। सभी श्रद्धा, प्रेम और गर्व की आँखो से मैकू को देख रहे थे।

# समर यात्रा

आज सबेरे ही से गाँव में हलचल मची हुई थी। कच्ची झोंपड़ियाँ हँसती हुई जान पड़ती थी। आज सत्याग्रहियों का जत्था गाँव में आयेगा। कोदई चौधरी के द्वार पर चँदोवा तना हुआ है। आटा, घी, तरकारी, दुध और दही जमा किया जा रहा है। सबके चेहरों पर उमंग है, हौसला है, आनन्द है। वही बिंदा अहीर, जो दौरे के हाकिमों के पड़ाव पर पाव-पाव भर दूध के लिए मुँह छिपाता फिरता था, आज दूध और दही के दो मटके अहिराने से बटोर कर रख गया है। कुम्हार, जो घर छोड़ कर भाग जाया करता था, मिट्टी के बर्तनों का अटम लगा गया है। गाँव के नाई-कहार सब आप ही आप दौड़े चले आ रहे हैं। अगर कोई प्राणी दुखी है, तो वह नोहरी बुढ़िया है। वह अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठी हुई अपनी पचहत्तर साल की बूढ़ी सिकुड़ी हुई आँखों से यह समारोह देख रही है और पछता रही है। उसके पास क्या है,जिसे ले कर कोदई के द्वार पर जाय और कहे — मैं यह लायी हूँ। वह तो दानों को मुहताज है।

मगर नोहरी ने अच्छे दिन भी देखे हैं। एक दिन उसके पास धन, जन सब कुछ था। गाँव पर उसी का राज्य था। कोदई को उसने हमेशा नीचे दबाये रखा। वह स्त्री होकर भी पुरुष थी। उसका पति घर में सोता था, वह खेत मे सोने जाती थी। मामले-मुकदमें की पैरवी खुद ही करती थी। लेना-देना सब उसी के हाथों में था लेकिन वह सब कुछ विधाता ने हर लिया; न धन रहा, न जन रहे — अब उनके नामों को रोने के लिए वही बाकी थी। आँखों से सूझता न था, कानों से सुनायी न देता था, जगह से हिलना मुश्किल था। किसी तरह जिंदगी के दिन पूरे कर रही थी और उधर कोदई के भाग उदय हो गये थे। अब चारों ओर से कोदई की पूछ थी — पहुँच थी। आज जलसा भी कोदई के द्वार पर हो रहा हैं। नोहरी को अब कौन पूछेगा। यह सोचकर उसका मनस्वी हृदय मानो किसी पत्थर से कुचल उठा। हाय! मगर भगवान उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोंपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती; कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनवाती और जब वह लोग खा चुकते; तो अँजुली भर रुपये उनको भेंट कर देती।

उसे वह दिन याद आया जब वह बूढ़े पति को लेकर यहाँ से बीस कोस महात्मा जी के दर्शन करने गयी थी। वह उत्साह, वह

सात्विक प्रेम, वह श्रद्धा, आज उसके हृदय में आकाश के मटियाले मेघों की भाँति उमड़ने लगी।

कोदई ने आकर पोपले मुँह से कहा — भाभी, आज महात्मा जी का जत्था आ रहा है। तुम्हें भी कुछ देना है।

नोहरी ने चौधरी का कटार भरी हुई आँखों से देखा। निर्दयी मुझे जलाने आया है। नीचा दिखाना चाहता है। जैसे आकाश पर चढ़कर बोली —मुझे जो कुछ देना है, वह उन्हीं लोगों को दूँगी। तुम्हें क्यों दिखाऊँ!

कोदई ने मुस्करा कर कहा — हम किसी से कहेंगे नहीं, सच कहते हैं भाभी, निकालो वह पुरानी हाँड़ी! अब किस दिन के लिए रखे हुए हो। किसी ने कुछ नहीं दिया। गाँव की लाज कैसे रहेगी?

नोहरी ने कठोर दीनता के भाव से कहा — जले पर नमक न छिड़को, देवर जी! भगवान ने दिया होता, तो तुम्हें कहना न पड़ता। इसी द्वार पर एक दिन साधु-संत, जोगी-जती, हाकिम-सूबा सभी आते थे; मगर सब दिन बराबर नहीं जाते!

कोदई लज्जित हो गया। उसके मुख की झुर्रियाँ मानों रेंगने लगीं। बोला —तुम तो हँसी-हँसी में बिगड़ जाती हो भाभी! मैंने तो

इसलिए कहा था कि पीछे से तुम यह न कहने लगो — मुझसे तो किसी ने कुछ कहा ही नहीं।

यह कहता हुआ वह चला गया। नोहरी वहीं बैठी उसकी ओर ताकती रही। उसका वह व्यंग्य सर्प की भाँति उसके सामने बैठा हुआ मालूम होता था।

## 2

नोहरी अभी बैठी हुई थी कि शोर मचा — जत्था आ गया। पश्चिम में गर्द उड़ती हुई नजर आ रही थी, मानों पृथ्वी उन यात्रियों के स्वागत में अपने राज-रत्नों की वर्षा कर रही हो। गाँव के सब स्त्री-पुरुष सब काम छोड़-छोड़ कर उनका अभिवादन करने चले। एक क्षण मे तिरंगी पताका हवा में फहराती दिखायी दी, मानों स्वराज्य ऊँचे आसन पर बैठा हुआ सबको आशीर्वाद दे रहा है।

स्त्रियाँ मंगल-गान करने लगीं। जरा देर में यात्रियों का दल साफ नजर आने लगा। दो-दो आदमियों की कतारें थीं। हर एक की देह पर खद्दर का कुर्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बगल में थैला लटकता हुआ, दोनों हाथ खाली, मानों स्वराज्य का आलिंगन करने

को तैयार हों। फिर उनका कण्ठ-स्वर सुनायी देने लगा। उनके मरदाने गलों से एक कौमी तराना निकल रहा था, गर्म, गहरा, दिलों में स्फूर्ति डालनेवाला —

एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फर्द थे,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।
एक दिन वह था कि अपनी शान पर देते थे जान,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

गाँववालों ने कई कदम आगे बढ़कर यात्रियों का स्वागत किया। बेचारों के सिरों पर धुल जमी हुई थी, ओठ सूखे हुए, चेहरे सँवालाये; पर आँखों में जैसे आजादी की ज्योति चमक रही थी।

स्त्रियाँ गा रही थीं, बालक उछल रहे थे और पुरुष अपने अँगोछों से यात्रियों की हवा कर रहे थे। इस समारोह में नोहरी की ओर किसी का ध्यान न गया, वह अपनी लठिया पकड़े सब के पीछे सजीव आशीर्वाद बनी खड़ी थी उसकी आँखें डबडबायी हुई थीं, मुख से गौरव की ऐसी झलक आ रही थी मानो वह कोई रानी है, मानो यह सारा गाँव उसका है, वे सभी युवक उसके बालक है। अपने मन में उसने ऐसी शक्ति, ऐसे विकास, ऐसे उत्थान का अनुभव कभी न किया था।

सहसा उसने लाठी फेंक दी और भीड़ को चीरती हुई यात्रियों के सामने आ खड़ी हुई, जैसे लाठी के साथ ही उसने बुढ़ापे और दुःख के बोझ को फेंक दिया हो! वह एक पल अनुरक्त आँखों से आजादी के सैनिकों की ओर ताकती रही, मानों उनकी शक्ति को अपने अंदर भर रही हो, तब वह नाचने लगी, इस तरह नाचने लगी, जैसे कोई सुन्दरी नवयौवना प्रेम और उल्लास के मद से विह्वल होकर नाचे। लोग दो-दो, चार-चार कदम पीछे हट गये, छोटा-सा आँगन बन गया और उस आँगन में वह बुढ़िया अपना अतीत नृत्य-कौशल दिखाने लगी। इस अलौकिक आनन्द के रेले में वह अपना सारा दुःख और संताप भूल गयी। उसके जीर्ण अंगों में जहाँ सदा वायु को प्रकोप रहता था, वहाँ न जाने इतनी चपलता, इतनी लचक, इतनी फुरती कहाँ से आ गयी थी! पहले कुछ देर तो लोग मजाक से उसकी ओर ताकते रहे ; जैसे बालक बन्दर का नाच देखते हैं, फिर अनुराग के इस पावन प्रवाह ने सभी को मतवाला कर दिया। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि सारी प्रकृति एक विराट व्यापक नृत्य की गोद में खेल रही है।

कोदई ने कहा — बस करो भाभी, बस करो।

नोहरी ने थिरकते हुए कहा — खड़े क्यों हो, आओ न जरा देखूँ कैसा नाचते हो!

कोदई बोले — अब बुढ़ापे में क्या नाचूँ?

नोहरी ने रुक कर कहा — क्या तुम आज भी बूढ़े हो? मेरा बुढ़ापा तो जैसे भाग गया। इन वीरों को देखकर भी तुम्हारी छाती नहीं फूलती? हमारा ही दुःख-दर्द हरने के लिए तो इन्होंने यह परन ठाना है। इन्हीं हाथों से हाकिमों की बेगार बजायी हैं, इन्ही कानों से उनकी गालियाँ और घुड़कियाँ सुनी है। अब तो उस जोर-जुलुम का नाश होगा — हम और तुम क्या अभी बूढ़े होने जोग थे? हमें पेट की आग ने जलाया है। बोलो ईमान से यहाँ इतने आदमी हैं, किसी ने इधर छह महीने से पेट-भर रोटी खायी है? घी किसी को सूँघने को मिला है! कभी नींद-भर सोये हो! जिस खेत का लगान तीन रुपये देते थे, अब उसी के नौ-दस देते हो। क्या धरती सोना उगलेगी? काम करते-करते छाती फट गयी। हमीं हैं कि इतना सह कर भी जीते हैं। दूसरा होता, तो या तो मार डालता, या मर जाता धन्य है महात्मा और उनके चेले कि दीनों का दुःख समझते हैं, उनके उद्धार का जतन

करते हैं। और तो सभी हमें पीसकर हमारा रक्त निकालना जानते हैं।

यात्रियों के चेहरे चमक उठे, हृदय खिल उठे। प्रेम की डूबी हुई ध्वनि निकली —

एक दिन था कि पारस थी यहाँ की सरजमीन,
एक दिन यह है कि यों बे-दस्तोपा कोई नहीं।

## 3

कोदई के द्वार पर मशालें जल रही थीं। कई गाँवों के आदमी जमा हो गये थे। यात्रियों के भोजन कर लेने के बाद सभा शुरू हुई। दल के नायक ने खड़े होकर कहा —

भाइयो,आपने आज हम लोगों का जो आदर-सत्कार किया, उससे हमें यह आशा हो रही है कि हमारी बेड़ियाँ जल्द ही कट जायँगी। मैंने पूरब और पश्चिम के बहुत से देशों को देखा है, और मैं तजरबे से कहता हूँ कि आप में जो सरलता, जो ईमानदारी, जो श्रम और धर्मबुद्धि है, वह संसार के और किसी देश में नहीं। मैं तो यही कहूँगा कि आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। आपको भोग-विलास से मतलब नहीं, नशा-पानी से मतलब नहीं, अपना काम करना और अपनी दशा पर संतोष रखना। यह आपका आदर्श है, लेकिन आपका यही देवत्व, आपका यही सीधापन आपके हक में घातक हो रहा है। बुरा न मानिएगा, आप लोग इस संसार में रहने के योग्य नहीं। आपको तो स्वर्ग में

कोई स्थान पाना चाहिए था। खेतों का लगान बरसाती नाले की तरह बढ़ता जाता है,आप चूँ नहीं करते। अमले और अहलकार आपको नोचते रहते हैं, आप जबान नहीं हिलाते। इसका यह नतीजा हो रहा है कि आपको लोग दोनों हाथों लूट रहे हे; पर आपको खबर नहीं। आपके हाथों से सभी रोजगार छिनते जाते हैं, आपका सर्वनाश हो रहा है, पर आप आँखें खोलकर नहीं देखते। पहले लाखों भाई सूत कातकर, कपड़े बुनकर गुजर करते थे। अब सब कपड़ा विदेश से आता है। पहले लाखों आदमी यहीं नमक बनाते थे। अब नमक बाहर से आता है। यहाँ नमक बनाना जुर्म है। आपके देश में इतना नमक है कि सारे संसार का दो सौ साल तक उससे काम चल सकता है।, पर आप सात करोड़ रुपये सिर्फ नमक के लिए देते हैं। आपके ऊसरों में, झीलों में नमक भरा पड़ा है, आप उसे छू नहीं सकते। शायद कुछ दिनों में आपके कुओं पर भी महसूल लग जाय। क्या आप अब भी यह अन्याय सहते रहेंगे?

एक आवाज आयी — हम किस लायक हैं?

नायक — यही तो आपका भ्रम हैं। आप ही की गर्दन पर इतना बड़ा राज्य थमा हुआ है। आप ही इन बड़ी-बड़ी फौजों, इन बड़े-बड़े अफसरों के मालिक है; मगर फिर भी आप भूखों मरते हैं, अन्याय सहते हैं। इसलिए कि आपको अपनी शक्ति का ज्ञान

नहीं। यह समझ लीजिए कि संसार में जो आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह सदैव स्वार्थी और अन्यायी आदमियों का शिकार बना रहेगा! आज संसार का सबसे बड़ा आदमी अपने प्राणों की बाजी खेल रहा है। हजारों जवान अपनी जानें हथेली पर लिये आपके दु:खों का अन्त करने के लिए तैयार हैं। जो लोग आपको असहाय समझकर दोनों हाथों से आपको लूट रहे हैं, वह कब चाहेंगे कि उनका शिकार उनके मुँह से छिन जाय। वे आपके इन सिपाहियों के साथ जितनी सख्तियाँ कर सकते हैं, कर रहे हैं ; मगर हम लोग सब कुछ सहने को तैयार हैं। अब सोचिए कि आप हमारी कुछ मदद करेंगे? मरदों की तरह निकल कर अपने को अन्याय से बचायेंगे या कायरों की तरह बैठे हुए तकदीर को कोसते रहेंगे? ऐसा अवसर फिर शायद कभी न आयें। अगर इस वक्त चूके, तो फिर हमेशा हाथ मलते रहिएगा। हम न्याय और सत्य के लिए लड़ रहे हैं; इसलिए न्याय और सत्य ही के हथियारों से हमें लड़ना है। हमें ऐसे वीरों की जरूरत है, जो हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल डालें और ईश्वर पर अटल विश्वास रख कर धर्म के लिए सब कुछ झेल सके! बोलिए आप क्या मदद कर सकते हैं?

कोई आगे नहीं बढ़ता। सन्नाटा छाया रहता है।

# 4

एकाएक शोर मचा — पुलिस! पुलिस आ गयी!!

पुलिस का दारोगा कांस्टेबलों के एक दल के साथ आ कर सामने खड़ा हो गया। लोगों ने सहमी हुई आँखों और धड़कते हुऐ दिलों से उनकी ओर देखा और छिपने के लिए बिल खोजने लगे।

दारोगाजी ने हुक्म दिया — मार कर भगा दो इन बदमाशों को?

कांस्टेबलों ने अपने डंडे सँभाले; मगर इसके पहले कि वे किसी पर हाथ चलायें, सभी लोग हुर्र हो गये! कोई इधर से भागा, कोई उधर से। भगदड़ मच गयी। दस मिनट में वहाँ गाँव का एक आदमी भी न रहा। हाँ, नायक अपने स्थान पर अब भी खड़ा था और जत्था उसके पीछे बैठा हुआ था; केवल कोदई चौधरी नायक के समीप बैठे हुए थिर आँखों से भूमि की ओर ताक रहे थे।

दारोगा ने कोदई की ओर कठोर आँखों से देखकर कहा — क्यों रे कोदइया, तूने इन बदमाशों को क्यों ठहराया यहाँ?

कोदई ने लाल-लाल आँखों से दारोगा की ओर देखा और जहर की तरह गुस्से को पी गये। आज अगर उनके सिर गृहस्थी का बखेड़ा न होता, लेना-देना न होता तो वह भी इसका मुँहतोड़

जवाब देते। जिस गृहस्थी पर उन्होंने अपने जीवन के पचास साल होम कर दिये थे; वह इस समय एक विषैले सर्प की भाँति उनकी आत्मा में लिपटी हुई थी।

कोदई ने अभी कोई जवाब न दिया था कि नोहरी पीछे से आकर बोली — क्या लाल पगड़ी बाँधकर तुम्हारी जीभ ऐंठ गयी है? कोदई क्या तुम्हारे गुलाम हैं कि कोदइया-कोदइया कर रहे हो? हमारा ही पैसा खाते हो और हमीं को आँखें दिखाते हो? तुम्हें लाज नहीं आती?

नोहरी इस वक्त दोपहरी की धूप की तरह काँप रही थी। दारोगा एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गया। फिर कुछ सोचकर औरत के मुँह लगना अपनी शान के खिलाफ समझकर कोदई से बोला — यह कौन शैतान का खाला है, कोदई! खुदा का खौफ न होता तो इसकी जबान तालू से खींच लेता।

बुढ़िया लाठी टेककर दारोगा की ओर घूमती हुई बोली — क्यों खुदा की दुहाई देकर खुदा को बदनाम करते हो। तुम्हारे खुदा तो तुम्हारे अफसर हैं, जिनकी तुम जूतियाँ चाटते हो। तुम्हें तो चाहिए था कि डूब मरते चिल्लू भर पानी में! जानते हो, यह लोग जो यहाँ आये हैं, कौन हैं? यह वह लोग है, जो हम गरीबों के लिए अपनी जान तक होमने को तैयार हैं। तुम उन्हें बदमाश कहते

हो! तुम जो घूस के रुपये खाते हो, जुआ खेलाते हो, चोरियाँ करवाते हो, डाके डलवाते हो; भले आदमियों को फँसा कर मुट्ठियाँ गरम करते हो और अपने देवताओं की जूतियों पर नाक रगड़ते हो, तुम इन्हें बदमाश कहते हो!

नोहरी की तीक्ष्ण बातें सुनकर बहुत-से लोग जो इधर-उधर दबक गये थे, फिर जमा हो गये। दारोगा ने देखा, भीड़ बढ़ती जाती है, तो अपना हंटर लेकर उन पर पिल पड़े। लोग फिर तितर-बितर हो गये। एक हंटर नोहरी पर भी पड़ा उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई चिनगारी सारी पीठ पर दौड़ गयी। उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया, पर अपनी बची हुई शक्ति को एकत्र करके ऊँचे स्वर से बोली — लड़को क्यों भागते हो? क्या नेवता खाने आये थे। या कोई नाच-तमाशा हो रहा था? तुम्हारे इसी लेंड़ीपन ने इन सबों को शेर बना रखा है। कब तक यह मार-धाड़, गाली-गुप्ता सहते रहोगे।

एक सिपाही ने बुढ़िया की गरदन पकड़कर जोर से धक्का दिया। बुढ़िया दो-तीन कदम पर औंधे मुँह गिरा चाहती थी कि कोदई ने लपककर उसे सँभाल लिया और बोला — क्या एक दुखिया पर गुस्सा दिखाते हो यारो? क्या गुलामी ने तुम्हें नामर्द भी बना दिया है? औरतों पर, बूढ़ों पर, निहत्थों पर, वार करते हो,वह मरदों का काम नहीं है।

नोहरी ने जमीन पर पड़े-पड़े कहा — मर्द होते तो गुलाम ही क्यों होते! भगवान! आदमी इतना निर्दयी भी हो सकता है? भला अंगरेज इस तरह बेदरदी करे तो एक बात है। उसका राज है। तुम तो उसके चाकर हो, तुम्हें राज तो न मिलेगा, मगर राँड माँड में ही खुश! इन्हें कोई तलब देता जाय, दूसरों की गरदन भी काटने में इन्हें संकोच नहीं!

अब दारोगा ने नायक को डाँटना शुरु किया — तुम किसके हुक्म से इस गाँव में आये?

नायक ने शांत भाव से कहा — खुदा के हुक्म से।

दारोगा — तुम रिआया के अमन में खलल डालते हो?

नायक — अगर तुम्हें उनकी हालत बताना उनके अमन में खलल डालना है तो बेशक हम उसके अमन में खलल डाल रहे है।

भागनेवालों के कदम एक बार फिर रुक गये। कोदई ने उनकी ओर निराश आँखों से देख कर काँपते हुए स्वर में कहा — भाइयो इस बखत कई गाँवों के आदमी यहाँ जमा हैं? दारोगा ने हमारी जैसी बेआबरुई की है, क्या उसे सह कर तुम आराम की नींद सो सकते हो? इसकी फरियाद कौन सुनेगा? हाकिम लोग क्या हमारी फरियाद सुनेंगे। कभी नहीं। आज अगर हम लोग मार

डाले जायँ, तो भी कुछ न होगा। यह है हमारी इज्जत और आबरू? थुड़ी है इस जिंदगी पर!

समूह स्थिर भाव से खड़ा हो गया, जैसे बहता हुआ पानी मेंड़ से रुक जाय। भय का धुआं जो लोगों के हृदय पर छा गया था, एकाएक हट गया। उनके चेहरे कठोर हो गये। दारोगा ने उनके तीवर देखे, तो तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया और कोदई को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। दो सिपाहियों ने बढ़ कर कोदई की बाँह पकड़ ली। कोदई ने कहा — घबड़ाते क्यों हो, मैं कहीं भागूँगा नहीं। चलो, कहाँ चलने हो?

ज्योंही कोदई दोनों सिपाहियों के साथ चला, उसके दोनों जवान बेटे कई आदमियों के साथ सिपाहियों की ओर लपके कि कोदई को उनके हाथों से छीन लें। सभी आदमी विकट आवेश में आकर पुलिसवालों के चारों ओर जमा हो गये।

दारोगा ने कहा — तुम लोग हट जाओ वरना मैं फायर कर दूँगा। समूह ने इस धमकी का जवाब 'भारत माता की जाय!' से दिया और एका-एक दो-दो कदम और आगे खिसक आये।

दारोगा ने देखा, अब जान बचती नहीं नजर आती है। नम्रता से बोला — नायक साहब, यह लोग फसाद पर अमादा हैं। इसका नतीजा अच्छा न होगा!

नायक ने कहा — नहीं, जब तक हममें एक आदमी भी यहाँ रहेगा, आपके ऊपर कोई हाथ न उठा सकेगा। आपसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम और आप दोनों एक ही पैरों के तले दबे हुए हैं। यह हमारी बद-नसीबी है कि हम आप दो विरोधी दलों में खड़े हैं।

यह कहते हुए नायक ने गाँववालों को समझाया — भाइयो, मैं आपसे कह चुका हूँ यह न्याय और धर्म की लड़ाई है और हमें न्याय और धर्म के हथियार से ही लड़ना है। हमें अपने भाइयों से नहीं लड़ना है। हमें तो किसी से भी लड़ना नहीं है। दारोगा की जगह कोई अंगरेज होता, तो भी हम उसकी इतनी ही रक्षा करते। दारोगा ने कोदई चौधरी को गिरफ्तार किया है। मैं इसे चौधरी का सौभाग्य समझता हूँ। धन्य हैं वे लोग जो आजादी की लड़ाई में सजा पायें। यह बिगड़ने या घबड़ाने की बात नहीं है। आप लोग हट जायँ और पुलिस को जाने दें।

दारोगा और सिपाही कोदई को लेकर चले। लोगों ने जयध्वनि की — 'भारतमाता की जय।'

कोदई ने जवाब दिया — राम-राम भाइयो, राम-राम। डटे रहना मैदान में। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। भगवान सबका मालिक है।

दोनों लड़के आँखों में आँसू भरे आये और कातर स्वर में बोले — हमें क्या कहे जाते हो दादा!

कोदई ने उन्हें बढ़ावा देते हुए कहा — भगवान् का भरोसा मत छोड़ना और वह करना जो मरदों को करना चाहिए। भय सारी बुराइयों की जड़ है। इसे मन से निकाल डालो, फिर तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता। सत्य की कभी हार नहीं होती।

आज पुलिस सिपाहियों के बीच में कोदई को निर्भयता का जैसा अनुभव हो रहा था, वैसा पहले कभी न हुआ था। जेल और फाँसी उसके लिए आज भय की वस्तु नहीं, गौरव की वस्तु हो गयी थी! सत्य का प्रत्यक्ष रुप आज उसने पहली बार देखा मानों वह कवच की भाँति उसकी रक्षा कर रहा हो।

## 5

गाँववालों के लिए कोदई का पकड़ लिया जाना लज्जाजनक मालूम हो रहा था। उनको आँखों के सामने उनके चौधरी इस तरह पकड़ लिये गये और वे कुछ न कर सके। अब वे मुँह कैसे दिखायें! हर एक मुख पर गहरी वेदना झलक रही थी जैसे गाँव लुट गया!

सहसा नोहरी ने चिल्ला कर कहा — अब सब जने खड़े क्या पछ्ता रहे हो? देख ली अपनी दुर्दशा, या अभी कुछ बाकी है! आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा है! आज हम इतने बेशरम हैं कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते! हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते, तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते। जब तक तुम गुलाम बने रहोगे, उनकी सेवा-टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा-कर मिलता रहेगा, लेकिन जिस दिन तुमने कंधा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह मार खाते रहोगे? कब तक मुर्दों की तरह पड़े गिद्धों से अपने आपको नोचवाते रहोगे? अब दिखा दो कि तुम भी जीते-जागते हो और तुम्हें भी अपनी इज्जत-आबरु का कुछ खयाल है। जब इज्जत ही न रही तो क्या करोगे खेती-बारी करके, धर्म कमा कर? जी कर ही क्या करोगे? क्या इसीलिए जी रहे हो कि तुम्हारे बाल-बच्चे इसी तरह लातें खाते जायँ, इसी तरह कुचले जायँ? छोड़ो यह कायरता! आखिर एक दिन खाट पर पड़े-पड़े मर जाओगे। क्यों नहीं इस धरम की लड़ाई में आकर वीरों की तरह मरते। मैं तो बूढ़ी औरत हूँ, लेकिन और कुछ न कर सकूँगी, तो जहाँ यह लोग सोयेंगे वहाँ झाड़ू तो लगा दूँगी, इन्हें पंखा तो झलूँगी।

कोदई का बड़ा लड़का मैकू बोला — हमारे जीते-जी तुम जाओगी काकी, हमारे जीवन को धिक्कार है! अभी तो हम तुम्हारे बालक जीते ही हैं। मैं चलता हूँ उधर! खेती-बारी गंगा देखेगा।

गंगा उसका छोटा भाई था। बोला — भैया तुम यह अन्याय करते हो। मेरे रहते तुम नहीं जा सकते। तुम रहोगे, तो गिरस्ती सँभालोगे। मुझसे तो कुछ न होगा। मुझे जाने दो।

मैकू — इसे काकी पर छोड़ दो। इस तरह हमारी-तुम्हारी लड़ाई होगी। जिसे काकी का हुक्म हो वह जाय।

नोहरी ने गर्व से मुस्करा कर कहा — जो मुझे घूस देगा, उसी को जिताऊँगी।

मैकू — क्या तुम्हारी कचहरी में भी वही घूस चलेगा काकी? हमने तो समझा था, यहाँ ईमान का फैसला होगा!

नोहरी — चलो रहने दो। मरती दाई राज मिला है तो कुछ तो कमा लूँ।

गंगा हँसता हुआ बोला — मैं तुम्हें घूस दूँगा काकी। अबकी बाजार जाऊँगा, तो तुम्हारे लिए पूर्वी तमाखू का पत्ता लाऊँगा।

नोहरी — तो बस तेरी ही जीत है, तू ही जाना।

मैकू — काकी, तुम न्याय नहीं कर रही हो।

नोहरी — अदालत का फैसला कभी दोनों फरीक ने पसन्द किया है कि तुम्हीं करोगे?

गंगा ने नोहरी के चरण छुए, फिर भाई से गले मिला और बोला — कल दादा को कहला भेजना कि मै जाता हूँ।

एक आदमी ने कहा — मेरा भी नाम लिख लो भाई — सेवाराम।

सबने जय-घोष किया। सेवाराम आकर नायक के पास खड़ा हो गया।

दूसरी आवाज आयी — मेरा नाम लिख लो — भजनसिंह।

सबने जय-घोष किया। भजनसिंह जाकर नायक के पास खड़ा हो गया।

भजन सिंह दस-पाँच गाँवों मे पहलवानी के लिए मशहूर था। यह अपनी चौड़ी छाती ताने, सिर उठाये नायक के पास खड़ा हो हुआ, तो जैसे मंडप के नीचे एक नये जीवन का उदय हो गया।

तुरंत ही तीसरी आवाज आयी — मेरा नाम लिखो-घूरे।

यह गाँव का चौकीदार थ। लोगों ने सिर उठा-उठा कर उसे देख। सहसा किसी को विश्वास न आता था कि घूरे अपना नाम लिखायेगा।

भजनसिंह ने हँसते हुए पूछा — तुम्हें क्या हुआ है घूरे?

घूरे ने कहा — मुझे वही हुआ है, जो तुम्हें हुआ है। बीस साल तक गुलामी करते-करते थक गया।

फिर आवाज आयी — मेरा नाम लिखो — काले खाँ।

वह जमींदार का सहना था, बड़ा ही जाबिर और दबंग। फिर लोगों आश्चर्य हुआ।

मैकू बोला — मालूम होता है, हमको लूट-लूटकर घर भर लिया है, क्यों।

काले खाँ गम्भीर स्वर में बोला — क्या जो आदमी भटकता रहे, उसे कभी सीधे रास्ते पर न आने दोगे भाई। अब तक जिसका नमक खाता था, उसका हुक्म बजाता था। तुमको लूट-लूट कर उसका घर भरता था। अब मालूम हुआ कि मैं बड़े भारी मुगालते में पड़ा हुआ था। तुम सब भाइयों को मैंने बहुत

सताया है। अब मुझे माफी दो।

पाँचों रँगरूट एक दूसरे से लिपटते थे, उछलते थे, चीखते थे, मानो उन्होंने सचमुच स्वराज्य पा लिया हो, और वास्तव में उन्हे स्वराज्य मिल गया था। स्वराज्य चित्त की वृत्तिमात्र है। ज्योंही पराधीनता का आतंक दिल से निकल गया, आपको स्वराज्य मिल

गया। भय ही पराधीनता है निर्भयता ही स्वराज्य है। व्यवस्था और संगठन तो गौण है।

नायक ने उन सेवकों को सम्बोधित करके कहा--मित्रों, आप आज आजादी के सिपाहियों में आ मिले, इस पर मै आपको बधाई देता हूँ। आपको मालूम है, हम किस तरह लड़ाई करने जा रहे है? आपके ऊपर तरह-तरह की सख्तियाँ की जायेंगी, मगर याद रखिए, जिस तरह आज आपने मोह और लोभ का त्याग कर दिया है, उसी तरह हिंसा और क्रोध का भी त्याग कर दीजिए। हम धर्म संग्राम में जा रहे हैं। हमें धर्म के रास्ते पर जमा रहना होगा। आप इसके लिए तैयार है।

पाँचों ने एक स्वर में कहा — तैयार है!

नायक ने आशीर्वाद दिया — ईश्वर आपकी मदद करे।

## 6

उस सुहावने-सुनहले प्रभात में जैसे उमंग घुली हुई थी। समीर के हलके-हलके झोकों में प्रकाश की हल्की-हल्की किरणों में उमंग सनी हुई थी। लोग जैसे दीवाने हो गये थे। मानो आजादी की

देवी उन्हे अपनी ओर बुला रही हो। वही खेत-खलिहान, बाग-बगीचे हैं, वही स्त्री-पुरुष हैं पर आज के प्रभात में जो आशीर्वाद है, जो वरदान है, जो विभूति है, वह और कभी न थी। वही खेत-खलिहान, बाग-बगीचे, स्त्री-पुरूष आज एक नयी विभूति में रंग गये हैं।

सूर्य निकलने के पहले ही कई हजार आदमियों का जमाव हो गय था। जब सत्याग्रहियों का दल निकला तो लोगों की मस्तानी आवाजों से आकाश गूँज उठा। नये सैनिकों की विदाई, उनकी रमणियों का कातर धैर्य, माता-पिता का आर्द्र गर्व, सैनिकों के परित्याग का दृश्य लोगों को मस्त किये देता था।

सहसा नोहरी लाठी टेकती हुई आ कर खड़ी हो गयी।

मैकू ने कहा — काकी, हमें आशीर्वाद दो।

नोहरी — मै तुम्हारे साथ चलती हूँ बेटा, कितना आशीर्वाद लोगे?

कई आदमियों ने एक स्वर से कहा — काकी, तुम चली जाओगी, तो यहाँ कौन रहेगा?

नोहरी ने शुभ-कामना से भरे हुए स्वर में कहा — भैया, जाने के तो अब दिन ही है, आज न जाऊँगी, दो-चार महीने बाद जाऊँगी। अभी आऊँगी, तो जीवन सफल हो जायेगा। दो-चार महीने में

खाट पर पड़े-पड़े जाऊँगी, तो मन की आस मन में ही रह जायेगी। इतने बालक हैं, इनकी सेवा से मेरी मुकुत बन जायगी। भगवान करे, तुम लोगों के सुदिन आयें और मै अपनी जिंदगी में तुम्हारा सुख देख लूँ।

यह कहते हुए नोहरी ने सबको आशीर्वाद दिया और नायक के पास जाकर खड़ी हो गयी। लोग खड़े देख रहे थे और जत्था गाता हुआ जाता था।

एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फ़र्द थे,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

नोहरी के पाँव जमीन पर न पड़ते थे; मानों विमान पर बैठी हुई स्वर्ग जा रही हो।

# शान्ति

जब मैं ससुराल आयी, तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का सलीका, न बातचीत करने का ढंग। सिर उठा कर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आँखें अपने आप झपक जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूँघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी; पर उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य-कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्यों को इतना बुद्धिमान और सहृदय नहीं समझती थी। मैं दिन भर घर का कोई न कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता तो चर्खे पर सूत कातती। अपनी बूढ़ी सास से थर-थर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुर जी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा — 'नमक जरा अंदाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचायी जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबू जी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची से ऊँची डिगरियाँ पायी थीं। वह मुझ पर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्र अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत नीचे देख कर कदाचित् मन ही मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देख कर हमारे रस्म-रिवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठ कर बातचीत करने में जरा आनन्द न आता। सोने आते, तो कोई न कोई अंगरेजी पुस्तक साथ लाते, और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण दृष्टि से देख कर उत्तर देते — तुम्हें क्या बतलाऊँ यह आस्कर वाइल्ड की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, मैं ऐसे विद्वान् पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे किसी उजड्ड के घर पड़ना था। बाबू जी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी।

एक दिन संध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरत जी रामचंद्र जी की खोज में निकले थे। उनका करुण विलाप पढ़ कर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। हृदय

उमड़ा आता था। सहसा बाबू जी कमरे में आये। मैंने पुस्तक तुरंत बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भरसक प्रकट न होने देती थी। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली; और पूछा — रामायण है न?

मैंने अपराधियों की भाँति सिर झुका कर कहा — हाँ, जरा देख रही थी।

बाबू जी — इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी, भावों से भरी हुई है; लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाया गया जैसा अंगरेज या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आवेगा, लेकिन कहने में क्या हरज है, योरप में आजकल 'स्वाभाविकता' (realism) का ज़माना है। वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़ कर आश्चर्य होता है। हमारे यहाँ कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है, और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।

मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया। बोली — मेरे लिए तो यही बहुत है, अंगरेजी पुस्तकें कैसे समझूँ।

बाबू जी-कोई कठिन बात नहीं। एक घंटे भी रोज पढ़ो, तो थोड़े ही समय में काफी योग्यता प्राप्त कर सकती हो; पर तुमने तो मानो मेरी बातें न मानने की सौगंध ही खा ली है। कितना समझाया कि मुझसे शर्म करने की आवश्यकता नहीं, पर तुम्हारे ऊपर कुछ असर न पड़ा। कितना कहता हूँ कि जरा सफाई से रहा करो, परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृंगार भी होता रहे; लेकिन जान पड़ता है, तुम्हारी दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य नहीं! या शायद तुम समझती हो कि मेरे-जैसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम चाहे जैसे भी रहो, आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक-पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूँ, तो स्वभावतः मेरी यह इच्छा होती है कि उस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो। परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पति की सेवा करने और एकादशी व्रत रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य इससे बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं। उन्हें भी मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बंदी-दशा देख कर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी मानी

गयी है, लेकिन तुम मेरी मानसिक और सामाजिक, किसी आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार सकती हो कि ऐसी दशा में मेरी जिंदगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबू जी का कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंजीर की भाँति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के कहे अनुसार चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, अपने देवता को किस भाँति अप्रसन्न करती?

## 2

यह तो कैसे कहूँ कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम न था। था, और उतना ही था, जितना दूसरी स्त्रियों को होता है। जब बालक और वृद्ध तक शृंगार पसंद करते हैं, तो मैं तो युवती ठहरी। मन भीतर ही भीतर मचलकर रह जाता था। मेरे मायके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथों से सूत कातती थीं, और जुलाहे से उसी सूत के कपड़े बुनवा लिये जाते

थे। बाहर से बहुत कम कपड़े आते थे। मैं जरा महीन कपड़ा पहनना चाहती या शृंगार की रुचि दिखाती तो अम्माँ फौरन टोकतीं और समझातीं कि बहुत बनाव-सँवार भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देता। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी वह मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं, तो झिड़कने लगतीं, परन्तु अब बाबू जी की जिद से मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृंगार पर नाक-भौं सिकोड़तीं; पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबू जी की प्रेम-परिपूर्ण दृष्टि के लिए मैं झिड़कियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी। वह अधिक प्रसन्नचित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फैशनेबुल साड़ियाँ, सुंदर जाकटें, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते; पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबू जी के ही सामने पहनने के लिए रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने पति की प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकती। अब घर के काम-काज से मेरा अधिक समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभी तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहनकर निकलने का मुझे साहस न होता

था, पर मुझे उनकी शिक्षापूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपये महीने कमाता है तो घर में चेरी बन कर क्यों रहूँ? यों अपनी इच्छा से चाहे जितना काम करूँ, पर वे लोग मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं? मुझमें आत्माभिमान की मात्र बढ़ने लगी। यदि अम्माँ मुझे कोई काम करने को कहतीं, तो मैं अदबदा कर टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा — सबेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोट बना लो। मैं बात अनसुनी कर गयी। अम्माँ ने कुछ देर तक मेरी राह देखी; पर जब मैं अपने कमरे से न निकली, तो उन्हें गुस्सा हो आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृति की थीं। तनिक-सी बात पर तुनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी समझती थीं। हाँ, अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आतीं, बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा था। वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं-तुमसे मैंने दालमोट बनाने को कहा था, बनाया?

मैं कुछ रुष्ट होकर बोली — अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्माँ — तो तुम्हारी जान में दिन-भर पड़े रहना ही बड़ा काम है! यह आजकल तुम्हें हो क्या गया है? किस घमंड में हो? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ? इस घमंड में न भूलना! तुम्हारा पति लाख कमाये; लेकिन घर में राज

मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है, तो तुम्हें मालकिन बनने की हवस हो रही है; लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आयी थीं, मैंने ही उसे पढ़ा-लिखा कर इस योग्य बनाया है। वाह! कल की छोकरी और अभी से यह गुमान।

मैं रोने लगी। मुँह से एक बात न निकली। बाबू जी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। ये बातें उन्होंने सुनीं। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब वह घर आये तो बोले — देखा तुमने आज अम्माँ का क्रोध? यही अत्याचार है, जिससे स्त्रियों को अपनी जिंदगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो जाता है और मनुष्य की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, प्रकाश और वायु के बिना पौदे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बड़ा अंधेर है। अब मैं उनका पुत्र ही ठहरा। उनके सामने मुँह नहीं खोल सकूँगा। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी, और यही बंधन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं, तो मुझे बहुत ही दुःख होता। कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिड़कियों को सहे जाओ, या अपने लिए

कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ो। अब इस बात की आशा करना कि अम्माँ के स्वभाव में कोई परिवर्तन होगा, बिलकुल भ्रम है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है।

मैंने डरते-डरते कहा — आपकी जो आज्ञा हो, वह करें। अब कभी न पढ़ूँ-लिखूँगी, और जो कुछ वह कहेंगी वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न हैं तो यही सही। मुझे पढ़-लिख कर क्या करना है?

बाबू जी — पर यह मैं नहीं चाहता। अम्माँ ने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढ़ती ही जायँगी। मैं तुम्हें जितनी ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा, और उनका गुस्सा तुम्हीं पर उतरेगा। उन्हें पता नहीं कि जिस आबहवा में उन्होंने अपनी जिंदगी बितायी है, वह अब नहीं रही। विचार-स्वातंत्रय और समयानुकूलता उनकी दृष्टि में अधर्म से कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहर में चल कर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती; इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजबीज के विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहने से भय लगता था, तथापि वहाँ स्वतंत्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

# 3

उसी दिन से अम्माँ ने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदों के आगे मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत बुरा मालूम होता था। इसके पहले यदि वह कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं, तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदय से उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य पर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबू जी पर कोई मोहन-मंत्र फूँक दिया है, वह मेरे इशारों पर चलते हैं; पर यथार्थ में बात उल्टी ही थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमी का त्यौहार आया। घर में सब लोगों ने व्रत रखा। मैंने भी सदैव की भाँति व्रत रखा। ठाकुर जी का जन्म रात को बारह बजे होनेवाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं। बाबू जी इन असभ्य व्यवहारों के बिलकुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गयी, तो मुझे समझाने लगे-इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ? कृष्ण

महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है; पर इस गाने-बजाने से क्या फायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबू जी स्वयं इसी मार्ग का अनुकरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यंत प्रशंसा करते पर उसका पाठ कभी न करते थे। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानो पुष्प-वृष्टि होने लगती थी; पर मैंने उन्हें कभी कोई उपनिषद् पढ़ते नहीं देखा। वह हिंदू धर्म के गूढ़ तत्त्व ज्ञान पर लट्टू थे, पर उसे समयानुकूल नहीं समझते थे। विशेषकर वेदांत को तो भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते कि इसी वेदांत ने हमको चौपट कर दिया; हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अब तक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं। संतोष ने ही भारत को गारत कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ थी? हाँ, अब जान पड़ता है कि वह योरोपियन सभ्यता के चक्कर में पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंडा हो चला है।

# 4

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये। बाबू जी ने पहले ही एक दो-मंजिला मकान ले रखा था — सब तरह से सजा-सजाया। हमारे यहाँ पाँच नौकर थे-दो स्त्रियाँ, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घर के कुल कामकाज से छुट्टी पा गयी। कभी जी घबराता तो कोई उपन्यास ले कर पढ़ने लगती।

यहाँ फूल और पीतल के बर्तन बहुत कम थे। चीनी की रकाबियाँ और प्याले आलमारियों में सजे रखे थे। भोजन मेज पर आता था। बाबू जी बड़े चाव से भोजन करते। मुझे पहले कुछ शरम आती थी; लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज ही पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता, तो गाड़ी तैयार करायी जाती। बाबू जी कहते-यही फैशन है!

बाबू जी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भली-भाँति खर्च भी न चलता था। कभी-कभी मैं उन्हें चिंताकुल देखती तो समझाती कि जब आय इतनी कम है तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है? कोई छोटा-सा मकान ले लो। दो नौकरों से भी काम चल सकता है। लेकिन बाबू जी मेरी बातों पर हँस देते और कहते-मैं अपनी

दरिद्रता का ढिंढोरा अपने-आप क्यों पीटूँ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ कि हम लोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आयेगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने के योग्य होते हैं। संतोष दरिद्रता का दूसरा नाम है।

अस्तु, हम लोगों का खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह में तीन बार थियेटर जरूर देखने जाते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोजन अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की इच्छा नहीं। उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भोगने के लिए ही दी हैं। उसको भोगना ही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घर में एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फँसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गयी। ये पुस्तकें मुझे अप्रिय लगने लगीं। देवताओं से विश्वास उठ गया।

धीरे-धीरे यहाँ के बड़े लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक बिलकुल नयी सोसायटी थी। इसके रहन-सहन, आहार-व्यवहार और आचार-विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस

सोसायटी में ऐसी जान पड़ती, जैसे मोरों में कौआ। इन लेडियों की बातचीत कभी थियेटर और घुड़दौड़ के विषय में होती, कभी टेनिस, समाचार-पत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेखों पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, फुर्ती और चपलता पर मुझे अचंभा होता। ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियाँ हैं। वे बिना घूँघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहस पर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जाने की चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिंतित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे परन्तु मिसेज दास के माथे पर चिन्ता का चिह्न तक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीताल में तपेदिक का इलाज करा रहे थे, पर मिसेज बागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्था में मेरी क्या दशा होती मैं ही जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण-शक्ति थी, जो मुझे खींचे लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती, और मेरा भी जी चाहता कि उन्हीं की भाँति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका अंग्रेजी वार्तालाप सुन मुझे मालूम होता कि ये देवियाँ हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच में मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबू जी पहले से मेरा अधिक आदर करते, मुझे सदैव 'डियर-डार्लिंग' आदि कहकर पुकारते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता, मानो ये बातें उनके हृदय से नहीं, केवल मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार में हार्दिक भावों की जगह अलंकार ज्यादा होता था; किन्तु और भी अचम्भे की बात यह थी कि अब मुझे बाबू जी पर वह पहले की-सी श्रद्धा न रही। अब उनकी सिर की पीड़ा से मेरे हृदय में पीड़ा न होती थी। मुझमें आत्मगौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृंगार इसलिए करती थी कि संसार में यह भी मेरा कर्त्तव्य है; इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अब मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए जीती थी। त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी; परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और भी अनेक सभ्यगण बाबू जी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड़ थी। बाबू जी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता में काला धब्बा समझते थे। कदाचित् यह दिखाना चाहते थे कि मेरी

स्त्री इसलिए परदे में नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्राभूषणों में किसी से कम है बल्कि इसलिए कि अभी उसे लज्जा आती है। वह मुझे किसी बहाने से बार-बार परदे के निकट बुलाते, जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और वस्त्राभूषण देख लें। अन्त में कुछ दिन बाद मेरी झिझक गायब हो गयी। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबू जी के साथ बिना परदे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत आयी। अन्त में मैंने क्लब में जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था मानो वे लोग व्यायाम के लिए नहीं बल्कि फैशन के लिए टेनिस खेलने आते थे। वे कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काम में, झुकने में, दौड़ने में, उचकने में एक कृत्रिमता होती थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं केवल दिखावा है।

क्लब में इससे विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वाँग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अँगरेज़ी के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिसमें कोई सार न होता था, नकली हँसी हँसते थे, जिनका कोई असर न होता था। स्त्रियों की वह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की वह भाव-शून्य स्त्री-पूजा मुझे भी न भाती थी। चारों ओर अँगरेजी चाल-ढाल की हास्यजनक नकल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वह रंग पकड़ने और उन्हीं का अनुकरण करने लगी। अब

मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृंगार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब में सबकी आँखों में चुभ जाऊँ! अब मुझे बाबू जी के सेवा-सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृंगार की धुन रहती थी। यहाँ तक की यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, लोगों से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान-मिश्रित आनन्द का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमाएँ विस्तृत हो गयीं। वह दृष्टिपात जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ को खड़ा कर देता और वह हास्यकटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्मादपूर्ण हर्ष होता था। परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आंतरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबराहट होती थी। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊँगी; परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती। मैं अपने वश में न थी। मेरी सत्कल्पनाएँ निर्बल हो गयी थीं।

दो वर्ष और बीत गये और अब बाबू जी के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिंतित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिंता ने घेर रखा है, या कोई बीमारी हो गयी है। मुँह बिलकुल सूखा रहता था। तनिक-तनिक-सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते, और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले वह सौ काम छोड़ कर क्लब अवश्य जाते थे, वहाँ गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी; अब अधिकतर अपने कमरे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी समझ में न आता कि बात क्या है।

एक दिन उन्हें बड़े जोर का बुखार आया, दिन-भर बेहोश रहे, परन्तु मुझे उनके पास बैठने में अनकुस-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास में लगा हुआ था। उनके पास जाती थी और पल भर में फिर लौट आती। टेनिस का समय आया, तो दुविधा में पड़ गयी कि जाऊँ या न जाऊँ। देर तक मन में यह संग्राम होता रहा। अन्त को मैंने यही निर्णय किया कि मेरे यहाँ रहने से वह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे, इससे मेरा यहाँ बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, और रैकेट लेकर क्लब घर जा पहुँची। वहाँ मैंने मिसेज दास और मिसेज बागची से बाबू जी की दशा बतलायी, और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही।

जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा तो मैं ठंडी आह भर कर कोर्ट में जा पहुँची और खेलने लगी।

आज से तीन वर्ष पूर्व बाबू जी को इसी प्रकार बुखार आ गया था। मैं रात भर उन्हें पंखा झलती रही थी; हृदय व्याकुल था और यही चाहता था कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु वह उठ बैठें। पर अब हृदय तो स्नेह शून्य हो गया था, दिखावा अधिक था। अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गयी थी। मैं सदैव की भाँति रात को नौ बजे लौटी। बाबू जी का जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने मुझे केवल दबी दृष्टि से देखा और करवट बदल ली; परन्तु मैं लेटी, तो मेरा हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता।

मैं अब अंगरेजी उपन्यासों को समझने लगी। हमारी बातचीत अधिक उत्कृष्ट और आलोचनात्मक होती थी।

हमारा सभ्यता का आदर्श अब बहुत ही उच्च हो गया। हमको अब अपनी मित्र मण्डली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच होता था। हम अपने से छोटी श्रेणी के लोगों से बोलने में अपना अपमान समझते थे। नौकरों को अपना नौकर समझते थे, और बस। हमको उनके निजी मामलों से कुछ मतलब न था।

हम उनसे अलग रह कर उनके ऊपर अपना जोर जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगों को साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी, उनमें शिष्टता न थी। खैर!

बाबू जी का जी दूसरे दिन भी न सँभला। मैं क्लब न गयी। परन्तु जब लगातार तीन दिन तक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज़ दास ने बार-बार एक नर्स बुलाने का आदेश किया, तो मैं सहमत हो गयी। उस दिन से रोगी की सेवा-शुश्रूषा से छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गयी थी, परन्तु मेरा जी वहीं लगा रहता था, बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्याग पर क्रोध भी आता था।

## 6

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई अंगरेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा कि बाबू जी का बुखार असाध्य हो जाय तो? पर इस विचार से लेश-मात्र भी दुःख न हुआ। मैं इस शोकमय कल्पना का मन ही मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज़ दास, मिसेज़ नायडू, मिसेज़ श्रीवास्तव, मिस खरे,

मिसेज़ शरगा अवश्य ही मातमपुर्सी करने आवेंगी। उन्हें देखते ही मैं सजल नेत्र हो उठूँगी, और कहूँगी — बहनो! मैं लुट गयी। हाय मैं लुट गयी। अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है, परन्तु मेरी अवस्था पर दुःख न प्रकट करो। मुझ पर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा के मोक्ष के विचार से सह लूँगी।

मैंने इस प्रकार मन में एक शोकपूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूँगी।

इस घटना की शहर भर में चर्चा हो जायगी। सारे कैन्टोन्मेन्ट के लोग मुझे संवेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दूँगी कि मैं प्रत्येक शोक-पत्र का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोने के सिवा और किसी काम के लिए समय नहीं है। मैं इस हमदर्दी के लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूँ, और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करती हूँ कि वे मृतक की आत्मा की सद्गति के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि नर्स ने आ कर कहा — आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था।

मुझे उनका बुलाना अखर गया, लेकिन एक मास हो गया था। वह अत्यंत दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनयपूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उन पर दया आयी। बैठ गयी, और ढाढ़स देते हुए बोली — क्या करूँ? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊँ?

बाबू जी आँखें नीची करके अत्यंत करुण भाव से बोले — यहाँ कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा — क्या आप समझते हैं कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से अच्छी होगी?

बाबू जी बोले — क्या जाने क्यों मेरा जी अम्माँ के दर्शनों को लालायित हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं — यह आपका केवल विचार मात्र है।

बाबू जी — शायद ऐसा ही हो। लेकिन मेरी विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं इस जीवन से ही दुःखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा!

बाबू जी फिर बोले — हाँ, इस जिंदगी से तंग आ गया हूँ! मैं अब समझ रहा हूँ मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर

दौड़ा जा रहा था, वह मरुभूमि है। मैं इस प्रकार जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था; परन्तु अब मुझे उसकी आंतरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है! इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया, और उसे आदि से अन्त तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय को शांति है, न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त, अशांतिमय, स्वार्थपूर्ण, विलाप-युक्त जीवन है। यहाँ न नीति है, न धर्म; न सहानुभूति, न सहृदयता। परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो तो अम्माँ को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहाँ आयेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न देखा जायगा। उन्हें इस सोसाइटी की हवा अभी नहीं लगी, वह आयेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुखार की बक-झक है। नर्स से कहा — जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डाक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थरमामीटर निकाला; परन्तु ज्यों ही वह बाबू जी के समीप गयी, उन्होंने उसके हाथ से वह यंत्र छीन कर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े-

टुकड़े हो गये। फिर मेरी ओर एक अवहेलनापूर्ण दृष्टि से देख कर कहा — साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लब-घर जाती हूँ जिसके लिए तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। खैर, घूमती हुई यदि डाक्टर के पास जाना, तो कह देना कि यहाँ टेम्परेचर उस बिंदु पर पहुँच चुका है, जहाँ आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत हो गयी। हृदय में एक करुण चिन्ता का संचार होने लगा। गला भर आया। बाबू जी ने नेत्र मूँद लिये थे और उनकी साँस वेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डाक्टर के पास भेजूँ। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतने में बाबू जी उठ बैठे और विनीत भाव से बोले — श्यामा! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी; पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूँ। मैं अब फिर अपने घर जा कर वही पहले की-सी जिंदगी बिताना चाहता हूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो गयी है, और यही मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले की-सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घर का काम-काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वर से डरनेवाली, पतिश्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं

विश्वास करता हूँ तुम मुझे निराश न करोगी। तुमको सोलहों आने अपनी बनाना और सोलहों आने तुम्हारा बनना चाहता हूँ। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवन में वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना; नहीं तो इस कष्ट और शोक का न जाने कितना भयंकर परिणाम हो।

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन में सोचने लगी — इस स्वतंत्र जीवन में कितना सुख था? ये मजे वहाँ कहाँ? क्या इतने दिन स्वतंत्र वायु में विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजड़े में जाऊँ? वही लौंडी बन कर रहूँ? क्यों इन्होंने मुझे वर्षों स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया, वर्षों देवताओं की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत-उपवास की बुराई की, हँसी उड़ायी? अब जब मैं उन बातों को भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अंधकूप में ढकेलना चाहते हैं। मैं तो इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है? लेकिन बाबू जी के मुख पर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली — आखिर यहाँ क्या कष्ट है?

मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी।

बाबू जी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टि से देख कर बोले — बहुत ही अच्छा होता कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेती। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूँ जो आज से तीन वर्ष पहले था। जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा प्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार हो कर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था — तुमने चाहे इसका अनुभव न किया हो परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूँ — तो मैं कैसे अनुमान करूँ कि उन्हीं भावों ने तुम्हें स्खलित न किया होगा? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न देख पड़ते हैं कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों का और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुधि नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि सभ्यता, स्वेच्छाचारिता का भूत स्त्रियों के कोमल हृदय पर बड़ी सुगमता से कब्जा कर सकता है। क्या अब से तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशा में छोड़ कर किसी पड़ोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं? मैं बिछौने पर रहता, और तुम किसी के घर जा कर कलोलें करतीं? स्त्रियों का हृदय आधिक्य-प्रिय होता है; परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्य का फल आत्मिक एवं शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी,

पर इस आधिक्य का परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दास के सम्मुख हँसतीं-बोलतीं, तो मैं या तो तुम्हें मार डालता, या स्वयं विष-पान कर लेता। परन्तु बेहयाई ऐसे जीवन का प्रधान तत्त्व है। मैं सब कुछ स्वयं देखता और सहता हूँ। कदाचित् सहे भी जाता यदि इस बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो, तो मुझे संतोष न होगा, क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं है। मैंने अपने को उस इन्द्रजाल से निकालने का निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रिय लिप्सा का सभ्यता और भ्रष्टता का विचार स्वातन्त्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बाबू जी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यंत्रणा असह्य हो गयी। लज्जित हो उठी। अन्तरात्मा ने कहा-अवश्य! मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी; पर अब वह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य हैं। मिस्टर दास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खींच गया। कल मेरे हृदय पर इस दुरात्मा की बातों का कैसा नशा छा गया था, यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबू जी की आंतरिक अवस्था उनके मुखड़े

ही से प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर हो गये। उनके बदले ये शब्द ज्वलंत अक्षरों में लिखे हुए नजर आये-तूने फैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वार्थों का ज्ञान हो आया है, तुझमें जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़-हृदय और शिक्षा-सम्पन्न भी हो गयी; लेकिन तेरे आत्मिक बल का विनाश हो गया, क्योंकि तू अपने कर्त्तव्य को भूल गयी।

मैं दोनों हाथ जोड़ कर बाबू जी के चरणों पर गिर पड़ी। कंठ रुँध गया, एक शब्द भी मुँह से न निकला, अश्रुधारा बह चली।

अब मैं फिर अपने घर पर आ गयी हूँ। अम्माँ जी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं, बाबू जी संतुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब स्वयं प्रतिदिन संध्यावंदन करते हैं।

मिसेज दास के पत्र कभी-कभी आते हैं, वह इलाहाबादी सोसाइटी के नवीन समाचारों से भरे होते हैं। मिस्टर दास और मिस भाटिया के संबंध में कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रों का उत्तर तो देती हूँ, परन्तु चाहती हूँ कि वह अब न आते तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनों की याद दिलाते हैं, जिन्हें मैं भूल जाना चाहती हूँ।

कल बाबू जी ने बहुत-सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमें आस्कर वाइल्ड की कई पुस्तकें थीं। वह अब अँगरेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और एमरसन के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ क्योंकि इस बीच चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है।

# बैंक का दिवाला

लखनऊ नेशनल बैंक के दफ्तर में लाला साईंदास आराम कुर्सी पर लेटे हुए शेयरों का भाव देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस बार हिस्सेदारों को मुनाफ़ा कहाँ से दिया जायगा। चाय, कोयला या जुट के हिस्से खरीदने, चाँदी, सोने या रूई का सट्टा करने का इरादा करते; लेकिन नुकसान के भय से कुछ तय न कर पाते थे। नाज के व्यापार में इस बार बड़ा घाटा रहा; हिस्सेदारों के ढाढ़स के लिए हानि-लाभ का कल्पित ब्योरा दिखाना पड़ा और नफा पूँजी से देना पड़ा। इससे फिर नाज के व्यापार में हाथ डालते जी काँपता था।

पर रूपये को बेकार डाल रखना असम्भव था। दो-एक दिन में उसे कहीं न कहीं लगाने का उचित उपाय करना जरूरी था; क्योंकि डाइरेक्टरों की तिमाही बैठक एक ही सप्ताह में होनेवाली थी, और यदि उस समय कोई निश्चय न हुआ, तो आगे तीन महीने तक फिर कुछ न हो सकेगा, और छमाही मुनाफे के बँटवारे के समय फिर वही फरजी कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसका बार-बार सहन करना बैंक के लिए कठिन है। बहुत देर तक इस

उलझन में पड़े रहने के बाद साईंदास ने घंटी बजायी। इस पर बगल के दूसरे कमरे से एक बंगाली बाबू ने सिर निकाल का झाँका।

साईंदास — ताजा-स्टील कम्पनी को एक पत्र लिख दीजिए कि अपना नया बैलेंस शीट भेज दें।

बाबू — उन लोगों को रुपया का गरज नहीं। चिट्ठी का जवाब नहीं देता।

साईदास — अच्छा: नागपुर की स्वदेशी मिल को लिखिए।

बाबू — उसका कारोबार अच्छा नहीं है। अभी उसके मजदूरों ने हड़ताल किया था। दो महीना तक मिल बन्द रहा।

साईंदास — अजी, तो कहीं लिखो भी! तुम्हारी समझ में सारी दुनिया बेईमानों से भरी है।

बाबू —बाबा, लिखने को तो हम सब जगह लिख दें; मगर खाली लिख देने से तो कुछ लाभ नहीं होता।

लाला साईंदास अपनी कुल-प्रतिष्ठा और मर्यादा के कारण बैक के मैनेजिंग डाइरेक्टर हो गये थे पर व्यावहारिक बातों से अपरिचित थे। यहीं बंगाली बाबू इनके सलाहकार थे और बाबू साहब को किसी कारखाने या कम्पनी पर भरोसा न था। इन्हीं के

अविश्वास के कारण पिछले साल बैंक का रुपया सन्दूक से बाहर न निकल सका था, और अब वही रंग फिर दिखायी देता था। साईंदास को इस कठिनाई से बचने का कोई उपाय न सूझता था। न इतनी हिम्मत थी कि अपने भरोसे किसी व्यापार में हाथ डालें। बेचैनी की दशा में उठकर कमरे में टहलने लगे कि दरबान ने आकर खबर दी — बरहल की महारानी की सवारी आयी है।

## 2

लाल साईंदास चौंक पड़े। बरहल की महारानी को लखनऊ आये तीन-चार दिन हुए थे और हर एक मे मुँह से उन्हीं की चर्चा सुनायी देती थी। कोई उनके पहनावे पर मुग्ध था, कोई उनकी सुन्दरता पर, काई उनकी स्वच्छंद वृत्ति पर। यहाँ तक कि उनकी दासियाँ और सिपाही आदि भी लोगों की चर्चा के पात्र बने हुए थे। रायल होटल के द्वार पर दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। कितने ही शौकीन, बेफिकरे लोग, इतर-फरोश, बज़ाज या तम्बाकूगर का वेश धर का उनका दर्शन कर चुके थे। जिधर से महारानी की सवारी निकल जाती, दर्शकों से ठट लग जाते थे।

वाह-वाह, क्या शान! ऐसी इराकी जोड़ी लाट साहब के सिवा किसी राजा-रईस के यहाँ तो शायद ही निकले, और सजावट भी क्या खूब है! भई, ऐसा गोरे आदमी तो यहाँ भी नहीं दिखायी देते। यहाँ के रईस तो मृगांक, चन्द्रोदय और ईश्वर जाने, क्या-क्या खाक-बला खाते है, पर किसी के बदन पर तेज या प्रकाश का नाम नहीं। ये लोग न जाने क्या भोजन करते और किस कुएँ का पानी पीते हैं कि जिसे देखिए, ताजा सेब बना हुआ है! यह सब जलवायु का प्रभाव है।

बरहल उतर दिशा में नेपाल के समीप, अंगरेजी-राज्य में एक रियासत थी। यद्यपि जनता उसे बहुत मालदार समझती थी; पर वास्तव में उस रियासत की आमदनी दो लाख से अधिक न थी। हाँ, क्षेत्रफल बहुत विस्तृत था। बहुत भूमि ऊसर और उजाड़ थी। बसा हुआ भाग भी पहाड़ी और बंजर था। जमीन बहुत सस्ती उठती थी।

लाला साईंदास ने तुरन्त अलगानी से रेशमी सूट उतार कर पहन लिया और मेज पर आकर शान से बैठ गए। मानों राजा-रानियों का यहाँ आना कोई साधारण बात है। दफ्तर के क्लर्क भी सँभल गए। सारे बैंक में सन्नाटे की हलचल पैदा हो गई। दरबान ने पगड़ी सँभाली। चौकीदार ने तलवार निकाली, और अपने स्थान पर खड़ा हो गया। पंखा-कुली की मीठी नींद भी

टूटी और बंगाली बाबू महारानी के स्वागत के लिए दफ्तर से बाहर निकले।

साईंदास ने बाहरी ठाट तो बना लिया, किंतु चित्त आशा और भय से चंचल हो रहा था। एक रानी से व्यवहार करने का यह पहला ही अवसर था; घबराते थे कि बात करते बने या न बने। रईसों का मिजाज असमान पर होता है। मालूम नहीं, मै बात करने मे कही चूक जाऊँ। उन्हें इस समय अपने में एक कमी मालूम हो रही थी। वह राजसी नियमों से अनभिज्ञ थे। उनका सम्मान किस प्रकार करना चाहिए, उनसे बातें करने में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, उसकी मर्यादा-रक्षा के लिए कितनी नम्रता उचित है, इस प्रकार के प्रश्न से वह बड़े असमंजस में पड़े हुए थे, और जी चाहता था कि किसी तरह परीक्षा से शीघ्र ही छुटकारा हो जाय। व्यापारियों, मामूली जमींदारों या रईसों से वह रुखाई ओर सफाई का बर्ताव किया करते थे और पढ़े-लिखे सज्जनों से शील और शिष्टता का। उन अवसरों पर उन्हें किसी विशेष विचार की आवश्यकता न होती थी; पर इस समय बड़ी परेशानी हो रही थी। जैसे कोई लंका-वासी तिब्बत में आ गया हो, जहाँ के रस्म-रिवाज और बात-चीत का उसे ज्ञान न हो।

एकाएक उनकी दृष्टि घड़ी पर पड़ी। तीसरे पहर के चार बज चुके थे। परन्तु घड़ी अभी दोपहर की नींद मे मग्न थी। तारीख

की सुई ने दौड़ मे समय को भी मात कर दिया था। वह जल्दी से उठे कि घड़ी को ठीक कर दें, इतने में महारानी के कमरे मे पदार्पण हुआ। साईदास ने घड़ी को छोड़ा और महारानी के निकट जा बगल मे खड़े हो गये। निश्चय न कर कर सके कि हाथ मिलायें या झुक कर सलाम करें। रानी जी ने स्वयं हाथ बढ़ाकर उन्हें इस उलझन से छुड़ाया।

जब कुर्सियों पर बैठ गए, तो रानी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने व्यवहार की बातचीत शुरू कीं। बरहल की पुरानी गाथा सुनाने के बाद उसने उन उन्नतियों का वर्णन किया, जो रानी साहब के प्रयत्न से हुई थीं। इस समय नहरों की एक शाखा निकालने के लिए दस लाख रुपयों की आवश्यकता थी: परन्तु उन्होंने एक हिन्दुस्तानी बैंक से ही व्यवहार करना अच्छा समझा। अब यह निर्णय नेशनल बैंक के हाथ में था कि वह इस अवसर से लाभ उठाना चाहता है या नहीं।

बंगाली बाबू — हम रुपया दे सकता है, मगर कागज-पत्तर देखे बिना कुछ नहीं कर सकता।

सेक्रेटरी — आप कोई जमानत चाहते हैं?

साईंदास उदारता से बोले — महाशय, जमानत के लिए आपकी जबान ही काफी है।

बंगाली बाबू — आपके पास रियासत का कोई हिसाब-किताब है?

लाला साईंदास को अपने हेडक्लर्क का दुनियादारी का बर्ताव अच्छा न लगता था। वह इस समय उदारता के नशे में चूर थे। महारानी की सूरत ही पक्की जमानत थी। उनके सामने कागज और हिसाब का वर्णन करना बनियापन जान पड़ता था, जिससे अविश्वास की गन्ध आती है।

महिलाओं के सामने हम शील और संकोच के पुतले बन जाते हैं। साईंदास बंगाली बाबू की ओर क्रूर-कठोर दृष्टि से देख का बोले — कागजों की जाँच कोई आवश्यक बात नहीं है, केवल हमको विश्वास होना चाहिए।

बंगाली बाबू — डाइरेक्टर लोग कभी न मानेगा।

साईंदास — हमको इसकी परवाह नहीं, हम अपनी जिम्मेदारी पर रुपये दे सकते हैं।

रानी ने साईंदास की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा। उनके होठों पर हल्की मुस्कराहट दिखलायी पड़ी।

परन्तु डाइरेक्टरों ने हिसाब किताब आय व्यय देखना आवश्यक समझा और यह काम लाला साईंदास के सुपुर्द हुआ; क्योंकि और किसी को अपने काम से फुर्सत न थी कि वह एक पूरे दफ्तर का मुआयना करता। साईंदास ने नियमपालन किया। तीन-चार तक हिसाब जाँचते रहे। तब अपने इतमीनान के अनुकूल रिपोर्ट लिखी। मामला तय हो गया। दस्तावेज लिखा गया, रुपये दे दिए गये। नौ रुपये सैकड़े ब्याज ठहरा।

तीन साल तक बैंक के कारोबार की अच्छी उन्नति हुई। छठे महीने बिना कहे सुने पैंतालिस हजार रुपयों की थैली दफ्तर में आ जाती थी। व्यवहारियों को पाँच रुपये सैकड़े ब्याज दे दिया जाता था। हिस्सेदारों को सात रुपये सैकड़े लाभ था।

साईंदास से सब लोग प्रसन्न थे। सब लोग उनकी सूझ-बूझ की प्रशंसा करते। यहाँ तक कि बंगाली बाबू भी धीरे धीरे उनके कायल होते जाते थे। साईंदास उनसे कहा करते — बाबू जी विश्वास संसार से न लुप्त हुआ है और न होगा। सत्य पर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्य का धर्म हैं। जिस मनुष्य के चित्त से विश्वास जाता रहता है उसे मृतक समझना चाहिए। उसे जान पड़ता है, मैं चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ। बड़े से बड़े सिद्ध महात्मा भी उसे रंगे-सियार जान पड़ते हैं। सच्चे से सच्चे देशप्रेमी उसकी दृष्टि में अपनी प्रशंसा के भूखे ही ठहरते हैं। संसार उसे

धोखे और छल से परिपूर्ण दिखलाई देता है। यहाँ तक कि उसके मन में परमात्मा पर श्रद्धा और भक्ति लुप्त हो जाती हैं। एक प्रसिद्ध फिलासफर का कथन है कि प्रत्येक मनुष्य को जब तक कि उसके विरूद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न पाओ भलामानस समझो। वर्तमान शासन प्रथा इसी महत्वपूर्ण सिद्धांत पर गठित है। और घृणा तो किसी से करनी ही न चाहिए। हमारी आत्माएँ पवित्र हैं। उनसे घृणा करना परमात्मा से घृणा करने के समान है। मैं यह नहीं कहता हूँ कि संसार में कपट छल है ही नहीं, है और बहुत अधिकता से है परन्तु उसका निवारण अविश्वास से नहीं मानव चरित्र के ज्ञान से होता है और यह ईश्वर दत्त गुण है। मैं यह दावा तो नहीं करता परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं मनुष्य को देखकर उसके आंतरिक भावों तक पहुँच जाता हूँ। कोई कितना ही वेश बदले, रंग-रूप सँवारे परन्तु मेरी अन्तर्दृष्टि को धोखा नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है। और अविश्वास से अविश्वास। यह प्राकृतिक नियम है। जिस मनुष्य को आप शुरू से ही धूर्त, कपटी, दुर्जन, समझ लेंगे, वह कभी आपसे निष्कपट व्यवहार न करेगा। वह एकाएक आपको नीचा दिखाने का यत्न करेगा। इसके विपरीत आप एक चोर पर भी भरोसा करें तो वह आपका दास हो जायगा। सारे संसार को लूटे परन्तु आपको

धोखा न देगा वह कितना ही कुकर्मी अधर्मी क्यों न हो, पर आप उसके गले में विश्वास की जंजीर डालकर उसे जिस ओर चाहें ले जा सकते है। यहाँ तक कि वह आपके हाथों पुण्यात्मा भी बन सकता है।

बंगाली बाबू के पास इन दार्शनिक तर्कों का कोई उत्तर न था।

## 4

चौथे वर्ष की पहली तारिख थी। लाला साईदास बैंक के दफ्तर में बैठ डाकिये की राह देख रहे थे। आज बरहल से पैंतालीस हजार रुपये आवेंगे। अबकी इनका इरादा था कि कुछ सजावट के सामान और मोल ले लें। अब तक बैंक में टेलीफोन नहीं था। उसका भी तखमीना मँगा लिया था। आशा की आभा चेहरे से झलक रही थी। बंगाली बाबू से हँस कर कहते थे — इस तारीख को मेरे हाथों में अदबदा के खुजली होने लगती है। आज भी हथेली खुजला रही है। कभी दफ्तरी से कहते — अरे मियाँ शराफत, जरा सगुन तो विचारों; सिर्फ सूद ही सूद आ रही है, या दफ्तर वालों के लिए नजराना शुकराना भी। आशा का प्रभाव

कदाचित स्थान पर भी होता है। बैंक भी आज खुला हुआ दिखायी पड़ता था।

डाकिया ठीक समय पर आया। साईंदास ने लापरवाही से उसकी ओर देखा। उसने अपनी थैली से कई रजिस्टरी लिफाफे निकाले। साईंदास ने लिफाफे को उड़ती निगाह से देखा। बहरल का कोई लिफाफा न था। न बीमा, न मुहर, न वह लिखावट। कुछ निराशा-सी हुई। जी में आया, डाकिए से पूछें, कोई रजिस्टरी रह तो नहीं गयी पर रुक गए; दफ्तर के क्लर्कों के सामने इतना अधैर्य अनुचित था। किंतु जब डाकिया चलने लगा तब उनसे न रह गया? पूछ ही बैठे — अरे भाई, कोई बीमा का लिफाफा रह तो नहीं गया? आज उसे आना चाहिए था। डाकिये ने कहा — सरकार भला ऐसी बात हो सकती है! और कहीं भूल-चूक चाहे हो भी जाय पर आपके काम में कही भूल हो सकती है?

साईंदास का चेहरा उतर गया, जैसे कच्चे रंग पर पानी पड़ जाय। डाकिया चला गया, तो बंगाली बाबू से बोले — यह देर क्यों हुई? और तो कभी ऐसा न होता था।

बंगाली बाबू ने निष्ठुर भाव से उत्तर दिया — किसी कारण से देर हो गया होगा। घबराने की कोई बात नहीं।

निराशा असम्भव को सम्भव बना देती है। साईंदास को इस समय यह ख्याल हुआ कि कदाचित् पार्सल से रुपये आते हों। हो सकता है तीन हजार अशर्फियों का पार्सल करा दिया हो। यद्यपि इस विचार को औरों पर प्रकट करने का उन्हें साहस न हुआ, पर उन्हें यह आशा उस समय तक बनी रही जब तक पार्सलवाला डाकिया वापस नहीं गया। अन्त में संध्या को वह बेचैनी की दशा में उठ कर चले गये। अब खत या तार का इंतजार था। दो-तीन बार झुंझलाकर उठे, डाँटकर पत्र लिखूँ और साफ साफ कह दूँ कि लेन देन के मामले मे वादा पूरा न करना विश्वासघात है। एक दिन की देर भी बैंक के लिए घातक हो सकती है। इससे यह होगा कि फिर कभी ऐसी शिकायत करने का अवसर न मिलेगा; परन्तु फिर कुछ सोचकर न लिखा।

शाम हो गयी थी, कई मित्र आ गये। गपशप होने लगी। इतने में पोस्टमैन ने शाम की डाक दी। यों वह पहले अखबारों को खोला करते पर आज चिट्ठियाँ खोलीं किन्तु बरहल का कोई खत न था। तब बेदम हो एक अँगरेजी अखबार खोला। पहले ही तार का शीर्षक देखकर उनका खून सर्द हो गया। लिखा था —

'कल शाम को बरहल की महारानी जी का तीन दिन की बीमारी के बाद देहांत हो गया।'

इसके आगे एक संक्षिप्त नोट में यह लिखा हुआ था — 'बरहल की महारानी की अकाल मृत्यु केवल इस रियासत के लिए ही नहीं किन्तु समस्त प्रांत के लिए शोक जनक घटना है। बड़े-बड़े भिषगाचार्य (वैद्यराज) अभी रोग की परख भी न कर पाये थे कि मृत्यु ने काम तमाम कर दिया। रानी जी को सदैव अपनी रियासत की उन्नति का ध्यान रहता था। उनके थोड़े से राज्यकाल में ही उनसे रियासत को जो लाभ हुए हैं, वे चिरकाल तक स्मरण रहेंगे। यद्यपि यह मानी हुई बात थी कि राज्य उनके बाद दूसरे के हाथ जायेगा, तथापि यह विचार कभी रानी साहब के कर्त्तव्य पालन में बाधक नहीं बना। शास्त्रानुसार उन्हें रियासत की जमानत पर ऋण लेने का अधिकार न था, परन्तु प्रजा की भलाई के विचार से उन्हें कई बार इस नियम का उल्लंघन करना पड़ा। हमें विश्वास है कि यदि वह कुछ दिन और जीवित रहतीं तो रियासत को ऋण से मुक्त कर देती। उन्हें रात-दिन इसका ध्यान रहता था। परन्तु इस असामयिक मृत्यु ने अब यह फैसला दूसरों के अधीन कर दिया। देखना चाहिए, इन ऋणों का क्या परिणाम होता है। हमें विश्वस्त रीति से यह मालूम हुआ है कि नये महाराज ने, जो आजकल लखनऊ में विराजमान हैं, अपने वकीलों की सम्मति के अनुसार मृतक महारानी के ऋण संबंधी हिसाबों को चुकाने से इन्कार कर दिया है। हमें भय है कि इस

निश्चय से महाजनी टोले में बड़ी हलचल पैदा होगी और लखनऊ के कितने ही धन सम्पति के स्वामियों को यह शिक्षा मिल जायगी कि ब्याज का लोभ कितना अनिष्टकारी होता है।

लाला साईंदास ने अखबार मेज पर रख दिया और आकाश की ओर देखा, जो निराशा का अंतिम आश्रय है। अन्य मित्रों ने भी यह समाचार पढ़ा। इस प्रश्न पर वाद-विवाद होने लगा। साईंदास पर चारों ओर से बौछार पड़ने लगी। सारा दोष उन्हीं के सिर पर मढ़ा गया और उनकी चिरकाल की कार्यकुशलता और परिणाम-दर्शिता मिट्टी मे मिल गयी। बैंक इतना बड़ा घाटा सहने में असमर्थ था। अब यह विचार उपस्थित हुआ कि कैसे उसके प्राणों की रक्षा की जाय।

## 5

शहर में यह खबर फैलते ही लोग अपने रुपये वापस लेने के लिए आतुर हो गये। सुबह शाम तक लेनदारों का ताँता लगा रहता था। जिन लोगों का धन चालू हिसाब में जमा था, उन्होंने तुरन्त निकाल लिया, कोई उज्र न सुना। यह उसी पत्र के लेख का फल था कि नेशनल बैंक की साख उठ गयी। धीरज से

काम लेते तो बैंक सँभल जाता। परन्तु आँधी और तूफान में कौन नौका स्थिर रह सकती है? अन्त में खजांची ने टाट उलट दिया। बैंक की नसों से इतनी रक्तधाराएँ निकलीं कि वह प्राण-रहित हो गया।

तीन दिन बीत चुके थे। बैंक घर के सामने सहस्रों आदमी एकत्र थे। बैंक के द्वार पर सशस्त्र सिपाहियों का पहरा था। नाना प्रकार की अफवाहें उड़ रहीं थीं। कभी खबर उड़ती, लाला साईंदास ने विष-पान कर लिया। कोई उनके पकड़े जाने की सूचना लाता था। कोई कहता था — डाइरेक्टर हवालात के भीतर हो गये।

एकाएक सड़क पर से एक मोटर निकली और बैंक के सामने आ कर रुक गयी। किसी ने कहा — बरहल के महाराज की मोटर है। इतना सुनते ही सैकड़ों मनुष्य मोटर की ओर घबराये हुए दौड़े और उन लोगों ने मोटर को घेर लिया।

कुँवर जगदीशसिंह महारानी की मृत्यु के बाद वकीलों से सलाह लेने लखनऊ आये थे। बहुत कुछ सामान भी खरीदना था। वे इच्छाएँ जो चिरकाल से ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा में बँधी थी, पानी की भाँति राह पाकर उबली पड़ती थीं। यह मोटर आज ही ली गयी थी। नगर में एक कोठी लेने की बातचीत हो रही थी।

बहुमूल्य विलास-वस्तुओं से लदी एक गाड़ी बरहल के लिए चल चुकी थी। यहाँ भीड़ देखी, तो सोचा कोई नवीन नाटक होने वाला है, मोटर रोक दी। इतने में सैकड़ों की भीड़ लग गयी।

कुँवर साहब ने पूछा — यहाँ आप लोग क्यों जमा हैं? कोई तमाशा होने वाला है क्या?

एक महाशय, जो देखने में कोई बिगड़े रईस मालूम होते थे, बोले — जी हाँ, बड़ा मजेदार तमाशा है।

कुँवर — किसका तमाशा है?

वह — तकदीर का।

कुँवर महाशय को यह उत्तर पाकर आश्चर्य तो हुआ, परन्तु सुनते आये थे कि लखनऊ वाले बात-बात में बात निकाला करते हैं; अत: उसी ढंग से उत्तर देना आवश्यक हुआ। बोले — तकदीर का खेल देखने के लिए यहाँ आना तो आवश्यक नहीं।

लखनवी महाशय ने कहा — आपका कहना सच है लेकिन दूसरी जगह यह मजा कहाँ? यहाँ सुबह शाम तक के बीच भाग्य ने कितनों को धनी से निर्धन और निर्धन से भिखारी बना दिया। सबेरे जो लोग महल में बैठे थे उन्हें इस समय रोटियों के लाले पड़े हैं। अभी एक सप्ताह पहले जो लोग काल-गति भाग्य के खेल

और समय के फेर को कवियों की उपमा समझते थे इस समय उनकी आह और करुण क्रंदन वियोगियों को भी लज्जित करता है। ऐसे तमाशे और कहाँ देखने में आवेंगे?

कुँवर — जनाब आपने तो पहेली को और गाढ़ा कर दिया। देहाती हूँ मुझसे साधारण तौर से बात कीजिए।

इस पर सज्जन ने कहा — साहब यह नेशनल बैंक हैं। इसका दिवाला निकल गया है। आदाब अर्ज, मुझे पहचाना?

कुँवर साहब ने उसकी ओर देखा, तो मोटर से कूद पड़े और उनसे हाथ मिलाते हुए बोले — अरे मिस्टर नसीम? तुम यहाँ कहाँ? भाई तुमसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ।

मिस्टर नसीम कुँवर साहब के साथ देहरादून कालेज में पढ़ते थे। दोनों साथ-साथ देहरादून की पहाड़ियों पर सैर करते थे, परन्तु जब से कुँवर महाशय ने घर के झंझटों से विवश होकर कालेज छोड़ा, तब से दोनों मित्रों में भेंट न हुई थी। नसीम भी उनके आने के कुछ समय पीछे अपने घर लखनऊ चले आये थे।

नसीम ने उत्तर दिया — शुक्र है, आपने पहचाना तो। कहिए अब तो पौ-बारह है। कुछ दोस्तों की भी सुध है।

कुँवर — सच कहता हूँ, तुम्हारी याद हमेशा आया करती थी। कहो आराम से तो हो? मैं रायल होटल में टिका हूँ, आज आओ तो इतमीनान से बातचीत हो।

नसीम — जनाब, इतमीनान तो नेशनल बैंक के साथ चला गया। अब तो रोजी की फिक्र सवार है। जो कुछ जमा पूँजी थी सब आपको भेंट हुई। इस दिवाले ने फकीर बना दिया। अब आपके दरवाजे पर आ कर धरना दूँगा।

कुँवर — तुम्हारा घर हैं, बेखटके आओ। मेरे साथ ही क्यों न चलो। क्या बतलाऊँ, मुझे कुछ भी ध्यान न था कि मेरे इन्कार करने का यह फल होगा। जान पड़ता हैं, बैंक ने बहुतेरों को तबाह कर दिया।

नसीम — घर-घर मातम छाया हुआ है। मेरे पास तो इन कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं रहा।

इतने में एक 'तिलकधारी पंडित' जी आ गये और बोले — साहब, आपके शरीर पर वस्त्र तो है। यहाँ तो धरती आकाश कहीं ठिकाना नहीं। राघोजी पाठशाला का अध्यापक हूँ। पाठशाला का सब धन इसी बैंक में जमा था। पचास विद्यार्थी इसी के आसरे संस्कृत पढ़ते और भोजन पाते थे। कल से पाठशाला बन्द हो

जायगी। दूर-दूर के विद्यार्थी हैं। वह अपने घर किस तरह पहुँचेंगे, ईश्वर ही जानें।

एक महाशय, जिनके सिर पर पंजाबी ढंग की पगड़ी थी, गाढ़े का कोट और चमरौधा जूता पहने हुए थे, आगे बढ़ आये और नेतृत्व के भाव से बोले — महाशय, इस बैंक के फेलियर ने कितने ही इंस्टीटय़ूशनों को समाप्त कर दिया। लाला दीनानाथ का अनाथालय अब एक दिन भी नहीं चल सकता। उसके एक लाख रुपये डूब गये। अभी पन्द्रह दिन हुए, मैं डेपुटेशन से लौटा तो पन्द्रह हजार रुपये अनाथालय कोष में जमा किये थे, मगर अब कहीं कौड़ी का ठिकाना नहीं।

एक बूढ़े ने कहा — साहब, मेरी तो जिंदगी भी की कमाई मिट्टी में मिल गयी। अब कफन का भी भरोसा नहीं।

धीरे-धीरे और लोग भी एकत्र हो गये और साधारण बातचीत होने लगी। प्रत्येक मनुष्य अपने पासवाले को अपनी दुःखकथा सुनाने लगा। कुँवर साहब आधे घंटे तक नसीम के साथ खड़े ये विपत् कथाएँ सुनते रहे। ज्यों ही मोटर पर बैठे और होटल की ओर चलने की आज्ञा दी, त्यों ही उनकी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी, जो पृथ्वी पर सिर झुकाये बैठा था। यह एक अहीर था, जो लड़कपन में कुँवर साहब के साथ खेला था। उस समय उनमें ऊँच-नीच

का विचार न था, कबड्डी खेले, साथ पेड़ों पर चढ़े और चिड़ियों के बच्चे चुराये थे। जब कुँवर जी देहरादून पढ़ने गये तब यह अहीर का लड़का शिवदास अपने बाप के साथ लखनऊ चला आया। उसने यहाँ एक दूध की दूकान खोल ली थी। कुँवर साहब ने उसे पहचाना और उच्च स्वर से पुकार — अरे शिवदास इधर देखो।

शिवदास ने बोली सुनी, परन्तु सिर ऊपर न उठाया। वह अपने स्थान पर बैठा ही कुँवर साहब को देख रहा था। बचपन के वे दिन याद आ रहे थे, जब वह जगदीश के साथ गुल्ली-डंडा खेलता था, जब दोनों बुड्ढे गफूर मियाँ को मुँह चिढ़ा कर घर में छिप जाते थे जब वह इशारों से जगदीश को गुरु जी के पास से बुला लेता था, और दोनों रामलीला देखने चले जाते थे। उसे विश्वास था कि कुँवर जी मुझे भूल गये होंगे, वे लड़कपन की बातें अब कहाँ? कहाँ मैं और कहाँ यह। लेकिन कुँवर साहब ने उसका नाम लेकर बुलाया, तो उसने प्रसन्न होकर मिलने के बदले और भी सिर नीचा कर लिया और वहाँ से टल जाना चाहा। कुँवर साहब की सहृदयता में वह साम्यभाव न था। मगर कुँवर साहब उसे हटते देखकर मोटर से उतरे और उसका हाथ पकड़ कर बोले — अरे शिवदास, क्या मुझे भूल गये?

अब शिवदास अपने मनोवेग को रोक न सका। उसके नेत्र डबडबा आये। कुँवर के गले से लिपट गया और बोला — भूला तो नहीं, पर आपके सामने आते लज्जा आती है।

कुँवर — यहाँ दूध की दूकान करते हो क्या? मुझे मालूम ही न था, नहीं अठवारों से पानी पीते-पीते जुकाम क्यों होता? आओ, इसी मोटर पर बैठ जाओ। मेरे साथ होटल तक चलो। तुमसे बातें करने को जी चाहता है। तुम्हें बरहल ले चलूँगा और एक बार फिर गुल्ली-ड़डे का खेल खेलेंगे।

शिवदास — ऐसा न कीजिए, नहीं तो देखनेवाले हँसेंगे। मैं होटल में आ जाऊँगा। वही हजरतगंज वाले होटल में ठहरे हैं न?

कुँवर — हाँ, अवश्य आओगे न?

शिवदास — आप बुलायेंगे, और मैं न आऊँगा?

कुँवर — यहाँ कैसे बैठे हो? दूकान तो चल रही है न?

शिवदास — आज सबेरे तक तो चलती थी। आगे का हाल नहीं मालूम।

कुँवर — तुम्हारे रुपये भी बैंक में जमा थे क्या?

शिवदास — जब आऊँगा तो बताऊँगा।

कुँवर साहब मोटर पर आ बैठे और ड्राइवर से बोले — होटल की ओर चलो।

ड्राइवर — हुजूर ने व्हाइटवे कम्पनी की दूकान पर चलने की आज्ञा जो दी थी।

कुँवर — अब उधर न जाऊँगा।

ड्राइवर — जेकब साहब बारिस्टर के यहाँ भी न चलेंगे?

कुँवर — (झुँझलाकर) नहीं, कहीं मत चलो। मुझे सीधे होटल पहुँचाओ।

निराशा और विपत्ति के इन दृश्यों ने जगदीशसिंह के चित्त में यह प्रश्न उपस्थित कर दिया था कि अब मेरा क्या कर्तव्य है?

## 6

आज से सात वर्ष पूर्व जब बरहल के महाराज ठीक युवावस्था में घोड़े से गिर कर मर गये थे और विरासत का प्रश्न उठा तो महाराज के कोई सन्तान न होने के कारण, वंश-क्रम मिलाने से उनके सगे चचेरे भाई ठाकुर रामसिंह को विरासत का हक पहुँचता था। उन्होंने दावा किया, लेकिन न्यायालयों ने रानी को

ही हकदार ठहराया। ठाकुर साहब ने अपीलें कीं, प्रिवी कौंसिल तक गये, परन्तु सफलता न हुई। मुकदमेबाजी में लाखों रुपये नष्ट हुए, अपने पास की मिलकियत भी हाथ से जाती रही, किन्तु हारकर भी वह चैन से न बैठे। सदैव विधवा रानी को छेड़ते रहे। कभी असामियों को भड़काते, कभी असामियों से रानी की बुराई करते, कभी उन्हें जाली मुकदमों में फँसाने का उपाय करते, परन्तु रानी बड़े जीवट की स्त्री थीं। वह भी ठाकुर साहब के प्रत्येक आघात का मुँहतोड़ उत्तर देतीं। हाँ, इस खींचतान में उन्हें बड़ी-बड़ी रकमें अवश्य खर्च करनी पड़ती थीं। असामियों से रुपये न वसूल होते इसलिए उन्हें बार-बार ऋण लेना पड़ता था, परन्तु कानून के अनुसार उन्हें ऋण लेने का अधिकार न था। इसलिए उन्हें या तो इस व्यवस्था को छिपाना पड़ता था, या सूद की गहरी दर स्वीकार करनी पड़ती थी।

कुँवर जगदीशसिंह का लड़कपन तो लाड़-प्यार से बीता था, परन्तु जब ठाकुर रामसिंह मुकदमेबाजी से बहुत तंग आ गये और यह सन्देह होने लगा कि कहीं रानी की चालों से कुँवर साहब का जीवन संकट में पड़ जाय, तो उन्होंने विवश होकर कुँवर साहब को देहरादून भेज दिया। कुँवर साहब वहाँ दो वर्ष तक तो आनन्द से रहे, किन्तु ज्योंही कॉलेज की प्रथम श्रेणी में पहुँचे कि पिता परलोकवासी ही गये। कुँवर साहब को पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

बरहल चले आये, सिर पर कुटुम्ब-पालन और रानी से पुरानी शत्रुता के निभाने का बोझ आ पड़ा। उस समय से महारानी के मृत्यु-काल तक उनकी दशा बहुत गिरी रही। ऋण या स्त्रियों के गहनों के सिवा और कोई आधार न था। उस पर कुल-मर्यादा की रक्षा की चिन्ता भी थी। ये तीन वर्ष तक उनके लिए कठिन परीक्षा के समय थे। आये दिन साहूकारों से काम पड़ता था। उनके निर्दय बाणों से कलेजा छिद गया था। हाकिमों के कठोर व्यवहार और अत्याचार भी सहने पड़ते, परन्तु सबसे हृदय-विदारक अपने आत्मीयजनों का बर्ताव था, जो सामने बात न करके बगली चोटें करते थे, मित्रता और ऐक्य की आड़ में कपट हाथ चलाते थे। इन कठोर यातनाओं ने कुँवर साहब को अधिकार, स्वेच्छाचार और धन-सम्पत्ति का जानी दुश्मनी बना दिया था। वह बड़े भावुक पुरुष थे। सम्बन्धियों की अकृपा और देश-बंधुओं की दुर्नीति उनके हृदय पर काला चिन्ह बनाती जाती थी, साहित्य-प्रेम ने उन्हें मानव-प्रकृति का तत्त्वान्वेषी बना दिया था और जहाँ यह ज्ञान उन्हें प्रतिदिन सभ्यता से दूर लिये जाता था, वहाँ उनके चित्त में जन-सत्ता और साम्यवाद के विचार पुष्ट करता जाता था। उनपर प्रकट हो गया था यदि सद्व्यवहार जीवित हैं, तो वह झोंपड़ों और गरीबों में ही है। उस कठिन समय में, जब चारों और अँधेरा छाया हुआ था, उन्हें कभी-कभी सच्ची सहानुभूति का

प्रकाश यहीं दृष्टिगोचर हो जाता था। धन-सम्पत्ति को वह श्रेष्ठ प्रसाद नहीं, ईश्वर का प्रकोप समझते थे जो मनुष्य के हृदय से दया और प्रेम के भावों को मिटा देता है, यह वह मेघ हैं, जो चित्त के प्रकाशित तारों पर छा जाता है।

परन्तु महारानी की मृत्यु के बाद ज्यों ही धन-सम्पत्ति ने उन पर वार किया, बस दार्शनिक तर्कों की यह ढाल चूर-चूर हो गयी। आत्मनिदर्शन की शक्ति नष्ट हो गयी। वे मित्र बन गये जो शत्रु सरीखे थे और जा सच्चे हितैषी थे, वे विस्मृत हो गये। साम्यवाद के मनोगत विचारों में घोर परिवर्तन आरम्भ हो गया। हृदय में असहिष्णुता का उद्भव हुआ। त्याग ने भोग की ओर सिर झुका दिया, मर्यादा की बेड़ी गले में पड़ी। वे अधिकारी, जिन्हें देखकर उनके तेवर बदल जाते थे, अब उनके सलाहकार बन गये। दीनता और दरिद्रता को, जिनसे उन्हे सच्ची सहानुभूति थी, देखकर अब वह आँखें मूँद लेते थे।

इसमें संदेह नहीं कि कुँवर साहब अब भी साम्यवाद के भक्त थे, किन्तु उन विचारों के प्रकट करने में वह पहले की-सी स्वतंत्रता न थी। विचार अब व्यवहार से डरता था। उन्हें कथन को कार्य-रुप में परिणत करने का अवसर प्राप्त था; पर अब कार्य-क्षेत्र कठिनाइयों से घिरा हुआ जान पड़ता था। बेगार के वह जानी दुश्मन थे; परन्तु अब बेगार को बन्द करना दुष्कर प्रतीत होता

था। स्वच्छता और स्वास्थ्यरक्षा के वह भक्त थे, किन्तु अब धन-व्यय न करके भी उन्हें ग्राम-वासियों की ही ओर से विरोध की शंका होती थी। असामियों से पोत उगाहने में कठोर बर्ताव को वह पाप समझते थे; मगर अब कठोरता के बिना काम चलता न जान पड़ता था। सारांश यह कि कितने ही सिद्धांत, जिन पर पहले उनकी श्रद्धा थी अब असंगत मालूम होते थे।

परन्तु आज जो दुःखजनक दृश्य बैंक के होते में नजर आये उन्होंने उनके दया-भाव को जाग्रत कर दिया। उस मनुष्य की-सी दशा हो गयी, जो नौका में बैठा सुरम्य तट की शोभा का आनन्द उठाता हुआ किसी श्मशान के सामने आ जाय, चिता पर लाशें जलती देखे, शोक-संतप्तों के करुण-क्रंदन को सुने ओर नाव से उतर कर उनके दुःख में सम्मिलित हो जाय।

रात के दस बज गये थे। कुँवर साहब पलंग पर लेटे थे। बैंक के हाते का दृश्य आँखों के सामने नाच रहा था। वही विलाप-ध्वनि कानों में आ रही थी। चित्त में प्रश्न हो रहा था, क्या इस विडम्बना का कारण मैं ही हूँ। मैंने तो वही किया, जिसका मुझे कानूनन अधिकार था। यह बैंक के संचालकों की भूल है, जो उन्होंने बिना जमानत के इतनी रकम कर्ज दे दी, लेनदारों को उन्हीं की गरदन नापनी चाहिए। मैं कोई खुदाई फौजदार नहीं हूँ, कि दूसरों की नादानी का फल भोगूँ। फिर विचार पलटा, मैं

नाहक इस होटल में ठहरा। चालीस रुपये प्रतिदिन देने पड़ेंगे। कोई चार सौ रुपये के मत्थे जायेगी। इतना सामान भी व्यर्थ ही लिया। क्या आवश्यकता थी? मखमली गद्दे की कुर्सियों या शीशे की सजावट से मेरा गौरव नहीं बढ़ सकता। कोई साधारण मकान पाँच रुपये पर ले लेता, तो क्या काम न चलता? मैं और साथ के सब आदमी आराम से रहते यही न होता कि लोग निंदा करते। इसकी क्या चिंता। जिन लोगों के मत्थे यह ठाट कर रहा हूँ, वे गरीब तो रोटियों को तरसते हैं। ये ही दस-बारह हजार रुपये लगा कर कुएँ बनवा देता, तो सहस्रों दीनों का भला होता। अब फिर लोगों के चकमे में न जाऊँगा। यह मोटरकार व्यर्थ हैं। मेरा समय इतना महँगा नही हैं कि घंटे-आध-घंटे की किफायत के लिए दो सौ रुपये का खर्च बढ़ा लूँ। फाका करनेवाले असामियों के सामने दौड़ना उनकी छातियों पर मूँग दलना है। माना कि वे रोब में आ जायेंगे, जिधर से निकल जाऊँगा, सैकड़ों स्त्रियों और बच्चे देखने के लिए खड़े हो जायेंगे, मगर केवल इतने ही दिखावे के लिए इतना खर्च बढ़ाना मूर्खता है। यदि दूसरे रईस ऐसा करते हैं तो करें, मैं उनकी बराबरी क्यों करूँ। अब तक दो हजार रुपये सालाने में मेरा निर्वाह हो जाता था। अब दो के बदले चार हजार बहुत हैं। फिर मुझे दूसरों की कमाई इस प्रकार उड़ाने का अधिकार ही क्या है? मैं कोई

उद्योग-धंधा, कोई कारोबार नहीं करता जिसका यह नफा हो। यदि मेरे पुरुषों ने हठधर्मी, जबरदस्ती से इलाका अपने हाथों में रख लिया, तो मुझे उनके लूट के धन में शरीक होने का क्या अधिकार हैं? जो लोग परिश्रम करते हैं, उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल मिलना चाहिए। राज्य उन्हें केवल दूसरों के कठोर हाथों से बचाता है। उसे इस सेवा का उचित मुआवजा मिलता चाहिए। बस, मैं तो राज्य की ओर से यह मुआवजा वसूल करने के लिए नियत हूँ। इसके सिवा इन गरीबों की कमाई में मेरा और कोई भाग नहीं। बेचारे दीन हैं, मूर्ख हैं, बेजबान हैं, इस समय हम इन्हें चाहे जितना सता लें। इन्हें अपने स्वत्व का ज्ञान नहीं। मैं अपने महत्व को नहीं समझता पर एक समय ऐसा अवश्य आयेगा, जब इनके मुँह में भी जबान होगी, इन्हें भी अपने अधिकारों का ज्ञान होगा। तब हमारी दशा बुरी होगी। ये भोग-विलास मुझे अपने आदमियों से दूर किये देते हैं। मेरी भलाई इसी में है कि इन्हीं में रहूँ, इन्हीं की भाँति जीवन-निर्वाह और इनकी सहायता करूँ। कोई छोटी-माटी रकम होती, तो कहता लाओ, जिस सिर पर बहुत भार है; उसी तरह यह भी सही। मूल के अलावा कई हजार रुपये सूद के अलग हुए। फिर महाजनों के भी तीन लाख रुपये हैं। रियासत की आमदनी डेढ़-दो लाख रुपये सालाना है, अधिक नहीं। मैं इतना बड़ा साहस करूँ भी, तो

किस बिरते पर? हाँ, यदि बैरागी हो जाऊँ तो सम्भव है, मेरे जीवन में — यदि कहीं अचानक मृत्यु न हो जाय तो यह झगड़ा पाक हो जाय। इस अग्नि में कूदना अपने सम्पूर्ण जीवन, अपनी उमंगों और अपनी आशाओं को भस्म करना है। आह! इन दिनों की प्रतीक्षा में मैंने क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे। पिता जी ने इस चिंता में प्राण-त्याग किया। यह शुभ मुहूर्त हमारी अँधेरी रात के लिए दूर का दीपक था। हम इसी के आसरे जीवित थे। सोते-जागते सदैव इसी की चर्चा रहती थी। इससे चित्त को कितना संतोष और कितना अभिमान था। भूखे रहने के दिन भी हमारे तेवर मैले ने होते थे। जब इतने धैर्य और संतोष के बाद अच्छे दिन आये तो उससे कैसे विमुख हुआ जाय। फिर अपनी ही चिंता तो नहीं, रियासत की उन्नति की कितनी ही स्कीमें सोच चुका हूँ। क्या अपनी इच्छाओं के साथ उन विचारों को भी त्याग दूँ। इस अभागी रानी ने मुझे बुरी तरह फँसाया, जब तक जीती रही, कभी चैन से न बैठने दिया। मरी तो मेरे सिर पर यह बला डाल दी। परन्तु मैं दरिद्रता से इतना डरता क्यों हूँ? कोई पाप नहीं है। यदि मेरा त्याग हजारों घरानों को कष्ट और दुरावस्था से बचाये तो मुझे उससे मुँह न मोड़ना चाहिए। केवल सुख से जीवन व्यतीत करना ही हमारा ध्येय नहीं है। हमारी मान-प्रतिष्ठा और कीर्ति सुख-भोग ही से तो नहीं हुआ करती। राजमंदिरों में रहने वालों

और विलास में रत राणाप्रताप को कौन जानता हैं? यह उनका आत्मा-समर्पण और कठिन व्रतपालन ही हैं, जिसने उन्हें हमारी जाति का सूर्य बना दिया है। श्रीरामचंद्र ने यदि अपना जीवन सुख-भोग में बिताया होता तो, आज हम उनका नाम भी न जानते। उनके आत्म बलिदान ने ही उन्हें अमर बना दिया। हमारी प्रतिष्ठा धन और विलास पर अवलम्बित नहीं है। मैं मोटर पर सवार हुआ तो क्या, और टट्टू पर चढ़ा तो क्या, होटल में ठहरा तो क्या और किसी मामूली घर ठहरा तो क्या। बहुत होगा, ताल्लुकदार लोग मेरी हँसी उड़ावेंगे। इसकी परवा नहीं। मैं तो हृदय से चाहता हूँ कि उन लोगों से अलग-अलग रहूँ। यदि इतनी निंदा से सैकड़ों परिवार का भला हो जाय, तो मैं मनुष्य नहीं, यदि प्रसन्नता से उसे सहन न करूँ। यदि अपने घोड़े और फिटन, सैर और शिकार, नौकर, चाकर और स्वार्थ-साधक हित-मित्रों से रहित होकर मैं सहस्रों अमीर-गरीब कुटुम्बों को, विधवाओं, अनाथों का भला कर सकूँ, तो मुझे इसमें कदापि विलम्ब न करना चाहिए। सहस्रों परिवारों के भाग्य इस समय मेरी मुट्ठी में हैं। मेरा सुखभोग उनके लिए विष और मेरा आत्म-संयम उनके लिए अमृत है। मैं अमृत बन सकता हूँ, विष क्यों बनूँ। और फिर इसे आत्म त्याग समझना मेरी भूल है। यह एक संयोग है कि मैं आज इस जायदाद का अधिकारी हूँ, मैंने उसे कमाया नहीं।

उसके लिए रक्त नहीं बहाया। न पसीना बहाया। यदि जायदाद मुझे न मिली होती तो मैं सहस्रों दीन भाइयों की भाँति आज जीविकोपार्जन में लगा रहता। मैं क्यों न भूल जाऊँ कि में इस राज्य का स्वामी हूँ। ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य की परख होती है। मैंने वर्षो पुस्तकावलोकन किया, वर्षो परोपकार के सिद्धान्तों का अनुयायी रहा। यदि इस समय उन सिद्धांतों को भूल जाऊँ, स्वार्थ को मनुष्यता और सदाचार से बढ़ने दूं तो, वस्तुतः यह मेरी अत्यन्त कायरता और स्वार्थपरता होगी। भला स्वार्थसाधन की शिक्षा के लिए गीता, मिल, एमर्सन और अरस्तू का शिष्य बनने की क्या आवश्यकता थी? यह पाठ तो मुझे अपने दूसरे भाइयों से यों ही मिल जाता। प्रचलित प्रथा से बढ़ कर और कौन गुरु था? साधारण लोगों की भाँति क्या मैं भी स्वार्थ के सामने सिर झुका दूँ। तो फिर विशेषता क्या रही? नहीं, मैं कानशंस (विवेक-बुद्धि) का ख़ून न करूँगा। जहां पुण्य कर सकता हूँ, पाप न करूँगा। परमात्मन्, तुम मेरी सहायता करो तुमने मुझे राजपूत-घर में जन्म दिया है। मेरे कर्म से इस महान् जाति को लज्जित न करो। नहीं, कदापि नहीं। यह गर्दन स्वार्थ के सम्मुख न झुकेगी। मैं राम, भीष्म और प्रताप का वंशज हूँ। शरीर-सेवक न बनूँगा।

कुँवर जगदीश सिंह को इस समय ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वह किसी ऊँचे मीनार पर चढ़ गये हैं। चित्त अभिमान से पूरित हो गया।

आँखें प्रकाशमान हो गयीं। परन्तु एक ही क्षण में इस उमंग का उतार होने लगा, ऊँचे मीनार के नीचे की ओर आँखें गयीं। सारा शरीर काँप उठा। उस मनुष्य की-सी दशा हो गयी, जो किसी नदी के तट पर बैठा उसमें कूदने का विचार कर रहा हो।

उन्होंने सोचा, क्या मेरे घर के लोग मुझसे सहमत होंगे? यदि मेरे कारण वे सहमत भी हो जायँ, तो क्या मुझे अधिकार हैं कि अपने साथ उनकी इच्छाओं का भी बलिदान करूँ? और-तो-और, माताजी कभी न मानेंगी, और कदाचित भाई लोग भी अस्वीकार करें। रियासत की हैसियत को देखते हुए वे कम हजार सालाना के हिस्सेदार हैं। और उनके भाग में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मैं केवल अपना मालिक हूँ, परन्तु में भी तो अकेला नहीं हूँ। सावित्री स्वयं चाहे मेरे साथ आग में कूदने को तैयार हो, किंतु अपने प्यारे पुत्र को इस आँच के समीप कदापि न आने देगी।

कुँवर महाशय और अधिक न सोच सके। वह एक विकल दशा में पलंग पर से उठ बैठे और कमरे में टहलने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने जंगले के बाहर की ओर झाँका और किवाड़ खोलकर बाहर चले गये। चारों ओर अंधेरा था। उनकी चिंताओं की भाँति सामने अपार और भयंकर गोमती नदी बह रही थी। वह धीरे-धीरे नदी के तट पर चले गये और देर तक वहाँ टहलते

रहे। आकुल हृदय को जल-तरंगों से प्रेम होता है। शायद इसलिए कि लहरें व्याकुल हैं। उन्होंने अपने चंचल चित्त को फिर एकाग्र किया। यदि रियासत की आमदनी से ये सब वृत्तियाँ दी जायँगी, तो ऋण का सूद निकलना भी कठिन होगा। मूल का तो कहना ही क्या! क्या आय में वृद्धि नहीं हो सकती? अभी अस्तबल में बीस घोड़े हैं। मेरे लिए एक काफी हैं। नौकरों की संख्या सौ से कम न होगी। मेरे लिए दो भी अधिक हैं। यह अनुचित हैं कि अपने ही भाइयों से नीच सेवाएँ करायी जायँ। उन मनुष्यों को मैं अपने सीर की जमीन दे दूँगा। सुख से खेती करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे। बगीचों के फल अब तक डालियों की भेंट हो जाते थे। अब उन्हें बेचूँगा, और सबसे बड़ी आमदनी तो बयाई की है। केवल महेशगंज के बाजार के दस हजार रुपये आते है। यह सब आमदनी महंत जी उड़ा जाते हैं। उनके लिए एक हजार रुपये साल होना चाहिए। अबकी इस बाजार का ठेका दूँगा। आठ हजार से कम न मिलेंगे। इन मदों से पचीस हजार रुपये की वार्षिक आय होगी। सावित्री और लल्ला (लड़के) के लिए एक हजार रुपये काफी हैं। मैं सावित्री से स्पष्ट कह दूँगा कि या तो एक हजार रुपये मासिक लो और मेरे साथ रहो या रियासत की आधी आमदनी ले लो, ओर मुझे छोड़ दो। रानी बनने की इच्छा हो, तो खुशी से बनो, परन्तु मैं राजा न बनूँगा।

अचानक कुँवर साहब के कानों में आवाज आयी--राम नाम सत्य है। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। कई मनुष्य एक लाश लिए आते थे। उन लोगों ने नदी किनारे चिता बनायी और उसमें आग लगा दी। दो स्त्रियाँ चिंघाड़ कर रो रही थीं। इस विलाप का कुँवर साहब के चित्त पर कुछ प्रभाव न पड़ा। वह चित्त में लज्जित हो रहे थे कि मैं कितना पाषाण-हृदय हूँ! एक दीन मनुष्य की लाश जल रही हैं, स्त्रियाँ रो रही हैं और मेरा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता! पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा हूँ। एकबारगी स्त्री ने रोते हुए कहा — 'हाय मेरे राजा! तुम्हें विष कैसे मीठा लगा?' यह हृदय-विदारक विलाप सुनते ही कुँवर साहब के चित्त में एक घाव-सा लग गया। करुण सजग हो गयी और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। कदाचित इसने विष-पान करके प्राण दिये हैं। हाय! उसे विष कैसे मीठा लगा! इसमें कितनी करुणा हैं, कितना दुःख, कितना आश्चर्य! विष तो कड़वा पदार्थ है। क्योंकर मीठा हो गया। कटु, विष के बदले जिसने अपने मधुर प्राण दे दिये उस पर कोई कड़ी मुसीबत पड़ी होगी। ऐसी ही दशा में विष मधुर हो सकता है। कुँवर साहब तड़प गये। कारुणिक शब्द बार-बार उनके हृदय में गूँजते थे। अब उनसे वहाँ न खड़ा रहा गया। वह उन आदमियों के पास आये, एक मनुष्य से पूछा — क्या बहुत दिनों से बीमार थे? इस मनुष्य ने कुँवर साहब की और आँसू-भरे नेत्रों से देखकर

कहा — नहीं साहब, कहाँ की बीमारी! अभी आज संध्या तक भली-भांति बातें कर रहे थे। मालूम नहीं, संध्या को क्या खा लिया की खून की कै होने लगी। जब तक वैद्य-राज के यहाँ जाय, तब तक आँखें उलट गयीं। नाड़ी छूट गयी। वैद्यराज ने आकर देखा, तो कहा — अब क्या हो सकता हैं? अभी कुल बाईस-तेईस वर्ष की अवस्था थी। ऐसा पट्ठा सारे लखनऊ में नहीं था।

कुँवर — कुछ मालूम हुआ, विष क्यों खाया?

उस मनुष्य ने संदेह-दृष्टि से देखकर कहा — महाशय, और तो कोई बात नहीं हुई। जब से यह बड़ा बैंक टूटा है, बहुत उदास रहते थे। कोई हजार रुपये बैंक में जमा किये थे। घी-दूध-मलाई की बड़ी दूकान थी। बिरादरी में मान था। वह सारी पूँजी डूब गयी। हम लोग रोकते रहे कि बैंक में रुपये मत जमा करो ; किन्तु होनहार यह थी। किसी की नहीं सुनी। आज सबेरे स्त्री से गहने माँगते थे कि गिरवी रखकर अहीरों के दूध के दाम दे दें। उससे बातों-बातों में झगड़ा हो गया। बस न जाने क्या खा लिया।

कुँवर साहब हृदय काँप उठा। तुरन्त ध्यान आया — शिवदास तो नहीं है। पूछा इनका नाम शिवदास तो नहीं था। उस मनुष्य

ने विस्मय से देख कर कहा — हाँ, यही नाम था। क्या आपसे जान-पहचान थी?

कुँवर — हाँ, हम और यह बहुत दिनों तक बरहल में साथ-साथ खेले थे। आज शाम को वह हमसे बैंक में मिले थे। यदि उन्होंने मुझसे तनिक भी चर्चा की होती, तो मैं यथाशक्ति उनकी सहायता करता। शोक?

उस मनुष्य ने तब ध्यानपूर्वक कुँवर साहब को देखा, और जाकर स्त्रियों से कहा — चुप हो जाओ, बरहल के महाराज आये है। इतना सुनते ही शिवदास की माता जोर-जोर से सिर पटकती और रोती हुई आकर कुँवर साहब के पैरों पर गिर पड़ी। उसके मुख से केवल ये शब्द निकले — 'बेटा, बचपन से जिसे तुम भैया कहा करते थे' — और गला रुँध गया।

कुँवर महाशय की आँखों से भी अश्रुपात हो रहा था। शिवदास की मूर्ति उनके सामने खड़ी यह कहती देख पड़ती थी कि तुमने मित्र होकर मेरे प्राण लिए।

भोर हो गया; परन्तु कुँवर साहब को नींद न आयी। जब से वह तीर से लौटे थे, उनके चित्त पर एक वैराग्य-सा छाया हुआ था। वह कारुणिक दृश्य उनके स्वार्थ के तर्कों को छिन्न-भिन्न किये देता था। सावित्री के विरोध, लल्ला के निराशा-युक्त हठ और माता के कुशब्दों का अब उन्हें लेशमात्र भी भय न था। सावित्री कुढ़ेगी कुढ़े, लल्ला को भी संग्राम के क्षेत्र में कूदना पड़ेगा, कोई चिंता नहीं! माता प्राण देने पर तत्पर होगी, क्या हर्ज है। मैं अपने स्त्री-पुत्र तथा हित-मित्रादि के लिए सहस्रों परिवारों की हत्या न करूँगा। हाय! शिवदास को जीवित रखने के लिए मैं ऐसी कितनी रियासतें छोड़ सकता हूँ। सावित्री को भूखों रहना पड़े, लल्ला को मजदूरी करनी पड़े, मुझे द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़े तब भी दूसरों का गला न दबाऊँगा। अब विलम्ब का अवसर नहीं। न जाने आगे यह दिवाला और क्या-क्या आपत्तियाँ खड़ी करे। मुझे इतना आगा-पीछा क्यों हा रहा है? यह केवल आत्म-निर्बलता हैं वरना यह कोई ऐसा बड़ा काम नहीं, जो किसी ने न किया हो। आये दिन लोग रुपये दान-पुण्य करते है। मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है। उससे क्यों मुँह मोड़ूँ। जो कुछ हो, जो चाहे सिर पड़े, इसकी क्या चिन्ता। कुँवर ने घंटी बजायी। एक क्षण में अरदली आँखें मलता हुआ आया।

कुँवर साहब बोले — अभी जेकब बारिस्टर के पास जाकर मेरा सलाम दो। जाग गये होंगे। कहना, जरूरी काम है। नहीं, यह पत्र लेते जाओ। मोटर तैयार करा लो।

## 8

मिस्टर जेकब ने कुँवर साहब को बहुत समझाया कि आप इस दलदल में न फँसें, नहीं तो निकलना कठिन होगा। मालूम नहीं, अभी कितनी ऐसी रकमें हैं जिनका आपको पता नहीं है, परन्तु चित्त में दृढ़ हो जानेवाला निश्चय चूने का फर्श है, जिसको आपत्ति के थपेड़े और भी पुष्ट कर देते हैं, कुँवर साहब अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। दूसरे दिन समाचार-पत्रों में छपवा दिया कि मृत महारानी पर जितना कर्ज हैं वह सकारते हैं और नियत समय के भीतर चुका देंगे।

इस विज्ञापन के छपते ही लखनऊ में खलबली पड़ गयी। बुद्धिमानों की सम्मति में यह कुँवर महाशय की नितांत भूल थी, और जो लोग कानून से अनभिज्ञ थे, उन्होंने सोचा कि इसमें अवश्य कोई भेद है। ऐसे बहुत कम मनुष्य थे, जिन्हें कुँवर साहब की नीयत की सचाई पर विश्वास आया हो परन्तु कुँवर साहब

का बखान चाहे न हुआ हो, आशीर्वाद की कमी न थी। बैंक के हजारों गरीब लेनदार सच्चे हृदय से उन्हे आशीर्वाद दे रहे थे।

एक सप्ताह तक कुँवर साहब को सिर उठाने का अवकाश न मिला। मिस्टर जेकब का विचार सत्य सिद्ध हुआ। देना प्रतिदिन बढ़ता जाता था। कितने ही प्रोनोट ऐसे मिले, जिनका उन्हें कुछ भी पता न था। जौहरियों और अन्य बड़े-बड़े दूकानदारों का लेना भी कम न था। अन्दाजन तेरह-चौदह लाख का था। मीजान बीस लाख तक पहुँचा। कुँवर साहब घबराये। शंका हुई — ऐसा न हो कि उन्हें भाइयों का गुजारा भी बन्द करना पड़े, जिसका उन्हें कोई अधिकार नहीं था। यहाँ तक कि सातवें दिन उन्होंने कई साहूकारों को बुरा-भला कहकर सामने से दूर किया। जहाँ ब्याज का दर अधिक थी, उस कम कराया और जिन रकमों की मीयादें बीत चुकी थी, उनसे इनकार कर दिया।

उन्हें साहूकारों की कठोरता पर क्रोध आता था। उनके विचार से महाजनों को डूबते धन का एक भाग पा कर ही सन्तोष कर लेना चाहिए था। इतनी खींचतान करने पर भी कुल उन्नीस लाख से कम न हुआ।

कुँवर साहब इन कामों से अवकाश पाकर एक दिन नेशनल बैंक की ओर जा निकले। बैंक खुला था। मृतक शरीर में प्राण आ

गये थे। लेनदारों की भीड़ लगी हुई थी। लोग प्रसन्नचित्त लौटे जा रहे थे। कुँवर साहब को देखते ही सैंकड़ों मनुष्य बड़े प्रेम से उनकी ओर दौड़े। किसी ने रोकर, किसी ने पैरों पर गिर कर और किसी ने सभ्यतापूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वह बैंक के कार्यकर्ताओं से भी मिले। लोगों ने कहा — इस विज्ञापन ने बैंक को जीवित कर दिया। बंगाली बाबू ने लाला साईंदास की आलोचना की — वह समझता था संसार में सब मनुष्य भलामानस है। हमको उपदेश करता था। अब उसकी आँख खुल गई है। अकेला घर में बैठा रहता है! किसी को मुँह नहीं दिखाता हम सुनता है, वह यहाँ से भाग जाना चाहता था। परन्तु बड़ा साहब बोला, भागेगा तो तुम्हारा ऊपर वारंट जारी कर देगा। अब साईंदास की जगह बंगाली बाबू मैनेजर हो गये थे।

इसके बाद कुँवर साहब बरहल आये। भाइयों ने यह वृत्तांत सुना, तो बिगड़े, अदालत की धमकी दी। माताजी को ऐसा धक्का पहुँचा कि वह उसी दिन बीमार होकर एक ही सप्ताह में इस संसार से विदा हो गयीं। सावित्री को भी चोट लगी; पर उसने केवल सन्तोष ही नहीं किया, पति की उदारता और त्याग की प्रंशसा भी की! रह गये लाल साहब। उन्होंने जब देखा कि अस्तबल से घोड़े निकले जाते हैं, हाथी मकनपुर के मेले में बिकने के लिए भेज

दिये गये हैं और कहार विदा किये जा रहे हैं, तो व्याकुल हो पिता से बोले — बाबूजी, यह सब नौकर, घोड़े, हाथी कहाँ जा रहे हैं?

कुँवर — एक राजा साहब के उत्सव में।

लालजी — कौन से राजा?

कुँवर — उनका नाम राजा दीनसिंह है।

लालजी — कहाँ रहते हैं?

कुँवर — दरिद्रपुर।

लालजी — तो हम भी जायेंगे।

कुँवर — तुम्हें भी ले चलेंगे; परन्तु इस बारात में पैदल चलने वालों का सम्मान सवारों से अधिक होगा।

लालजी — तो हम भी पैदल चलेंगे।

कुँवर — वहाँ परिश्रमी मनुष्य की प्रशंसा होती हैं।

लालजी — तो हम सबसे ज्यादा परिश्रम करेंगे।

कुँवर साहब के दोनों भाई पाँच-पाँच हजार रुपये गुजारा लेकर अलग हो गये। कुँवर साहब अपने और परिवार के लिए कठिनाई से एक हजार सालाना का प्रबन्ध कर सके, पर यह आमदनी एक रईस के लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं थी। अतिथि-अभ्यागत

प्रतिदिन टिके ही रहते थे। उन सब का भी सत्कार करना पड़ता था। बड़ी कठिनाई से निर्वाह होता था। इधर एक वर्ष से शिवदास के कुटुम्ब का भार भी सिर पर पड़ा, परन्तु कुँवर साहब कभी अपने निश्चय पर शोक नहीं करते। उन्हें कभी किसी ने चिंतित नहीं देखा। उनका मुख-मंडल धैर्य और सच्चे अभियान से सदैव प्रकाशित रहता है। साहित्य-प्रेम पहले से था। अब बागवानी से प्रेम हो गया है। अपने बाग में प्रातःकाल से शाम तक पौदों की देख-रेख किया करते हैं और लाल साहब तो पक्के कृषक होते दिखाई देते है। अभी नव-दास वर्ष से अधिक अवस्था नहीं है, लेकिन अंधेरे मुँह खेत पहुँच जाते हैं। खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती।

उनका घोड़ा मौजूद हैं; परन्तु महीनों उस पर नहीं चढ़ते। उनकी यह धुन देखकर कुँवर साहब प्रसन्न होते हैं और कहा करते हैं — रियासत के भविष्य की ओर से निश्चित हूँ। लाल साहब कभी इस पाठ को न भूलेंगे। घर में सम्पत्ति होती, तो सुख-भोग, शिकार, दुराचार से सिवा और क्या सूझता! सम्पत्ति बेचकर हमने परिश्रम और संतोष खरीदा, और यह सौदा बुरा नहीं। सावित्री इतनी संतोषी नहीं। वह कुँवर साहब के रोकने पर भी असामियों से छोटी-माटी भेंट ले लिया करती है और कुल-प्रथा नहीं तोड़ना चाहती।

# आत्माराम

वेदों-ग्राम में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रातः से संध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से वह बन्द हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गयी। वह नित्य-प्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजड़ा लिए कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती — 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,' लोग समझ जाते कि भोर हो गयी।

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थीं, दर्जनों नाती-पाते थे, लेकिन उसके बोझ को हल्का करने-वाला कोई न था। लड़के कहते — 'तब तक दादा जीते हैं, हम जीवन का आनन्द भोग ले, फिर तो यह ढोल गले पड़ेगी ही।' बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना

पड़ता। भोजन के समय उसके घर में साम्यवाद का ऐसा गगनभेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता, और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उनका व्यावसायिक जीवन और भी अशांतिकारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरों से कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएँ कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्य-शून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता था। ज्यों ही यह कलह शांत होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता — 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' इस मंत्र को जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती थी।

## 2

एक दिन संयोगवश किसी लड़के ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजड़े की ओर देखा, तो उसका कलेजा सन्न-से हो गया। तोता कहाँ गया। उसने फिर पिंजड़े को देखा, तोता गायब था। महादेव घबड़ा कर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसार में

कोई वस्तु अगर प्यारी थी, तो वह यही तोता। लड़के-बालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था। लड़कों की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था। बेटों से उसे प्रेम न था; इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे; बल्कि इसलिए कि उनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था। पड़ोसियों से उसे चिढ़ थी, इसलिए कि वे अँगीठी से आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो यही तोता था। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था में था जब मनुष्य को शांति भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा — 'आ आ', 'सत्त गुरुदत्त शिवदाता।' लेकिन गाँव और घर के लड़के एकत्र हो कर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे। ऊपर से कौओं ने काँव-काँव की रट लगायी? तोता उड़ा और गाँव से बाहर निकल कर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजड़ा लिये उसके पीछे दौड़ा, सो दौड़ा। लोगो को उसकी द्रुतिगामिता पर अचम्भा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गयी थी। किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे। उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढ़ाने में सभी को मजा आता था। किसी ने कंकड़ फेंके, किसी ने तालियाँ बजायीं। तोता फिर उड़ा और वहाँ से दूर आम के बाग में एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजड़ा लिये मेंढक की भाँति उचकता चला। बाग में पहुँचा तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ, तो फिर पिंजड़ा उठा कर कहने लगे — 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' तोता फुनगी से उतर कर नीचे की एक डाल पी आ बैठा, किन्तु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा, डर रहा है। वह पिंजड़े को छोड़ कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर गौर से देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजड़े के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोते के समीप आया और लपका कि तोते को पकड़ लें, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर आ बैठा।

शाम तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजड़े पर आ बैठता, कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठे अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता, और फिर उड़

जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमयी माया। यहाँ तक कि शाम हो गयी। माया और मोह का यह संग्राम अंधकार में विलीन हो गया।

## 3

रात हो गयी! चारों ओर निविड़ अंधकार छा गया। तोता न जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रात को तोता कही उड़कर नहीं जा सकता, और न पिंजड़े ही में आ सकता हैं, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था। आज उसने दिन भर कुछ नहीं खाया। रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की बूँद भी उसके कंठ में न गयी, लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास! तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था। वह दिन-रात काम करता था; इसलिए कि यह उसकी अन्त:प्रेरणा थी; जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी। इन कामों मे उसे अपनी सजीवता का लेश-मात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था, जो उसे चेतना की याद दिलाता था। उसका हाथ से जाना जीव का देह-त्याग करना था।

महादेव दिन-भर का भूख-प्यासा, थका-माँदा, रह-रह कर झपकियाँ ले लेता था; किन्तु एक क्षण में फिर चौंक कर आँखें खोल देता और उस विस्तृत अंधकार में उसकी आवाज सुनायी देती — 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।'

आधी रात गुजर गयी थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौका। देखा, एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है, और कई आदमी बैठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। वे सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला — 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला गया; किन्तु जिस प्रकार बंदूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं उसी प्रकार उसे आते देख सब-के-सब उठ कर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा — 'ठहरो-ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं। वह जोर से चिल्ला उठा — 'चोर-चोर, पकड़ो-पकड़ो!' चोरों ने पीछे फिर कर न देखा।

महादेव दीपक के पास गया, तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला जो मोर्चे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलसे मे हाथ डाला, तो मोहरें थीं। उसने एक मोहरे बाहर निकाली और दीपक के उजाले में देखा। हाँ मोहर थी। उसने

तुरन्त कलसा उठा लिया, और दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिप कर बैठ रहा। साह से चोर बन गया।

उसे फिर शंका हुई, ऐसा न हो, चोर लौट आवें, और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहर कमर में बाँधी, फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की की मिटटी हटा कर कई गड्ढे बनाये, उन्हें मोहरों से भर कर मिटटी से ढँक दिया।

**4**

महादेव के अन्तर्नेत्रों के सामने अब एक दूसरा जगत् था, चिंताओं और कल्पना से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था; पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरु कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गयी, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्रित हो गयीं। तब तीर्थ-यात्रा करने चले, और वहाँ से लौट कर बड़े समारोह से यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक बाग भी लग गया और वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा। साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायँ, तो मैं भागूँगा क्योंकर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया। और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था, उसके पैरो में पर लग गये हैं। चिंता शांत हो गयी। इन्हीं कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गयी। उषा का आगमन हुआ, हवा जागी, चिड़ियाँ गाने लगीं। सहसा महादेव के कानों में आवाज आयी —

‘सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लगा।’

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था। दिन में सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुँह से निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी भी उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से राग निकलता हैं, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था। निरर्थक और प्रभाव-शून्य। तब उसका हृदय-रूपी वृक्ष पत्र-पल्लव विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न कर सकती थी; पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आयी थीं। इन वायु-प्रवाह से झूम उठा, गुंजित हो गया।

अरुणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश में डूबी हुई थी। उसी समय तोता पैरों को जोड़े हुए ऊँची डाल से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे और आ कर पिंजड़े में बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित हो कर दौड़ा और पिंजड़े को उठा कर बोला

— आओ आत्माराम तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया। अब तुम्हें चाँदी के पिंजड़े में रखूंगा और सोने से मढ़ दूँगा।' उसके रोम-रोम के परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु तुम कितने दयावान् हो! यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ पापी, पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था! इस पवित्र भावों से आत्मा विह्वल हो गयी! वह अनुरक्त हो कर कह उठा —

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा।'

उसने एक हाथ में पिंजड़ा लटकाया, बगल में कलसा दबाया और घर चला।

## 5

महादेव घर पहुँचा, तो अभी कुछ अंधेरा था। रास्ते में एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेंट न हुई, और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलसे को एक नाद में छिपा दिया, और कोयले से अच्छी तरह ढँक कर अपनी कोठरी में रख आया। जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुरोहित के घर पहुँचा।

पुरोहित पूजा पर बैठे सोच रहे थे — कल ही मुकदमें की पेशी हैं और अभी तक हाथ में कौड़ी भी नहीं — यजमानों में कोई साँस भी लेता। इतने में महादेव ने पालागन की। पंडित जी ने मुँह फेर लिया। यह अमंगलमूर्ति कहाँ से आ पहुँची, मालूम नहीं, दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट हो कर पूछा — क्या है जी, क्या कहते हो। जानते नहीं, हम इस समय पूजा पर रहते हैं।

महादेव ने कहा — महाराज, आज मेरे यहाँ सत्यनारायण की कथा है।

पुरोहित जी विस्मित हो गये। कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा का होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना। पूछा — आज क्या है?

महादेव बोला — कुछ नहीं, ऐसा इच्छा हुई कि आज भगवान की कथा सुन लूँ।

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। वेदों के निकटवर्ती गाँवों में सुपारी फिरी। कथा के उपरांत भोज का भी नेवता था। जो सुनता आश्चर्य करता आज रेत में दूब कैसे जमी।

संध्या समय जब सब लोग जमा हो, और पंडित जी अपने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर में बोला —

भाइयों मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गयी। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दी, कितने खरे को खोटा किया; पर अब भगवान ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहते हैं। मैं आप सब भाइयों से ललकार कर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ निकलता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल का खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो, तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिए, कल से एक महीने तक, जब जी चाहे, आये और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखी का काम नहीं।

सब लोग सन्नाटे में आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिला कर बोला — हम कहते न थे।

किसी ने अविश्वास से कहा — क्या खा कर भरेगा, हजारों को टोटल हो जायगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की — और जो लोग सुरधाम चले गये।

महादेव ने उत्तर दिया — उसके घर वाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया। किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे,

गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्राय: लोगों को याद भी न था कि उन्हें महादेव से क्या पाना हैं, और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो जाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हीं वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहित जी बोले — तुम्हें याद हैं, मैंने एक कंठा बनाने के लिए सोना दिया था, तुमने कई माशे तौल में उड़ा दिये थे।

महादेव — हाँ, याद हैं, आपका कितना नुकसान हुआ होगा।

पुरोहित — पचास रुपये से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहित जी के सामने रख दीं।

पुरोहितजी की लोलुपता पर टीकाएँ होने लगीं। यह बेईमानी हैं, बहुत हो, तो दो-चार रुपये का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से पचास रुपये ऐंठ लिए। नारायण का भी डर नहीं। बनने को पंडित, पर नियत ऐसी खराब! राम-राम!!

लोगों को महादेव पर एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घंटा बीत गया पर उन सहस्रों मनुष्यों में से एक भी खड़ा न हुआ। तब महादेव ने फिर कहाँ — मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब

भूल गये हैं, इसलिए आज कथा होने दीजिए। मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे तीर्थ यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोरों के भय से नींद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहाँ तक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब लेने न आया। अब महादेव को ज्ञान हुआ कि संसार में कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार हैं। अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा हैं और अच्छे के लिए अच्छा।

## 6

इस घटना को हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं। आप वेदों जाइये, तो दूर ही से एक सुनहला कलस दिखायी देता है। वह ठाकुरद्वारे का कलस है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब हैं, जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियाँ कोई नहीं पकड़ता;

तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति-चिन्ह है, उसके सम्बन्ध में विभिन्न किंवदंतियाँ प्रचलित है। कोई कहता हैं, वह रत्नजटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता, वह 'सत्त गुरुदत्त' कहता हुआ अन्तर्ध्यान हो गया, पर यथार्थ यह हैं कि उस पक्षी-रूपी चंद्र को किसी बिल्ली-रूपी राहु ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है —

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा।'

महादेव के विषय में भी कितनी ही जन-श्रुतियाँ है। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई संन्यासियों के साथ हिमालय चला गया, और वहाँ से लौट कर न आया। उसका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

# दुर्गा का मन्दिर

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़ने में मग्न थे, और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करने में। श्यामा चिल्लाती, कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नू रोता था कि श्यामा ने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथ ने क्रुद्ध होकर भामा से कहा — तुम इन दुष्टों को यहाँ से हटाती हो कि नहीं? नहीं तो मैं एक-एक की खबर लेता हूँ।

भामा चूल्हे में आग जला रही थी, बोली — अरे तो अब क्या संध्या को भी पढ़ते ही रहोगे? जरा दम तो ले लो।

ब्रजनाथ — उठा तो न जाएगा; बैठी-बैठी वहीं से कानून बघारोगी! अभी एक-आध को पटक दूँगा, तो वहीं से गरजती हुई आओगी कि हाय-हाय! बच्चे को मार डाला!

भामा — तो मैं कुछ बैठी या सोयी तो नहीं हूँ। जरा एक घड़ी तुम्हीं लड़कों को बहलाओगे, तो क्या होगा! कुछ मैंने ही तो उनकी नौकरी नहीं लिखायी!

ब्रजनाथ से कोई जवाब न देते बन पड़ा। क्रोध पानी के समान बहाव का मार्ग न पाकर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि

ब्रजनाथ नैतिक सिद्धांतों के ज्ञाता थे; पर उनके पालन में इस समय कुशल न दिखायी दी। मुद्दई और मुद्दालेह, दोनों को एक ही लाठी हाँका, और दोनों को रोते-चिल्लाते छोड़ कानून का ग्रंथ बगल में दबा कालेज-पार्क की राह ली।

## 2

सावन का महीना था। आज कई दिन के बाद बादल हटे थे। हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादर ओढ़े खड़े थे। मृदु समीर सावन का राग गाता था, और बगुले डालियों पर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंच पर आ बैठे और किताब खोली। लेकिन इस ग्रंथ को अपेक्षा प्रकृति-ग्रंथ का अवलोकन अधिक चित्ताकर्षक था। कभी आसमान को पढ़ते थे, कभी पत्तियों को, कभी छविमयी हरियाली को और कभी सामने मैदान में खेलते हुए लड़कों को।

एकाएक उन्हें सामने घास पर कागज की एक पुड़िया दिखायी दी। माया ने जिज्ञासा की — आड़ में चलो, देखें इसमें क्या है।

बुद्धि ने कहा — तुमसे मतलब? पड़ी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रूपी माया की जीत हुई। ब्रजनाथ ने उठ कर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसी के पैसे पुड़िया में लिपटे गिर पड़े हैं। खोल कर देखा; सावरेन थे। गिना, पुरे आठ निकले। कुतूहल की सीमा न रही।

ब्रजनाथ की छाती धड़कने लगी। आठों सावरेन हाथ में लिये सोचने लगे, इन्हें क्या करूँ? अगर यहीं रख दूँ, तो न जाने किसकी नजर पड़े; न मालूम कौन उठा ले जाय! नहीं यहाँ रखना उचित नहीं। चलूँ थाने में इत्तला कर दूँ और ये सावरेन थानेदार को सौंप दूँ। जिसके होंगे वह आप ले जायगा या अगर उसको न भी मिलें, तो मुझ पर कोई दोष न रहेगा, मैं तो अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊँगा।

माया ने परदे की आड़ से मंत्र मारना शुरु किया। वह थाने नहीं गये, सोचा — चलूँ भामा से एक दिल्लगी करूँ। भोजन तैयार होगा। कल इतमीनान से थाने जाऊँगा।

भामा ने सावरेन देखे, तो हृदय मे एक गुदगुदी-सी हुई। पूछा किसकी है?

ब्रजनाथ — मेरी।

भामा — चलो, कहीं हो न!

ब्रजनाथ — पड़ी मिली है।

भामा — झूठ बात। ऐसे ही भाग्य के बली हो, तो सच बताओ कहाँ मिली? किसकी है?

ब्रजनाथ — सच कहता हूँ, पड़ी मिली है।

भामा — मेरी कसम?

ब्रजनाथ — तुम्हारी कसम।

भामा गिन्नियों को पति के हाथ से छीनने की चेष्टा करने लगी।

ब्रजनाथ के कहा — क्यों छीनती हो?

भामा — लाओ, मैं अपने पास रख लूँ।

ब्रजनाथ — रहने दो, मैं इसकी इत्तला करने थाने जाता हूँ।

भामा का मुख मलिन हो गया। बोली — पड़े हुए धन की क्या इत्तला?

ब्रजनाथ — हाँ, और क्या, इन आठ गिन्नियों के लिए ईमान बिगाडूँगा?

भामा — अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे, तो आने में देर होगी।

ब्रजनाथ ने भी सोचा, यही अच्छा। थानेवाले रात को तो कोई कार्रवाई करेंगे नहीं। जब अशर्फियों को पड़ा रहना है, तब जेसे थाना वैसे मेरा घर।

गिन्नियाँ संदूक में रख दीं। खा-पीकर लेटे, तो भामा ने हँस कर कहा — आया धन क्यों छोड़ते हो? लाओ, मैं अपने लिए एक गुलूबन्द बनवा लूँ, बहुत दिनों से जी तरस रहा है।

माया ने इस समय हास्य का रुप धारण किया।

ब्रजनाथ ने तिरस्कार करके कहा — गुलूबन्द की लालसा में गले में फाँसी लगाना चाहती हो क्या?

## 3

प्रातःकाल ब्रजनाथ थाने के लिए तैयार हुए। कानून का एक लेक्चर छूट जायेगा, कोई हरज नहीं। वह इलाहाबाद के हाईकोर्ट में अनुवादक थे। नौकरी में उन्नति की आशा न देख कर साल भर से वकालत की तैयारी में मग्न थे; लेकिन अभी कपड़े पहन ही रहे थे कि उनके एक मित्र मुंशी गोरेलाल आकर बैठ गये, और अपनी पारिवारिक दुश्चिंताओं की विस्मृति की रामकहानी

सुना कर अत्यंत विनीत भाव से बोले — भाई साहब, इस समय मैं इन झंझटों मे ऐसा फँस गया हूँ कि बुद्धि कुछ काम नहीं करती। तुम बड़े आदमी हो। इस समय कुछ सहायता करो। ज्यादा नहीं तीस रुपये दे दो। किसी न किसी तरह काम चला लूँगा, आज तीस तारीख है। कल शाम को तुम्हें रुपये मिल जायँगे।

ब्रजनाथ बड़े आदमी तो न थे; किन्तु बड़प्पन की हवा बाँध रखी थी। यह मिथ्याभिमान उनके स्वभाव की एक दुर्बलता थी। केवल अपने वैभव का प्रभाव डालने के लिए ही वह बहुधा मित्रों की छोटी-मोटी आवश्यकताओं पर अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को निछावर कर दिया करत थे, लेकिन भामा को इस विषय में उनसे सहानुभूति न थी, इसलिए जब ब्रजनाथ पर इस प्रकार का संकट आ पड़ता था, तब थोड़ी देर के लिए उनकी पारिवारिक शांति अवश्य नष्ट हो जाती थी। उनमें इनकार करने या टालने की हिम्मत न थी।

वह सकुचाते हुए भामा के पास गये और बोले — तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होंगे? मुंशी गोरेलाल माँग रहे है।

भामा ने रुखाई से रहा — मेरे पास तो रुपये नहीं।

ब्रजनाथ — होंगे तो जरूर, बहाना करती हो।

भामा — अच्छा, बहाना ही सही।

ब्रजनाथ — तो मैं उनसे क्या कह दूँ!

भामा — कह दो घर में रुपये नहीं हैं, तुमसे न कहते बने, तो मैं पर्दे की आड़ से कह दूँ।

ब्रजनाथ — कहने को तो मैं कह दूँ, लेकिन उन्हें विश्वास न आयेगा। समझेंगे, बहाना कर रहे हैं।

भामा --समझेंगे; तो समझा करें।

ब्रजनाथ — मुझसे ऐसी बमुरौवती नहीं हो सकती। रात-दिन का साथ ठहरा, कैसे इनकार करूँ?

भामा — अच्छा, तो जो मन में आवे, सो करो। मैं एक बार कह चुकी, मेरे पास रुपये नहीं।

ब्रजनाथ मन में बहुत खिन्न हुए। उन्हें विश्वास था कि भामा के पास रुपये है; लेकिन केवल मुझे लज्जित करने के लिए इनकार कर रही है। दुराग्रह ने संकल्प को दृढ़ कर दिया। संदूक से दो गिन्नियाँ निकालीं और गोरेलाल को देकर बोले — भाई, कल शाम को कचहरी से आते ही रुपये दे जाना। ये एक आदमी की अमानत हैं, मैं इसी समय देने जा रहा था — यदि कल रुपये न

पहुँचे तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा; कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

गोरेलाल ने मन में कहा — अमानत स्त्री के सिवा और किसकी होगी, और गिन्नियाँ जेब मे रख कर घर की राह ली।

## 4

आज पहली तारीख की संध्या है। ब्रजनाथ दरवाजे पर बैठे गोरेलाल का इंतजार कर रहे है।

पाँच बज गये, गोरेलाल अभी तक नहीं आये। ब्रजनाथ की आँखें रास्ते की तरफ लगी हुई थीं। हाथ में एक पत्र था; लेकिन पढ़ने में जी नहीं लगता था। हर तीसरे मिनट रास्ते की ओर देखने लगते थे; लेकिन सोचते थे — आज वेतन मिलने का दिन है। इसी कारण आने में देर हो रही है। आते ही होंगे। छः बजे, गोरे लाल का पता नहीं। कचहरी के कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथ को कोई बार धोखा हुआ। वह आ रहे हैं। जरूर वही हैं। वैसी ही अचानक है। वैसे ही टोपी है। चाल भी वही है। हाँ, वही हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदय से एक बोझा-सा उतरता मालूम हुआ; लेकिन निकट आने पर ज्ञात हुआ

कि कोई और है। आशा की कल्पित मूर्ति दुराशा में बदल गयी।

ब्रजनाथ का चित्त खिन्न होने लगा। वह एक बार कुरसी से उठे। बरामदे की चौखट पर खड़े हो, सड़क पर दोनों तरफ निगाह दौड़ायी। कहीं पता नहीं। दो-तीन बार दूर से आते हुए इक्कों को देख कर गोरेलाल का भ्रम हुआ। आकांक्षा की प्रबलता!

सात बजे; चिराग जल गये। सड़क पर अँधेरा छाने लगा। ब्रजनाथ सड़क पर उद्विग्न भाव से टहलने लगे। इरादा हुआ, गोरेलाल के घर चलूँ, उधर कदम बढ़ाये; लेकिन हृदय काँप रहा था कि कहीं वह रास्ते में आते हुए न मिल जायँ, तो समझें कि थोड़े-से रुपयों के लिए इतने व्याकुल हो गये। थोड़ी ही दूर गये कि किसी को आते देखा। भ्रम हुआ, गोरेलाल है, मुड़े और सीधे बरामदे में आकर दम लिया, लेकिन फिर वही धोखा! फिर वही भ्रांति! तब सोचने लगे कि इतनी देर क्यों हो रही हैं? क्या अभी तक वह कचहरी से न आये होंगे! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तर-वाले मुद्दत हुई, निकल गये। बस दो बातें हो सकती हैं, या तो उन्होंने कल आने का निश्चय कर लिया, समझे होंगे, रात को कौन जाय, या जान-बूझ कर बैठे होंगे, देना न चाहते होंगे, उस समय उनको गरज थी, इस समय मुझे गरज है। मैं ही किसी को क्यों न भेज दूँ? लेकिन किसे भेजूँ? मुन्नू जा सकता है।

सड़क ही पर मकान है। यह सोच कर कमरे में गये, लैप जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर आँखें द्वार ही की ओर लगी हुई थी। अकस्मात् किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। परन्तु पत्र को एक किताब के नीचे दबा लिया और बरामद में चले आये। देखा, पड़ोस का एक कुँजड़ा तार पढ़ाने आया है। उससे बोले — भाई, इस समय फुरसत नहीं हैं; थोड़ी देर में आना।

उसने कहा — बाबू जी, घर भर के आदमी घबराये हैं, जरा एक निगाह देख लीजिए। निदान ब्रजनाथ ने झुँझला कर उसके हाथ से तार ले लिया, और सरसरी नजर से देख कर बोले — कलकत्ते से आया है। माल नहीं पहुँचा।

कुँजड़े ने डरते-डरते कहा — बाबू जी, इतना और देख लीजिए किसने भेजा है।

इस पर ब्रजनाथ ने तार फेंक दिया और बोले — मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

आठ बज गये। ब्रजनाथ को निराशा होने लगी — मुन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मन में निश्चय किया, आज ही जाना चाहिए, बला से बुरा मानेंगे। इसकी कहाँ तक चिंता करुँ स्पष्ट कह दूँगा मेरे रुपये दे दो। भलमानसी भलेमानसों से निभाई जा सकती है। ऐसे धूर्तों के साथ भलमनसी का व्यवहार करना

मूर्खता हैं अचकन पहनी; घर में जाकर माया से कहा — जरा एक काम से बाहर जाता हूँ, किवाड़ें बन्द कर लो।

चलने को तो चले; लेकिन पग-पग पर रुकते जाते थे। गोरेलाल का घर दूर से दिखाई दिया; लैंप जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे चल कर क्या कहूँगा? कहीं उन्होंने जाते-जाते रुपए निकाल कर दे दिये, और देर के लिए क्षमा माँगी तो मुझे बड़ी झेंप होगी। वह मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्यहीन समझेंगे। नहीं, रुपयों की बातचीत करूँ? कहूँगा — भाई घर में बड़ी देर से पेट दर्द कर रहा है। तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नहीं है मगर नहीं, यह बहाना कुछ भद्दा-सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। ऊंह! इस झंझट की जरुरत ही क्या है। वह मुझे देखकर आप ही समझ जायेंगे। इस विषय में बातचीत की कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़बुन में आगे बढ़ते चले जाते थे जैसे नदी में लहरें चाहे किसी ओर चलें, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

गोरेलाल का घर आ गया। द्वार बन्द था। ब्रजनाथ को उन्हें पुकारने का साहस न हुआ, समझे खाना खा रहे होंगे। दरवाजे के सामने से निकले, और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मील तक चले गए। नौ बजने की आवाज कान में आयी। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पड़े; लेकिन द्वार पर पहुँचे तो, अंधेरा

था। वह आशा-रूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनट तक दुविधा में खड़े रहे। क्या करूँ। अभी बहुत सबेरा है। इतनी जल्दी थोड़े ही सो गए होंगे? दबे पाँव बरामदे पर चढ़े। द्वार पर कान लगा कर सुना, चारों ओर ताक रहे थे कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीत की भनक कान में पड़ी। ध्यान से सुना। स्त्री कह रही थी — रुपये तो सब उठ गए, ब्रजनाथ को कहाँ से दोगे? गोरेलाल ने उत्तर दिया — ऐसी कौन सी उतावली है, फिर दे देंगे। और दरख्वास्त दे दी है, कल मंजूर हो ही जायगी। तीन महीने के बाद लौटेंगे तब देखा जायगा।

ब्रजनाथ को ऐसा जान पड़ा मानों मुँह पर किसी न तमाचा मार दिया।

क्रोध और नैराश्य से भरे हुए बरामदे में उतर आए। घर चले तो सीधे कदम न पड़ते थे, जैसे कोई दिन-भर का थका-माँदा पथिक हो।

**5**

ब्रजनाथ रात-भर करवटें बदलते रहे। कभी गोरेलाल की धूर्तता पर क्रोध आता था, कभी अपनी सरलता पर; मालूम नहीं; किस

गरीब के रुपये हैं। उस पर क्या बीती होगी! लेकिन अब क्रोध या खेद रो क्या लाभ? सोचने लगे — रुपये कहाँ से आवेंगे? भामा पहले ही इनकार कर चुकी है, वेतन में इतनी गुंजाइश नहीं। दस-पाँच रुपये की बात होती तो कतर ब्योंत करता। तो क्या करू? किसी से उधार लूँ। मगर मुझे कौन देगा। आज तक किसी से माँगने का संयोग नहीं पड़ा, और अपना कोई ऐसा मित्र है भी नहीं। जो लोग हैं, मुझी को सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हाँ, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करने में परिश्रम करूँ, तो रुपये मिल सकते हैं। कम-से-कम एक मास का कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकों के मारे दर भी तो गिर गयी है! हा निर्दयी! तूने बड़ी दगा की। न जाने किस जन्म का बैर चुकाया है। कहीं का न रखा!

दूसरे दिन ब्रजनाथ को रुपयों की धुन सवार हुई। सबेरे कानून के लेक्चर में सम्मिलित होते, संध्या को कचहरी से तजवीज़ों का पुलिंदा घर लाते और आधी रात बैठे अनुवाद किया करते। सिर उठाने की मुहलत न मिलती! कभी एक-दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता तब विवश होकर चारपाई पर पड़े रहते।

लेकिन इतने परिश्रम का अभ्यास न होने के कारण कभी-कभी सिर में दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रिया में विघ्न पड़ जाता,

कभी ज्वर चढ़ आता। तिस पर भी वह मशीन की तरह काम में लगे रहते। भाभा कभी-कभी झुँझलाकर कहती — अजी, लेट भी रहो; बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे जैसे दस-पाँच आदमी और होते, तो संसार का काम ही बन्द हो जाता। ब्रजनाथ इस बाधाकारी व्यंग का उत्तर न देते, दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहाँ तक कि तीन सप्ताह बीत गये और पचीस रुपये हाथ आ गए। ब्रजनाथ सोचते थे — दो तीन दिन में बेड़ा पार है; लेकिन इक्कीसवें दिन उन्हें प्रचंड ज्वर चढ़ आया और तीन दिन तक न उतरा। छुट्टी लेनी पड़ी, शय्यासेवी बन गए। भादों का महीना था। भाभा ने समझा, पित्त का, प्रकोप है; लेकिन जब एक सप्ताह तक डाक्टर की औषधि सेवन करने पर भी ज्वर न उतरा तब घबरायी। ब्रजनाथ प्राय: ज्वर में बक-झक भी करने लगते। भाभा सुनकर डर के मारे कमरे में से भाग जाती। बच्चों को पकड़ कर दूसरे कमरे में बन्द कर देती। अब उसे शंका होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयों के कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा है! कौन जाने, रुपयेवाले ने कुछ कर धर दिया हो! जरूर यही बात है, नहीं तो औषधि से लाभ क्यों नहीं होता?

संकट पड़ने पर हम धर्म-भीरु हो जाते हैं, औषधियों से निराश होकर देवताओं की शरण लेते हैं। भाभा ने भी देवताओं की शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि का कठिन व्रत शुरू किया।

आठ दिन पूरे हो गए। अंतिम दिन आया। प्रभात का समय था। भाभा ने ब्रजनाथ को दवा पिलाई और दोनों बालकों को लेकर दुर्गा जी की पूजा करने के लिए चली। उसका हृदय आराध्य देवी के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण था। मन्दिर के आँगन में पहुँची। उपासक आसनों पर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगर की सुगंध उड़ रही थी। उसने मन्दिर में प्रवेश किया। सामने दुर्गा की विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविंद पर एक विलक्षण दीप्त झलक रही थी। बड़े-बड़े उज्जवल नेत्रों से प्रभा की किरणें छिटक रही थीं। पवित्रता का एक समाँ-सा छाया हुआ था। भाभा इस दीप्तवर्ण मूर्ति के सम्मुख साधी आँखों से ताक न सकी। उसके अन्त:करण में एक निर्मल, विशुद्ध भाव-पूर्ण भय का उदय हो आया। उसने आँखें बन्द कर लीं। घुटनों के बल बैठ गयी, और हाथ जोड़ कर करुण स्वर से बोली — माता, मुझ पर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों देवी मुस्कराई। उसे उन दिव्य नेत्रों से एक ज्योति-सी निकल कर अपने हृदय में आती हुई मालूम हुई।

उसके कानों में देवी के मुँह से निकले ये शब्द सुनाई दिए — पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।

भामा उठ बैठी। उसकी आँखों में निर्मल भक्ति का आभास झलक रहा था। मुखमंडल से पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवी ने कदाचित् उसे अपनी प्रभा के रंग में डूबा दिया था।

इतने में दूसरी एक स्त्री आई। उसके उज्जवल केश बिखरे और मुरझाए हुए चेहरे के दोनों ओर लटक रहे थे। शरीर पर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथ में चूड़ियों के सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्य की साक्षात् मूर्ति मालूम होती थी। उसने भी देवी के सामने सिर झुकाया और दोनों हाथों से आँचल फैला कर बोली — देवी, जिसने मेरा धन लिया हो, उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराब की चोट खाकर थरथरा उठता है, उसी प्रकार भाभा का हृदय अनिष्ट के भय से थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शर के समान उसके कलेजे में चुभ गए। उसने देवी की ओर कातर नेत्रों से देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयंकर था, नेत्रों से भीषण ज्वाला निकल रही थी। भाभा के अन्त:करण में सर्वथा आकाश से, मंदिर के सामने वाले वृक्षों से; मंदिर के स्तम्भों से, सिंहासन के ऊपर जलते हुए दीपक से और देवी के विकराल मुँह

से ये शब्द निकलकर गूँजने लगे — पराया धन लौटा दे, नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।

भाभा खड़ी हो गई और उस वृद्धा से बोली — क्यों माता, तुम्हारा धन किसी ने ले लिया है?

वृद्धा ने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानों डूबते को तिनके का सहारा मिला। बोली — हाँ बेटी!

भामा — कितने दिन हुए?

वृद्धा — कोई डेढ़ महीना।

भामा — कितने रुपये थे?

वृद्धा — पूरे एक सौ बीस।

भामा — कैसे खोए?

वृद्धा — क्या जाने कहीं गिर गए। मेरे स्वामी पलटन में नौकर थे। आज कई बरस हुए, वह परलोक सिधारे। अब मुझे सरकार से आठ रुपए साल पेन्शन मिलती है। अबकी दो साल की पेन्शन एक साथ ही मिली थी। खजाने से रुपए लेकर आ रही थी। मालूम नहीं, कब और कहाँ गिर पड़े। आठ गिन्नियाँ थीं।

भामा — अगर वे तुम्हें मिल जायँ तो क्या दोगी।

वृद्धा — अधिक नहीं, उसमें से पचास रुपए दे दूँगी।

भामा — रुपये क्या होंगे, कोई उससे अच्छी चीज दो।

वृद्धा — बेटी और क्या दूँ जब तक जीऊँगी, तुम्हारा यश गाऊँगी।

भामा — नहीं, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं!

वृद्धा — बेटी, इसके सिवा मेरे पास क्या है?

भामा — मुझे आशीर्वाद दो। मेरे पति बीमार हैं, वह अच्छे हो जायँ।

वृद्धा — क्या उन्हीं को रुपये मिले हैं?

भामा — हाँ, वह उसी दिन से तुम्हें खोज रहे हैं।

वृद्धा घुटनों के बल बैठ गई, और आँचल फैला कर कम्पित स्वर से बोली — देवी! इनका कल्याण करो।

भामा ने फिर देवी की ओर सशंक दृष्टि से देखा। उनके दिव्य रूप पर प्रेम का प्रकाश था। आँखों में दया की आनन्ददायिनी झलक थी। उस समय भामा के अन्त:करण में कहीं स्वर्गलोक से यह ध्वनि सुनाई दी — जा तेरा कल्याण होगा।

संध्या का समय है। भामा ब्रजनाथ के साथ इक्के पर बैठी तुलसी के घर, उसकी थाती लौटाने जा रही है। ब्रजनाथ के बड़े परिश्रम की कमायी जो डाक्टर की भेंट हो चुकी है, लेकिन भामा ने एक पड़ोसी के हाथ अपने कानों के झुमके बेचकर रुपये जुटाए हैं। जिस समय झुमके बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हें बेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

जब ब्रजनाथ ने आठों गिन्नियाँ उसे दिखाई थीं, उसके हृदय में एक गुदगुदी-सी हुई थी; लेकिन यह हर्ष मुख पर आने का साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियों को हाथ से जाते समय उसका हार्दिक आनन्द आँखों में चमक रहा है, ओठों पर नाच रहा है, कपोलों को रंग रहा है, और अंगों पर किलोल कर रहा है; वह इंद्रियों का आनन्द था, यह आत्मा का आनन्द है; वह आनन्द लज्जा के भीतर छिपा हुआ था, यह आनन्द गर्व से बाहर निकला पड़ता है।

तुलसी का आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताह के बाद ब्रजनाथ तकिए के सहारे बैठे थे। वह बार-बार भामा को प्रेम-पूर्ण नेत्रों से देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थी। अब तक उन्होंने उसके बाह्य सौंदर्य की शोभा देखी थी, आज वह उसका आत्मिक सौंदर्य देख रहे हैं।

तुलसी का घर एक गली में था। इक्का सड़क पर जाकर ठहर गया। ब्रजनाथ इक्के पर से उतरे, और अपनी छड़ी टेकते हुए भामा के हाथों के सहारे तुलसी के घर पहुँचे। तुलसी ने रुपए लिए और दोनों हाथ फैला कर आशीर्वाद दिया — दुर्गा जी तुम्हारा कल्याण करें।

तुलसी का वर्णहीन मुख वैसे ही खिल गया, जैसे वर्षा के पीछे वृक्षों की पत्तियाँ खिल जाती हैं। सिमटा हुआ अंग फैल गया, गालों की झुर्रियाँ मिटती दीख पड़ीं। ऐसा मालूम होता था, मानो उसका कायाकल्प हो गया।

वहाँ से आकर ब्रजनाथ अपने द्वार पर बैठे हुए थे कि गोरेलाल आ कर बैठ गए। ब्रजनाथ ने मुँह फेर लिया।

गोरेलाल बोले — भाई साहब! कैसी तबियत है?

ब्रजनाथ — बहुत अच्छी तरह हूँ।

गोरेलाल — मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझे इसका बहुत खेद है कि आपके रुपये देने में इतना विलम्ब हुआ। पहली तारीख ही को घर से एक आवश्यक पत्र आ गया, और मैं किसी तरह तीन महीने की छुट्टी लेकर घर भागा। वहाँ की विपत्ति-कथा कहूँ, तो समाप्त न हो; लेकिन आपकी बीमारी की शोक-समाचार सुन कर

आज भागा चला आ रहा हूँ। ये लीजिये, रुपये हाजिर हैं। इस विलम्ब के लिए अत्यंत लज्जित हूँ।

ब्रजनाथ का क्रोध शान्त हो गया। विनय में कितनी शक्ति है! बोले — जी हाँ, बीमार तो था; लेकिन अब अच्छा हो गया हूँ, आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो, तो रुपये फिर दे दीजिएगा। मैं अब उऋण हो गया हूँ। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल विदा हो गये, तो ब्रजनाथ रुपये लिये हुए भीतर आये और भामा से बोले — ये लो अपने रुपये; गोरेलाल दे गये।

भामा ने कहा — ये मरे रुपये नहीं तुलसी के हैं; एक बार पराया धन लेकर सीख गयी।

ब्रजनाथ — लेकिन तुलसी के पूरे रुपये तो दे दिये गये!

भामा — दे दिये तो क्या हुआ? ये उसके आशीर्वाद की न्योछावर है।

ब्रजनाथ — कान के झुमके कहाँ से आवेंगे?

भामा — झुमके न रहेंगे, न सही; सदा के लिए 'कान' तो हो गये।

# बड़े घर की बेटी

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन-धान्य सम्पन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मंदिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति-स्तम्भ थे। कहते हैं इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में अस्थि-पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था; पर दूध शायद बहुत देती थी; क्योंकि एक न एक आदमी हाँड़ी लिए उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधी से अधिक संपत्ति वकीलों को भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान आय एक हजार रुपये वार्षिक से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकंठ सिंह था। उसने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी.ए. की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर था। छोटा लड़का लाल-बिहारी सिंह दोहरे बदन का, सजीला जवान था। भरा हुआ मुखड़ा,चौड़ी छाती। भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठ कर सबेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणों को उन्होंने बी.

ए.–इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कांतिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रंथों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। शाम-सबेरे उनके कमरे से प्राय: खरल की सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनायी दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अंगरेजी डिग्री के अधिपति होने पर भी अंगरेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे; बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उसकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला होते और स्वयं किसी न किसी पात्र का पार्ट लेते थे। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिंदू सभ्यता का गुणगान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुम्ब के तो वह एक-मात्र उपासक थे। आज-कल स्त्रियों को कुटुम्ब को कुटुम्ब में मिल-जुल कर रहने की जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश दोनों के लिए हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएँ उनकी निंदक थीं! कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं! स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। यह इसलिए नहीं कि उसे अपने सास-ससुर, देवर या जेठ आदि घृणा थी; बल्कि

उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आये-दिन की कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकायी जाय।

आनन्दी एक बड़े उच्च कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी-शिकरे, झाड़-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेट और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, सभी यहाँ विद्यमान थे। नाम था भूपसिंह। बड़े उदार-चित्त और प्रतिभाशाली पुरुष थे; पर दुर्भाग्य से लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोग से सब की सब जीवित रहीं। पहली उमंग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये; पर पंद्रह-बीस हजार रुपयों का कर्ज सिर पर हो गया, तो आँखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुणवती थी। इससे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर संतान को कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म-संकट में थे कि इसका विवाह कहाँ करें? न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकंठ उनके पास किसी चन्दे का

रुपया माँगने आये। शायद नागरी-प्रचार का चंदा था। भूपसिंह उनके स्वभाव पर रीझ गये और धूमधाम से श्रीकंठसिंह का आनन्दी के साथ ब्याह हो गया।

आनन्दी अपने नये घर में आयी, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहां नाम-मात्र को भी न थी। हाथी-घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सजी हुई सुंदर बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लायी थी; पर यहाँ बाग कहाँ। मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीन पर फर्श, न दीवार पर तस्वीरें। यह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थी का मकान था; किन्तु आनन्दी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नयी अवस्था के ऐसा अनुकूल बना लिया, मानों उसने विलास के सामान कभी देखे ही न थे।

## 2

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारी सिंह दो चिड़िया लिये हुए आया और भावज से बोला — जल्दी से पका दो, मुझे भूख लगी है। आनन्दी भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। अब वह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँड़ी में देखा, तो घी पाव-भर से अधिक

न था। बड़े घर की बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला — दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनन्दी ने कहा — घी सब माँस में पड़ गया।

लालबिहारी जोर से बोला — अभी परसों घी आया है। इतना जल्द उठ गया?

आनन्दी ने उत्तर दिया — आज तो कुल पाव-भर रहा होगा। वह सब मैंने मांस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य जरा-जरा सी बात पर तिनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई, तिनक कर बोला — मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो!

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं; पर मैके की निंदा उनसे नहीं सही जाती। आनन्दी मुँह फेर कर बोली — हाथी मरा भी, तो नौ लाख का। वहाँ इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पलट दी, और बोला — जी चाहता है, जीभ पकड़ कर खींच लूँ।

आनन्दी को भी क्रोध आ गया। मुँह लाल हो गया, बोली — वह होते तो आज इसका मजा चखाते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। खड़ाऊँ उठाकर आनन्दी की ओर जोर से फेंकी, और बोला — जिसके गुमान पर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी।

आनन्दी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी, सिर बच गया; पर अँगुली में बड़ी चोट आयी। क्रोध के मारे हवा से हिलते पत्ते की भाँति काँपती हुई अपने कमरे में आ कर खड़ी हो गयी। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमंड होता है। आनन्दी खून का घूँट पी कर रह गयी।

## 3

श्रीकंठ सिंह शनिवार को घर आया करते थे। वृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनन्दी कोप-भवन में रही। न कुछ खाया न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्त में शनिवार

को वह नियमानुकूल संध्या समय घर आये और बाहर बैठ कर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ देश-काल संबंधी समाचार तथा कुछ नये मुकदमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनन्द मिलता था कि खाने-पीने की भी सुधि न रहती थी। श्रीकंठ को पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। ये दो-तीन घंटे आनन्दी ने बड़े कष्ट से काटे! किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। एकान्त हुआ, तो लालबिहारी ने कहा-–भैया, आप जरा भाभी को समझा दीजिएगा कि मुँह सँभाल कर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधव सिंह ने बेटे की ओर साक्षी दी — हाँ, बहू-बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि मर्दों के मुँह लगें।

लालबिहारी--वह बड़े घर की बेटी हैं, तो हम भी कोई कुर्मी-कहार नहीं है। श्रीकंठ ने चिंतित स्वर से पूछा — आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारी ने कहा — कुछ भी नहीं; यों ही आप ही आप उलझ पड़ीं। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकंठ खा-पीकर आनन्दी के पास गये। वह भरी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनन्दी ने पूछा — चित्त तो प्रसन्न है।

श्रीकंठ बोले — बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आजकल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनन्दी की त्योरियों पर बल पड़ गये, झुँझलाहट के मारे बदन में ज्वाला-सी दहक उठी। बोली — जिसने तुमसे यह आग लगायी है, उसे पाऊँ, मुँह झुलस दूँ।

श्रीकंठ — इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो।

आनन्दी — क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है! नहीं तो गँवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का भी शऊर नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मार कर यों न अकड़ता।

श्रीकंठ — सब हाल साफ-साफ कहा, तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी — परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे मांस पकाने को कहा। घी हाँडी में पाव-भर से अधिक न था। वह सब मैंने मांस में डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा — दाल में घी क्यों नहीं है? बस, इसी पर मेरे मैके को बुरा-भला कहने लगा —

मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि वहाँ इतना घी तो नाई-कहार खा जाते हैं, और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लूँ, तो सिर फट जाय। उसी से पूछो, मैंने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ।

श्रीकंठ की आँखें लाल हो गयीं। बोले — यहाँ तक हो गया, इस छोकरे का यह साहस!

आनन्दी स्त्रियों के स्वभावानुसार रोने लगी; क्योंकि आँसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान् और शांत पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था; स्त्रियों के आँसू पुरुष की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले — दादा, अब इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह-पूर्ण बातें कहने पर श्रीकंठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हें स्वयं वे ही बातें अपने मुँह से कहनी पड़ी! दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधव सिंह घबरा उठे और बोले — क्यों?

श्रीकंठ — इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है। आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ों का आदर-सम्मान करना चाहिए, वे उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरे का नौकर ठहरा घर पर रहता नहीं। यहाँ मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊँ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक चिन्ता नहीं। कोई एक की दो कह ले, वहाँ तक मैं सह सकता हूँ किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात-घूँसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़ा ठाकुर अवाक् रह गया। केवल इतना ही बोला — बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इस तरह घर का नाश कर देती है। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकंठ — इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझाने से, इसी गाँव में कई घर सँभल गये, पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूँ, उसके प्रति ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिए यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारी को कुछ दंड नहीं होता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले — लालबिहारी तुम्हारा भाई है। उससे जब कभी भूल-चूक हो, उसके कान पकड़ो लेकिन.

श्रीकंठ — लालबिहारी को मैं अब अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह — स्त्री के पीछे?

श्रीकंठ — जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शांत करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने वहाँ आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकंठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने की तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियाँ सुनने के लिए उनकी आत्माएँ तिलमिलाने लगीं। गाँव में कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीतिपूर्ण गति पर मन ही मन जलते थे। वे कहा करते थे — श्रीकंठ अपने बाप से दबता है, इसीलिए वह दब्बू है। उसने विद्या पढ़ी, इसलिए वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधव सिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभकामनाएँ आज पूरी होती दिखायी दीं। कोई हुक्का पीने के

बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने आ कर बैठ गया। बेनीमाधव सिंह पुराने आदमी थे। इन भावों को ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरंत कोमल शब्दों में बोले-- बेटा, मैं तुमसे बाहर नहीं हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग-क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकंडों की उसे क्या खबर? बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला — लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव — बेटा, बुद्धिमान लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई, उसे तुम बड़े होकर क्षमा करो।

श्रीकंठ — उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे विदा कीजिए, मैं अपना भार आप सँभाल लूँगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं तो उससे कहिए, जहाँ चाहे चला जाय। बस यह मेरा अंतिम निश्चय है।

लालबिहारी सिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकंठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकंठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का तक न था। जब वह इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते। मुगदर की जोड़ी उन्होंने ही बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्यौढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जा कर उसे गले लगा लिया था, पाँच रुपये के पैसे लुटाये थे। ऐसे भाई के मुँह से आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अपने किये पर पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से उसकी छाती धड़कती थी कि देखूँ भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊँगा, उनसे कैसे बोलूँगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेगी। उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था। परन्तु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकंठ उसे अकेले

में बुलाकर दो-चार बातें कह देते; इतना ही नहीं दो-चार तमाचे भी लगा देते तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; पर भाई का यह कहना कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से सहा न गया! वह रोता हुआ घर आया। कोठारी में जाकर कपड़े पहने, आँखें पोंछी, जिसमें कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनन्दी के द्वार पर आकर बोला — भाभी, भैया ने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। अब वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए अब मैं जाता हूँ। उन्हें फिर मुँह न दिखाऊँगा! मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

## 4

जिस समय लालबिहारी सिंह सिर झुकाये आनन्दी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठ सिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं, और कतरा कर निकल गये। मानों उसकी परछाही से दूर भागते हों।

आनन्दी ने लालबिहारी की शिकायत तो की थी, लेकिन अब मन में पछता रही थी वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका

तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुँझला रही थी कि यह इतने गरम क्यों होते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूँगी। इस बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ, क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोने लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठ को देखकर आनन्दी ने कहा — लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ — तो मैं क्या करूँ?

आनन्दी — भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे! मैंने कहाँ से यह झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ — मैं न बुलाऊँगा।

आनन्दी — पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गयी है, ऐसा न हो, कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा — भाभी, भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुँह नहीं देखना चाहते; इसलिए मैं भी अपना मुँह उन्हें न दिखाऊँगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, और शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा। अन्त में आनन्दी कमरे से निकली और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा और आँखों में आँसू भरे बोला — मुझे जाने दो।

आनन्दी — कहाँ जाते हो?

लालबिहारी — जहाँ कोई मेरा मुँह न देखे।

आनन्दी — मैं न जाने दूँगी?

लालबिहारी — मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनन्दी — तुम्हें मेरी सौगंध अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी — जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनन्दी — मैं ईश्वर को साक्षी दे कर कहती हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकंठ का हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूट कर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा — भैया, अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुँह न देखूँगा। इसके सिवा आप जो दंड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

श्रीकंठ ने काँपते हुए स्वर में कहा — लल्लू! इन बातों को बिल्कुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधव सिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर आनन्द से पुलकित हो गये। बोल उठे — बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं।

गाँव में जिसने यह वृत्तांत सुना, उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा — 'बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।'

# पंच परमेश्वर

जुम्मन शेख अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खाना-पाना का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे, और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरू जी की बहुत सेवा की थी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने ने नहीं आती; जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरु जी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव

यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मानकर संतोष कर लेना कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य ही में न थी, तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कदम न उठा सकता था। हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी--सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उनके धन के कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।

## 2

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी; परन्तु उसके निकट संबंधियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब

तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया; उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गयी; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानों मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खालाजान को प्राय: नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थी।

बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानों मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजान ने सुना और सहा; पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी — गृहस्वामी — के प्रबंध देना उचित न समझा। कुछ दिन तक दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्त में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा — बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना पका-खा लूँगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया — रुपये क्या यहाँ फलते हैं?

खाला ने नम्रता से कहा — मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं?

जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया — तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आयी हो?

खाला बिगड़ गयीं, उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाली की तरफ जाते देख कर मन ही मन हँसता है। वह बोले — हाँ, जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटखट पसंद नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न था। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था, उसके अनुग्रहों का ऋणी न हो; ऐसा कौन था, जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किस में इतना बल था, जो उसका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं।

## 3

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आस-पास के गाँवों में दौड़ती रहीं। कमर झुक कर कमान हो

गयी थी। एक-एक पग चलना दूभर था; मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके समाने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं। कहा — कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे, कल दूसरा दिन, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम है? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें हास्य-रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के-से बाल इतनी सामग्री एकत्र हों, तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने इस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों ओर से घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आयी। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली — बेटा, तुम भी दम भर के लिये मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू — मुझे बुला कर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला — अपनी विपद तो सबके आगे रो आयी। अब आने न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू — यों आने को आ जाऊँगा; मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला — क्यों बेटा?

अलगू — अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला — बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय, तो उसे खबर नहीं होता, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का काई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे-

क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

## 4

संध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के-

तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वह स्वय अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठे हुए थे। जब पंचायत में कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब यहाँ भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल जमीन भर गयी; पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमंत्रित महाशयों में से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर झुंड के झुंड जमा हो गए थे।

पंच लोग बैठ गये, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की —

‘पंचों, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ता-हयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया। साल-भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा। पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है न तन का

कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किसको अपना दुःख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, तो मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो, तो उसे समझाओं, क्यों एक बेकस की आह लेता है! मैं पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढ़ाऊँगी।'

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियों को जुम्मन ने अपने गाँव में बसा लिया था, बोले — जुम्मन मियाँ किसे पंच बदते हो? अभी से इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेषकर वे ही लोग दीख पड़े, जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले — पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें, उसे बदें। मुझे कोई उज्र नहीं।

खाला ने चिल्लाकर कहा — अरे अल्लाह के बन्दे! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मन ने क्रोध से कहा — इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो, पंच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गयीं, वह बोली — बेटा, खुदा से डरो। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, ने किसी के दुश्मन। कैसी बात कहते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो, लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे, परन्तु भावों को छिपा कर बोले — अलगू ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले में फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले — खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गम्भीर स्वर में कहा — बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले — शेख जुम्मन! हम और तुम पुराने दोस्त हैं! जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं; मगर इस समय तुम और बूढ़ी

खाला, दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलग यह सब दिखावे की बातें कर रहा है। अतएव शांत-चित्त हो कर बोले — पंचों, तीन साल हुए खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें ता-हयात खाना-कप्ड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है; मगर औरतों में जरा अनबन रहती है, उसमें मेरा क्या बस है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती है। जायदाद जितनी है; वह पंचों से छिपी नहीं। उससे इतना मुनाफा नहीं होता है कि माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नही। नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले मे न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइंदा पंचों का अख्तियार है, जो फैसला चाहें, करे।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़ी की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इस प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया। अभी यह अलगू मेरे साथ

बैठी हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था! इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गयी कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया —

जुम्मन शेख! पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाय।

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा की जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे कपटी-धोखेबाज न होते, तो देश में आपत्तियों का

प्रकोप क्यों होता? यह हैजा-प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मों के ही दंड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता को प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे — इसका नाम पंचायत है! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखायी देते। इतना पुराना मित्रता-रूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगा। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

## 5

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी दरे लगती है; पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती; जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोई मोल लाये थे। बैल पछाहीं जाति के सुंदर, बडे-बड़े सीगोंवाले थे। महीनों तक आस-पास के गाँव के लोग दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने के बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा — यह दग़ाबाज़ी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा नेक-बद सब देखता है। अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया उसने कहा-- जुम्मन ने कुछ कर-करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंगय, वक्तोक्ति अन्योक्ति और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शांति स्थापित की। उन्होंने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क-पूर्ण सोंटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहु थे, वह इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव के गुड़-घी लाद कर मंडी ले जाते, मंडी से तेल, नमक भर लाते, और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में बेखटके तीन खेप हों। आज-कल तो एक ही खेप में लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान करायी, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवाह न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था तो चैन की बंशी बचती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नहीं, कभी-कभी घी का स्वाद भी

चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर कही खपत। महीने-भर ही में वह पिस-सा गया। इक्के का यह जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आयी थी; पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहु जी ने दूना बोझ लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। पर साहु जी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़ का चला। कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ; पर साहु जी को जल्द पहुँचने की फिक्र थी; अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया; पर अबकी बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहु जी ने बहुत पीटा, टाँग पकड़कर खींचा, नथनों में लकड़ी ठूँस दी; पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहु जी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोलकर अलग किया; और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। बहुत चीखे-चिल्लाये; पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है। कोई नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए

बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे — अभागे। तुझे मरना ही था, तो घर पहुँचकर मरता! ससुरा बीच रास्ते ही में मर रहा। अब गड़ी कौन खींचे? इस तरह साहु जी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो-ढाई सौ रुपये कमर में बँधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक थे; अतएव छोड़ कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेटे गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया। फिर हुक्का पिया। इस तरह साह जी आधी रात तक नींद को बहलाते रहें। अपनी जान में तो वह जागते ही रहे; पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब! घबरा कर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रातः काल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी, तब पहले तो रोयी, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी — निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गयी।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गए। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और सहुआइन, दोनों ही झल्लाये हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते — वाह! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं!

आँखों में धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया है! हम भी बनिये के बच्चे है, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड़हे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहु जी के बर्राने की पुष्टि करते। परन्तु डेढ़ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गरम पड़े। साहु जी बिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गए। अब सहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइन ने घर में घुस कर किवाड़ बन्द कर लिए। शोरगुल सुनकर गाँव के भलेमानस घर से निकाला। वह परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। कुछ तय हो जाय, उसे स्वीकार कर लो। साहु जी राजी हो गए। अलगू ने भी हामी भर ली।

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किए। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पंचायत बैठी। वही संध्या का समय था। खेतों में कौए पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय था यह कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नही, और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यकता समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में वह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यों को उन्हें बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों से दगा करने में भी संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा-अब देरी क्या है? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी ; किस-किस को पंच बदते हो।

अलगू ने दीन भाव से कहा — समझू साहु ही चुन लें।

समझू खड़े हुए और कड़कर बोले — मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानों किसी ने अचानक थप्पड़ मारा दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वह बात को ताड़ गए। पूछा — क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नही।

चौधरी ने निराश हो कर कहा — नहीं, मुझे क्या उज्र होगा?

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांति कुटी में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रिमंडल पर आक्रमण करता है: परन्तु ऐसे अवसर आते हैं, जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है। इसका कारण उत्तर-दायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दंड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते है! वे उसे कुल-कलंक समझते हैं परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वह अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांतचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है — और

देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नही!

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परन्तु वो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। उसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया —

अलगू चौधरी और समझू साहु। पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिए जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई प्रबंध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले — समझू ने बैल को जान-बूझ कर मारा है, अतएव उससे दंड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले — यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं!

झगड़ू साहु ने कहा — समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिए।

जुम्मन बोले — यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। यह रियायत करें, तो उनकी भलमनसी।

अलगू चौधरी फूले न समाए। उठ खड़े हुए और जोर से बोले — पंच-परमेश्वर की जय!

इसके साथ ही चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई — पंच परमेश्वर की जय! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए और उनके गले लिपट कर बोले — भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था; पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है। अलगू

रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

# शंखनाद

भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे। गाँव में उनका बड़ा मान था। दारोगा जी उन्हें टाट बिना जमीन पर न बैठने देते। मुखिया साहब की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मरजी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे वह सास-बहू का विवाद हो, चाहे मेड़ या खेत का झगड़ा, चौधरी साहब के शासनाधिकार को पूर्णरूप से सचेत करने के लिए काफी था, वह तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूत के सिवा किसी अभियोग को सफलता सहित चलाने में जिन बातों की जरूरत होती है, उन सब पर विचार होता और चौधरी जी के दरबार से फैसला हो जाता। किसी को अदालत जाने की जरूरत न पड़ती। हाँ, इस कष्ट के लिए चौधरी साहब कुछ फीस जरूर लेते थे। यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हें धीरज से काम लेना पड़ता तो गाँव में आफत मच जाती;क्योंकि उनके धीरज और, दारोगा जी क्रोध में कोई घनिष्ठ संबंध था। सारांश यह कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

## 2

चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे। बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीति-कुशल। मिर्जई की जगह कमीज पहनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरी को नापसंद थे, पर बेचारे विवश थे; क्योंकि अदालत और कानून के मामले बितान के हाथों में थे। वह कानून का पुतला था। कानून की दफाएँ उसकी जवान पर रखी रहती थीं। गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे। बुद्धि के मंद; लेकिन शरीर के बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न जमती हो, वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक, साथ ही उद्दंड भी था। मुहर्रम में ढोल इतने जोर से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फँसने का बड़ा शौकीन था। बड़ा रंगीला जवान था। खँजड़ी बजा-बजाकर जब मीठे स्वर में ख्याल गाता, तो रंग जम जाता। उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता; पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क

थे कि उसके इन व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की-धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय, किसी का उस पर कुछ असर न हुआ। हाँ, भावजें अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थीं। वे अभी तक उसे कड़वी दवाइयाँ पिलाए जाती थीं; पर आलस्य वह राज रोग है जिसका रोगी कभी नहीं सँभलता। ऐसा तो कोई बिरला ही दिन जाता होगा कि बाँके गुमान को भावजों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते हों। ये विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदय में चुभ जाते; किंतु यह घाव रात भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकान के साथ ही यह पीड़ा भी शांत हो जाती। तड़का हुआ, उसने हाथ-मुँह धोया, बंशी उठाई और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करती; बढ़े चौधरी पैंतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाह से देखा करते, पर अपनी धुन का पूरा बाँका गुमान उन लोगों के बीच इस तरह अकड़ता चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तों के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिए क्या-क्या उपाय नहीं किए गए। बाप समझता — बेटा, ऐसा राह चलो जिसमें तुम्हें भी पैसे मिलें और गृहस्थी का भी निर्वाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे? मैं पका आम हूँ — आज टपक पड़ा या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा? भाई बात

भी न पूछेंगे; भावजों का रंग देख रहे हो। फिर तुम्हारे भी लड़के-वाले है, उनका भार कैसे सँभालोगे? खेती में जी न लगे, कहो कांस्टिबिली में भरती करा दूँ? वाँका गुमान खड़ा-खड़ा सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था, कभी न पसीजता! इन महाशय के अत्याचार का दंड उनकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। मेहनत के घर के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुएँ से पानी लाती, आटा पीसती और तिस पर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्य-बाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह पति से कई दिन रूठी रही, तो बाँके गुमान कुछ नर्म हुए। बाप से जाकर बोले — मुझे को दूकान खोलवा दीजिए। चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया। फूले समाए। कई सौ लगाकर कपड़े की दूकान खुलवा दी। गुमान के भाग जागे। तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाए, मलमल का साफा धानी रंग में रँगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होना था। दूकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए है, चरस की दम और ख्याल की तानें उड़ रही हैं —

चल री झटपट री, जमुना-तट री, खड़ो नटखट री।

इस तरह तीन महीने चैन से कटे। बाँके गुमान ने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले, यहाँ तक कि सारा लागत लाभ हो गई। टाट के टुकड़े से सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी

कुएँ में गिरने चले, भावजों ने घोर आंदोलन मचाया — अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नसीब न हो, और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टू का कफन बन गई। अब कौन मुँह दिखाएगा? कौन मुँह लेकर घर पर पैर रखेगा? किंतु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिये वह फिर घर आया और फिर पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ बितान उनके ये ठाट-बाट देखकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नैनसुख का कुरता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठन कर निकले? ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याह में भी न मिले होंगे। मीठे शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्त में यह जलन न सही गई, और अग्नि भड़की, तो एक दिन कानूनदाँ बितान की पत्नी गुमान के सारे कपड़े उठा लाई और उनपर मिट्टी का तेल उँडेलकर आग लगा दी। ज्वाला उठी, सारे कपड़े देखते-देखते जलकर राख हो गए। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरी ने यह दृश्य देखा, और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घर को जलाकर तब बुझेगी।

## 3

यह ज्वाला तो थोड़ी देर में शान्त हो गई, परन्तु हृदय की आग ज्यों की त्यों दहकती रही। अन्त में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर में सब मेम्बरों को एकत्र किया और इस गूढ़ विषय पर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार लगे। बितान से बोले — बेटा, तुमने आज देखा कि बात की बात में सैंकड़ों रुपए पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असंभव है। तुम समझदार हो, मुकदमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबने से बचे। मैं तो यह चाहता हूँ कि जब तक चोला रहे, सबको समेटे रहूँ, मगर भगवान के मन में कुछ और ही है।

बितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनी से सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी उसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमती जी बोल उठी — दादा जी! अब समझाने-बुझाने से काम न चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे की जितनी पीर बाप को होगी, भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ कि गुमान का तुम्हारी कमाई में हक है, उन्हें कंचन के कौर खिलाओ और चाँदी के हिंडोले में झुलाओ। हममें न इतनी बूता है, न इतना कलेजा। हम अपनी

झोंपड़ी अलग बना लेंगे। हाँ, जो कुछ हमारा हो, वह हमको मिलना चाहिए। बाँट-बखरा कर दीजिए। वला से चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँ तक दुनिया की लाज ढोवे?

नीतिज्ञ बितान पर इस प्रबल वक्तृता को जो असर हुआ वह उसके विकसित प्रमुदित चेहरे से झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्ताव को इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गंभीरता से बोले — जायदाद मुश्तरका, मंकूला या गैर मंकूला, आपके हीन-हयात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें मौजूद हैं। जमींदार को साकितुलमिल्कियत करने की कोई इस्तहकाक नहीं है।

अब मंदबुद्धि शान की बारी आई, पर बेचारा किसान, बैलों के पीछे आँखें बन्द करके चलनेवाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता। दुविधा में पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर यह कठिन कार्य संपन्न किया। बोली — बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़कर कमाए मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाँकने को वस्त्र तक न मिले, और कोई सुख की नींद सोये, हाथ बढ़ा-बढ़ाकर के खाए! ऐसी अंधेर नगरी में अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकंठ से अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले — क्यों बेटा, तुम्हें भी यहीं मंजूर है? अभी कुछ नहीं बिगड़ा। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं। बोलो, क्या कहते हो? कुछ काम-धंधा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं?

गुमान में धैर्य की कमी न थी। बातों को इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देना उसका नित्य-कर्म था। किंतु भाइयों की इस जन-मुरीदी पर उसे क्रोध आ गया। बोला — भाइयों की जो इच्छा हैं, वही मेरे मन में भी लगी हुई है। मैं भी इस जंजाल से भागना चाहता हूँ। मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्य में चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे। मेरे भाग्य में चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूँ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए है। अपनी-अपनी फिक्र कीजिए। मुझे आध से आटे की कमी नहीं है।

इस तरह की सभाएँ कितनी ही बार हो चुकीं थी, परन्तु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इसमें भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया। जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता। अन्त में बूढ़े चौधरी गए और मना के लाए। अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती चलने लगी।

# 4

पांडे के घर के चूहों की तरह चौधरी के घर के बच्चे भी सयाने थे। उनके लिए घोड़े मिट्टी के घोड़े और नावें कागज की नावें थीं। फलों की विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जंगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था, जिसे वे बीमारियों का घर न समझते हो, लेकिन गुरदीन के खोमचे में ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चों की तरह यदि सोते भी हों; तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गाँव में साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकांक्षा में कितने ही बालकों को बिना किंडरगार्डन की रंगीन गोलियों के ही, संख्याएँ और दिनों के नाम याद हो गए थे। गुरदीन बूढ़ा-सा, मैला-कुचैला आदमी थी; किंतु आस-पास में उसका नाम उपद्रवी लड़कों के लिए हनुमान-मंत्र से कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोमचे पर लड़कों का ऐसा धावा होता कि मक्खियों की असंख्य सेना को भी रण-स्थल से भागना पड़ता था। और जहाँ बच्चों की मिठाइयाँ थीं, वहाँ गुरदीन के पास माताओं के लिए इससे भी ज्यादा मीठी

बातें थीं। माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसा न रहने का बहाना करे पर गुरदीन चटपट मिठाइयों का दोना बच्चों के हाथ में रख ही देता और स्नेह-पूर्ण भाव से कहता — बहू जी, पैसों की कोई चिंता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिये हैं, तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं की बदौलत मेरे बाल-बच्चे भी जीते है। अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसा ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहार चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे नौ नगद सही, तेरह उधार नहीं वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो, किंतु मिष्टभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमें संशोधन करने की जरूरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ों पर चढ़ गए थे। सूर्य भगवान अपना सुनहला थाल लिए पूरब से पश्चिम जा पहुँचे थे, इतने में गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लड़कों ने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींचातानी होने लगी। कोई कहता कि मेरे घर चलो, कोई अपने घर का न्योता देता था। सबसे पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा।

गुरदीन ने अपना खोमचा उतार दिया। मिठाइयों की लूट शुरू हो गई। बालकों और स्त्रियों का ठट्ट लग गया। हर्ष और विषाद, संतोष और लोभ, ईर्ष्या और क्षोभ, द्वेष और जलन की नाट्यशाला सज गई। कानूनदाँ बितान की पत्नी अपने तीन लड़कों को लिये हुए निकली। शान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरू कीं। पैसे झोली में रखे, धेले की मिठाई दी और धेले का आशीर्वाद। लड़के दोने लिए उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए। अगर सारे गाँव में कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीन की उदारता का लाभ न उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों-बहनों को हँस-हँस और उछल-उछल कर मिठाइयाँ खाते देखकर सब्र कर जाए! उस पर तुर्रा यह कि वे उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखाकर ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा धान चीखता और अपनी माता का आँचल पकड़-पकड़कर दरवाजे की तरफ खींचता था; पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चे के लिए ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियों की निष्ठुरता पर और सबसे ज्यादा अपने पति के निखट्टूपन पर कुढ़-कुढ़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यों दूसरों का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने

पड़ते? उसने धान को गोद में उठा लिया और प्यार से दिलासा देने लगी — बेटा, रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा तो तुम्हें बहुत-सी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे! यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आई। आह! यह मनहूस मंगल आज फिर आवेगा; और फिर बहाने करने पड़ेंगे! हाय, अपना प्यारा बच्चा धेले की मिठाई को तरसे और घर में किसी का पत्थर-सा कलेजा न पसीजे! वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला, तो माँ की गोद से जमीन पर उतरकर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। माँ ने बहुत बहलाया, फुसलाया, यहाँ तक कि उसे बच्चे के इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव हृदय के रहस्य कभी समझ नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, ऐसी झल्लाई कि उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाए और घुड़ककर बोली — चुप रह अभागे! तेरा ही मुँह मिठाई खाने का है? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है।

बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा यह कौतुक बड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे और चुभ

गए। शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रूई को धुनने के लिए ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी, चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आईं। आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्जवल कर देती है। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चे को गोद में उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला — बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दंड चाहो, दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से हम लोग इस घर में मेरा और मेरा बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानों मेरे कानों शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश का उपदेश दिया हो।

# जिहाद

बहुत पुरानी बात है। हिंदुओं का एक काफ़िला अपने धर्म की रक्षा के लिए पश्चिमोत्तर के पर्वत-प्रवेश से भागा चला आ रहा था। मुद्दतों से उस प्रांत में हिंदू और मुसलमान साथ-साथ रहते चले आए थे। धार्मिक द्वेष का नाम न था। पठानों के जिरगे हमेशा लड़ते रहते थे। उनकी तलवारों पर कभी जंग न लगने पाता था। बात-बात पर उनके दल संगठित हो जाते थे। शासन की व्यवस्था न थी। हरएक जिरगे और कबीले की व्यवस्था अलग थी। आपस के झगड़ों को निपटाने का भी तलवार के सिवा और कोई साधन न था। जान का बदला जान था, खून का बदला खून; इस नियम का अपवाद न था। यही उनका धर्म था, यही ईमान; मगर उस भीषण रक्तपात में भी हिंदू परिवार शांति से जीवन व्यतीत करते थे। पर एक महीने से देश की हालत बदल गई है। एक मुल्ला ने न जाने कहाँ से आ कर अनपढ़ धर्मशून्य पठानों में धर्म का भाव जागृत कर दिया? उसकी वाणी में कोई ऐसी मोहनी है कि बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष खिंचे चले आते हैं। वह शेरों की तरह गरज कर कहता है — खुदा ने तुम्हें इसलिए पैदा

किया है कि दुनिया को इस्लाम की रोशनी से रोशन कर दो, दुनिया से कुफ्र का निशान मिटा दो। एक काफिर के दिल को इस्लाम के उजाले से रोशनी कर देने का सब सारी उम्र के रोजे, नमाज और जकात से कहीं ज्यादा है। जन्नत की हूरें तुम्हारी बलाएँ लेंगी और फरिश्ते तुम्हारे कदमों की खाक माथे पर मलेंगे, खुदा तुम्हारी पेशानी पर बोसे देगा। और सारी जनता यह आवाज सुन कर मजहब के नारों से मतवाली हो जाती है। उसी धार्मिक उत्तेजना ने कुफ्र और इस्लाम का भेद उत्पन्न कर दिया है। प्रत्येक पठान जन्नत का सुख भोगने के लिए अधीर हो उठा है। उन्हीं हिन्दुओं पर जो सदियों से शांति के साथ रहते थे, हमले होने लगे हैं। कहीं उनके मंदिर ढाए जाते है, कहीं उनके देवताओं को गालियाँ दी जाती है। कहीं उन्हें जबरदस्ती इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। हिंदू संख्या में कम हैं, असंगठित हैं; बिखरे हुए है, इस नई परिस्थिति के लिए बिलकुल तैयार नहीं। उनके हाथ-पाँव फूले हुए हैं, कितने ही तो अपनी जमा-जथा छोड़कर भाग खड़े हुए है, कुछ इस आँधी के शांत हो जाने का अवसर देख रहे हैं। यह काफ़िला भी उन्हीं भागने वालों में था। दोपहर का समय था। आसमान से आग बरस रही थी। पहाड़ों से ज्वाला-सी निकल रही थी। वृक्ष का कहीं नाम न था। ये लोग राज-पथ से हटे हुए, पेचीदा औघट रास्तों से चले आ रहे थे। एक-एक पग

पकड़ लिये जाने का खटका लगा हुआ था। यहाँ तक कि भूख, प्यास और ताप से विकल होकर अन्त में लोग एक उभरी हुई शिला की छाँह में विश्राम करने लगे। सहसा कुछ दूर पर एक कुआँ नजर आया। वहीं डेरे डाल दिए। भय लगा हुआ था कि जेहादियों का कोई दल पीछे से न आ रहा हो। दो युवकों ने बंदूक भर कर कंधे पर रखीं और चारों ओर गश्त करने लगे। बूढ़े कंबल बिछा कर आराम करने लगे। स्त्रियाँ बालकों को गोद से उतार कर माथे का पसीना पोंछने लगी और बिखरे हुए केशों को सँभालने लगी। सभी के चेहरे मुरझाए हुए थे। सभी चिंता और भय से त्रस्त हो रहे थे, यहाँ तक कि बच्चे जोर से न रोते थे।

दोनों युवकों में एक लंबा, गठीला रूपवान था। उसकी आँखों से अभिमान की रेखाएँ-सी निकल रही हैं, मानों वह अपने सामने किसी की हकीकत नहीं समझता, मानों उसकी एक-एक गत पर आकाश के देवता जयघोष कर रहे है। दूसरा कद का दुबला-पतला, रूपहीन-सा आदमी है, जिसके चेहरे पर दीनता झलक रही है, मानों उसके लिए संसार में कोई आशा नहीं, मानों वह दीपक की भाँति रो-रो कर जीवन व्यतीत करने ही के लिए बनाया गया है। उसका नाम धर्मदास है, इसका ख़ज़ाँचंद।

धर्मदास ने बंदूक को जमीन पर टिका कर एक चट्टान पर बैठते हुए कहा — तुमने अपने लिए क्या खोजा? कोई लाख-सवा लाख की संपत्ति रही होगी तुम्हारी?

ख़ज़ाँचंद ने उदासीन भाव से उत्तर दिया — लाख-सवा लाख की तो नहीं, हाँ, पचास-साठ हजार को नकद ही थे।

'तो अब क्या करोगे?'

'जो कुछ सिर पर आएगा, झेलूँगा! रावलपिंडी में दो-चार संबंधी है, शायद कुछ मदद करें। तुमने क्या सोचा है?'

'मुझे क्या गम! अपने दोनों हाथ अपने साथ है। वहाँ इन्हीं का सहारा था, आगे भी इन्हीं का सहारा है।'

'आज और कुशल से बीत जाए तो फिर कोई भय नहीं।'

'मैं को मना रहा हूँ कि एकाध शिकार मिल जाए। एक दरजन भी आ जाएँ तो भून कर रख दूँ।'

इतने में चट्टानों के नीचे से एक युवती हाथ में लोटा-डोर लिए निकली और सामने कुएँ की ओर चली। प्रभात की सुनहरी, मधुर, अरुणिमा मूर्तिमान हो गई थी।

दोनों युवक उसकी ओर बढ़े लेकिन खज़ाचंद तो दो-चार कदम चल कर रुक गया, धर्मदास ने युवती के हाथ से लोटा-डोर ले

लिया और ख़ज़ाँचंद की ओर सगर्व नेत्रों से ताकता हुआ कुएँ की ओर चला। ख़ज़ाचंद ने फिर बंदूक सँभाली और अपनी झेंप मिटाने के लिए आकाश की ओर ताकने लगा। इसी तरह कितनी ही बार धर्मदास के हाथों पराजित हो चुका था। शायद उसे इसका अभ्यास हो गया था। अब इसमें लेशमात्र भी संदेह न था कि श्यामा का प्रेमपात्र धर्मदास है। ख़ज़ाचंद की सारी संपत्ति धर्मदास के रूपवैभव के सामने तुच्छ थी। परोक्ष ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी श्यामा कई बार ख़ज़ाचंद को हताश कर चुकी थी; पर वह अभागा निराश हो कर भी न जाने क्यों उस पर प्राण देता था। तीनों एक ही बस्ती के रहनेवाले थे। श्यामा के माता-पिता पहले ही मर चुके थे। उसकी बुआ ने उसका पालन-पोषण किया था। अब भी वह बुआ ही के साथ रहती थी। उसकी अभिलाषा थी कि ख़ज़ाचंद उसका दामाद हो जाए, श्यामा सुख से रहे और उसे भी अंतिम दिनों के लिए कुछ सहारा हो; लेकिन श्यामा धर्मदास पर रीझी हुई थी। उसे क्या खबर थी कि जिस व्यक्ति को वह पैरों से ठुकरा रही है, वही उसका एकमात्र अवलंब है। ख़ज़ाचंद ही वृद्धा का मुनीम, खजांची, कारिंदा सब कुछ था और यह जानते हुए भी कि श्यामा उसे जीवन में नहीं मिल सकती। उनके धन का यह उपयोग न होता, तो वह शायद अब तक उसे लुटा कर फकीर हो जाता।

## 2

धर्मदास पानी लेकर लौट ही रहा था कि उसे पश्चिम की ओर से कई आदमी घोड़ों पर सवार आते दिखाई दिए। जरा और समीप आने पर मालूम हुआ कि कुछ पाँच आदमी हैं। उनकी बंदूक का नलियाँ धूप में साफ चमक रही थीं। धर्मदास पानी लिये हुए दौड़ा कि कहीं रास्ते में ही सवार उसे न पकड़ लें लेकिन कंधे पर बंदूक और एक हाथ में लोटा-डोर लिए वह बहुत तेज न दौड़ सकता था। फासला दो सौ गज से कम न था। रास्तें में पत्थरों के ढेर टूटे-फूटे पड़े हुए थे। भय होता था कि कहीं ठोकर न लग जाए, कहीं पैर न फिसल जाएँ। इधर सवार प्रतिक्षण समीप होते जाते थे। अरबी घोड़ों से उसका मुकाबला ही क्या, उस पर मंजिलों का धावा हुआ। मुश्किल से पचास कदम गया होगा कि सवार उसके सिर पर आ पहुँचे और तुरंत उसे घेर लिया। धर्मदास बड़ा साहसी था; पर मृत्यु को सामने खड़ी देख कर उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, उसके हाथ से बंदूक छूट कर गिर पड़ी। पाँचों उसी के गाँव के पठान थे। एक पठान ने कहा — उड़ा दो सिर मरदूद का। दगाबाज़ काफिर!

दूसरा — नहीं नहीं, ठहरो, अगर यह इस वक्त भी इस्लाम कबूल कर ले, तो हम इसे मुआफ कर सकते है। क्यों धर्मदास तुम्हें दगा की सजा दी जाए? हमने तुम्हें रात-भर का वक्त फैसला करने के लिए दिया था। मगर तुम इसी वक्त जहन्नुम पहुँचा दिए जाओ; लेकिन हम तुम्हें फिर मौका देते है। यह आखिरी मौका है। अगर तुमने अब भी इस्लाम न कबूल किया, तो तुम्हें दिन की रोशनी देखनी नसीब न होगी।

धर्मदास ने हिचकिचाते हुए कहा — जिस बात को अकल नहीं मानती, उसे कैसे...।

पहले सवार ने आवेश में आकर कहा — मजहब को अक्ल से कोई वास्ता नहीं।

तीसरा — कुफ्र है! कुफ्र है!

पहला — उड़ा दो सिर मरदूद का, धुआँ इस पार।

दूसरा — ठहरो, ठहरो, मार डालना मुश्किल नहीं, जिला लेना मुश्किल है। तुम्हारी और साथी कहाँ है। धर्मदास?

धर्मदास — सब मेरे साथ ही हैं।

दूसरा — कलामे शरीफ़ की कसम; अगर तुम सब खुदा और उनके रसूल पर ईमान लाओ, तो कोई तुम्हें तेज निगाह से देख भी न सकेगा।

धर्मदास -- आप लोग सोचने के लिए और कुछ मौका न देंगे।

इस पर चारों सवार चिल्ला उठे — नहीं, नहीं, हम तुम्हें न जाने देंगे, यह आखिरी मौका है।

इतना कहते ही पहले सवार ने बंदूक छतिया ली और नली धर्मदास की छाती की ओर करके बोला — बस बोलो, क्या मंजूर है?

धर्मदास सिर से पैर तक काँप कर बोला — अगर मैं इस्लाम कबूल कर लूँ तो मेरे साथियों को तो कोई तकलीफ न दी जाएगी?

दूसरा — हाँ, अगर तुम जमानत करो कि वे भी इस्लाम कबूल कर लेंगे।

पहला — हम इस शर्त को नहीं मानते। तुम्हारे साथियों से हम खुद निपट लेंगे। तुम अपनी कहो। क्या चाहतें हो? हाँ या नहीं?

धर्मदास ने जहर का घूँट पी कर कहा — मैं खुदा पर ईमान लाता हूँ।

पाँचों ने एक स्वर से कहा — अलहमद व लिल्लाह! और बारी-बारी से धर्मदास को गले लगाया।

## 3

श्यामा हृदय को दोनों हाथों से थामे यह दृश्य देख रही थी। वह मन में पछता रही थी कि मैंने क्यों इन्हें पानी लेने भेजा? अगर मालूम होता कि विधि यों धोखा देगा, तो मैं प्यासों मर जाती, पर इन्हें न जाने देती। श्यामा से कुछ दूर ख़ज़ाचंद भी खड़ा था। श्यामा ने उसकी ओर क्षुब्ध नेत्रों से देख कर कहा — अब इनकी जान बचती नहीं मालूम होती।

ख़ज़ाचंद — बंदूक भी हाथ से छूट पड़ी है।

श्यामा — न जाने क्या बातें हो रही है। अरे गजब। दुष्ट ने उनकी ओर बंदूक तानी है!

ख़ज़ाचंद — जरा और समीप आ जाएँ, तो मैं बंदूक चलाऊँ। इतनी दूर की मार इसमें नहीं है।

श्यामा — अरे! देखो, वे सब धर्मदास को गले लगा रहा है। यह माजरा क्या है?

ख़ज़ाचंद — कुछ समझ में नहीं आता।

श्यामा — कहीं इसने कलमा तो नहीं पढ़ लिया?

ख़ज़ाचंद — नहीं, ऐसा क्या होगा, धर्मदास से मुझे ऐसी आशा नहीं है।

श्यामा — मैं समझ गई। ठीक यहीं बात है। बंदूक चलाओ।

ख़ज़ाचंद — धर्मदास बीच में है। कहीं उसे न लग जाए।

श्यामा — कोई हर्ज नहीं। मैं चाहती हूँ कि पहला निशाना धर्मदास ही पर पड़े। कायर! निर्लज्ज! प्राणों के लिए धर्म त्याग दिया। ऐसी बेहयाई की जिंदगी से मर जाना कहीं अच्छा है। क्या सोचते हो। क्या तुम्हारे भी हाथ-पाँव फूल गए। लाओ, बंदूक मुझे दे दो। मैं इस कायर को अपने हाथों से मारूँगी।

ख़ज़ाचंद — मुझे विश्वास नहीं होता कि धर्मदास...।

श्यामा — तुम्हें कभी विश्वास न आएगा। लाओ, बंदूक मुझे दे दो। खड़े ताकते हो। क्या जब वे सिर पर आ जाएँगे, तब बंदूक चलाओगे? क्या तुम्हें भी यह मंजूर है कि मुसलमान होकर अपनी जान बचाओ? अच्छी बात है, जाओ। श्यामा अपनी रक्षा आप कर सकती है; मगर उसे अब मुँह न दिखाना।

ख़ज़ाचंद ने बंदूक चलाई। एक सवार की पगड़ी को उड़ाती हुई निकल गई। जिहादियों ने 'अल्लाहो अकबर!' की हाँक लगाई। दूसरी गोली चली और घोड़े की छाती पर बैठी। घोड़ा वहीं गिर पड़ा। जिहादियों ने फिर 'अल्लाहो अकबर!' की सदा लगाई और आगे बढ़े। तीसरी गोली आई। एक पठान लोट गया; पर इससे पहले कि चौथी गोली छूटे, पठान ख़ज़ाचंद के सिर पर पहुँच गए और बंदूक उसके हाथ से छीन ली।

एक सवार ने ख़ज़ाचंद की ओर बंदूक तान कर कहा — उड़ा दूँ सिर मरदूद का इससे खून का बदला लेना है।

दूसरे सवार ने जो इनका सरदार मालूम होता था, कहा — नहीं-नहीं, यह दिलेर आदमी है। ख़ज़ाचंद, तुम्हारे ऊपर दगा, खून और कुफ्र, ये तीन इल्ज़ाम है, और तुम्हें कत्ल कर देना ऐन सवाब है, लेकिन हम तुम्हें एक मौका और देते है। अगर तुम अब भी खुदा और रसूल पर ईमान लाओ, तो हम तुम्हें सीने से लगाने को तैयार है। इसके सिवा तुम्हारे गुनाहों का और कोई कफारा (प्रायश्चित) नहीं है। यह हमारा फैसला है। बोलो, क्या मंजूर है?

चारों पठानों ने कमर से तलवारें निकाल लीं, और उन्हें ख़ज़ाचंद के सिर पर तान दिया मानो 'नहीं' का शब्द मुँह से निकलते ही चारों तलवारें उसकी गरदन पर चल जाएँगी!

ख़ज़ाचंद का मुख-मंडल विलक्षण तेज से आलोकित हो उठा। उसकी दोनों आँखें स्वर्गीय ज्योति से चमकने लगी। दृढ़ता से बोला — तुम एक हिंदू से यह प्रश्न कर रहे हो? क्या तुम समझते हो कि जान के खौफ से वह अपना ईमान बेच डालेगा? हिंदू को अपने ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी नबी, वली या पैगंबर की जरूरत नहीं।

चारों पठानों ने कहा — काफिर! काफिर!

ख़ज़ाचंद — अगर तुम मुझे काफिर समझो तो समझो। मैं अपने को तुमसे ज्यादा खुदापरस्त समझता हूँ। मैं उस धर्म को मानता हूँ, जिसकी बुनियाद अक्ल पर है। आदमी में अक्ल खुदा का नूर (प्रकाश) है और हमारा ईमान हमारी अकल...।

चारों पठानों के मुँह से निकला — 'काफिर! काफिर!' और चारों तलवारें एक साथ ख़ज़ाचंद की गरदन पर गिर पड़ी। लाश जमीन पर फड़कने लगी। धर्मदास सिर झुकाए खड़ा रहा। वह दिल में खुश था कि अब ख़ज़ाचंद की सारी संपत्ति उसके हाथ लगेगी और वह श्यामा के साथ सुख से रहेगा; पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। श्यामा अब तक मर्माहत-सी खड़ी यह दृश्य देख रही थी। ज्योंही ख़ज़ाचंद की लाश जमीन पर गिरी, वह झपटकर लाश के पास आई और उसे गोद में लेकर आँचल

से रक्त-प्रवाह को रोकने की चेष्टा करने लगी। उसके सारे कपड़े खून से तर हो गए। उसने बड़ी सुंदर बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ पहनी होंगी, पर इस रक्त-रंजित साड़ी की शोभा अतुलनीय थीं। बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ रूप की शोभा बढ़ाती थीं, यह रक्त-रंजित साड़ी आत्मा की छवि दिखा रही थी।

ऐसा जान पड़ा मानों ख़ज़ाचंद की बुझती आँखें एक अलौकिक ज्योति से प्रकाशमान हो गई है। उन नेत्रों में कितना संतोष, कितनी तृप्ति, कितनी उत्कंठा भरी हुई थी। जीवन में जिसने प्रेम की भिक्षा न पाई, वह मरने पर उत्सर्ग जैसे स्वर्गीय रत्न का स्वामी बना हुआ था।

## 4

धर्मदास ने श्यामा का हाथ पकड़कर कहा — श्यामा, होश में आओ, तुम्हारे सारे कपड़े खून से तर हो गए हैं। अब रोने से क्या हासिल होगा? ये लोग हमारे मित्र है, हमें कोई कष्ट न देंगे। हम फिर अपने घर चलेंगे और जीवन के सुख भोगेंगे?

श्यामा ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — तुम्हें अपना घर प्यारा है, तो जाओ। मेरी चिंता मत करो, मैं अब न जाऊँगी। हाँ,

अगर अब भी मुझ से कुछ प्रेम हो तो इन लोगों से इन्हीं की तलवार से मेरा भी अन्त करा दो।

धर्मदास करुणा-कातर स्वर में बोला — श्यामा, यह तुम क्या कहती हो, तुम भूल गई कि हममें-तुममें क्या बातें हुई थी? मुझे खुद ख़ज़ाचंद के मारे जाने का शोक है; पर भावी को कौन टाल सकता है?

श्यामा — अगर यह भावी थी, तो यह भी भावी है कि मैं अपने अधम जीवन उस पवित्र आत्मा के शोक में काटूँ, जिसका मैंने सदैव निरादर किया। यह कहते-कहते श्यामा का शोकोद्गार, जो अब तक क्रोध और घृणा के नीचे दबा हुआ था, उबल पड़ा और वह ख़ज़ाचंद के निस्पंद हाथों को अपने गले में डालकर रोने लगी।

चारों पठान यह अलौकिक अनुराग और आत्म-समर्पण देखकर करुणार्द्र हो गए। सरदार ने धर्मदास से कहा — तुम इस पाकीजा खातून से कहो, हमारे साथ चले। हमारी जाति से इसे कोई तकलीफ न होगी। हम इसकी दिल से इज्जत करेंगे।

धर्मदास के हृदय में ईर्ष्या की आग धधक रही थी। वह रमणी, जिसे वह अपनी समझे बैठा था, इस वक्त उसका मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। बोला — श्यामा, तुम चाहो इस लाश पर

आँसुओं की नदी बहा दो, पर यह जिंदा न होगी। यहाँ से चलने की तैयारी करो। मैं साथ के लोगों को भी जाकर समझाता हूँ। खान लोग हमारी रक्षा करने की जिम्मा ले रहे हैं। हमारी जायदाद, जमीन, दौलत सब हमको मिल जाएगी। ख़ज़ाचंद की दौलत के भी हमीं मालिक होंगे। अब देर न करो। रोने-धोने से अब कुछ हासिल नहीं।

श्यामा ने धर्मदास को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा — और इस वापसी की कीमत क्या देनी होगी? वही जो तुमने दी है?

धर्मदास यह व्यंग्य न समझ सका। बोला — मैंने तो कोई कीमत नहीं दी। मेरे पास था ही क्या?

श्यामा — ऐसा न कहो। तुम्हारे पास वह खजाना था, जो तुम्हें आज कई लाख वर्ष हुए ऋषियों ने प्रदान किया था। जिसकी रक्षा रघु और मनु, राम और कृष्ण, बुद्ध और शंकर, शिवाजी और गोविंदसिंह ने की थी। उस अमूल्य भंडार को आज तुमने तुच्छ प्राणों के लिए खो दिया। इन पाँवों पर लौटना तुम्हें मुबारक हो! तुम शौक से जाओ। जिन तलवारों ने वीर ख़ज़ाचंद के जीवन का अन्त किया, उन्होंने मेरे प्रेम का फैसला कर दिया। जीवन में इस वीरात्मा का मैंने जो निरादर और अपमान किया, इसके साथ जो उदासीनता दिखाई उसका अब मरने के बाद प्रायश्चित करूँगी।

यह धर्म पर मरनेवाला वीर था, धर्म को बेचनेवाला कायर नहीं! अगर तुममें अब भी कुछ शर्म और हया है, तो इसके क्रिया-कर्म करने में मेरी मदद करो और यदि तुम्हारे साथियों को यह भी पसंद न हो, तो रहने दो, मैं सब कुछ कर लूँगी।

पठानों के हृदय-दर्द से तड़प उठे। धर्मान्धता का प्रकोप शांत हो गया। देखते-देखते वहाँ लकड़ियों का ढेर लग गया। धर्मदास ग्लानि से सिर झुकाए बैठा था और चारों पठान लकड़ियाँ काट रहे थे। चिता तैयार हुई और जिन निर्दय हाथों ने ख़ज़ाचंद की जान ली थी उन्हीं ने शव को चिता पर रखा। ज्वाला प्रचंड हुई। अग्निदेव अपने अग्निमुख से उस धर्मवीर का यश गा रहे थे।

## 5

पठानों ने ख़ज़ाचंद की सारी जंगम संपत्ति लाकर श्यामा को दे दी। श्यामा ने वहीं पर एक छोटा-सा मकान बनवाया और वीर ख़ज़ाचंद की उपासना में जीवन के दिन काटने लगी। उसकी वृद्धा बुआ तो उसके साथ रह गयी, और सब लोग पठानों के साथ लौट गए, क्योंकि अब मुसलमान होने की शर्त न थी। ख़ज़ाचंद

के बलिदान ने धर्म के भूत को परास्त कर दिया। मगर धर्मदास को पठानों ने इस्लाम की दीक्षा लेने पर मजबूर किया। एक दिन नियत किया गया। मसजिद में मुल्लाओं का मेला लगा और लोग धर्मदास को उसके घर से बुलाने आए; पर उसका वहाँ पता न था। चारों तरफ तलाश हुई। कहीं निशान न मिला।

साल-भर गुजर गया। संध्या का समय था। श्यामा अपने झोंपड़े के सामने बैठी भविष्य की मधुर कल्पनाओं में मग्न थी। अतीत उसके लिए दुःख से भरा हुआ था। वर्तमान केवल एक निराशामय स्वप्न था। सारी अभिलाषाएँ भविष्य पर अवलंबित थी। और भविष्य भी वह, जिसका इस जीवन से कोई संबंध न था! आकाश पर लालिमा छाई हुई थी। सामने की पर्वतमाला स्वर्णमयी शांति के आवरण से ढकी हुई थी। वृक्षों की काँपती हुई पत्तियों से सरसराहट की आवाज निकल रही थी, मानों कोई वियोगी आत्मा पत्तियों पर बैठी हुई सिसकियाँ भर रही हो।

उसी वक्त एक भिखारी फटे हुए कपड़े पहने झोंपड़ी के सामने खड़ा हो गया। कुत्ता जोर से भूँक उठा। श्यामा ने चौंककर देखा और चिल्ला उठी — धर्मदास!

धर्मदास ने वहीं जमीन पर बैठते हुए कहा — हाँ श्यामा, मैं अभागा धर्मदास ही हूँ। साल-भर से मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे

खोज निकालने के लिए इनाम रख दिया गया है। सारा प्रांत मेरे पीछे पड़ा हुआ है। इस जीवन से अब ऊब उठा हूँ; पर मौत भी नहीं आती।

धर्मदास एक क्षण के लिए चुप हो गया। फिर बोला — क्यों श्यामा, क्या अभी तुम्हारा हृदय मेरी तरफ से साफ नहीं हुआ! तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया!

श्यामा ने उदासीन भाव से कहा — मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझती।

'मैं अब भी हिंदू हूँ। मैंने इस्लाम नहीं कबूल किया है।'

'जानती हूँ!'

'यह जानकर भी तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती!'

श्यामा ने कठोर नेत्रों से देखा और उत्तेजित होकर बोली — तुम्हें अपने मुँह से ऐसी बातें निकालते शर्म नहीं आती! मैं उस धर्मवीर की ब्याहता हूँ, जिसने हिंदू-जाति का मुख उज्जवल किया है। तुम समझते हो कि वह मर गया! यह तुम्हारा भ्रम है। वह अमर है। मैं इस समय भी उसे स्वर्ग में बैठा देख रही हूँ। तुमने हिंदू-जाति को कलंकित किया है। मेरे सामने से दूर हो जाओ।

धर्मदास ने कुछ जवाब न दिया! चुपके से उठा, एक लंबी साँस ली और एक तरफ चल दिया।

प्रातःकाल श्यामा पानी भरने जा रही थी, तब उसने रास्ते में एक लाश पड़ी हुई देखी। दो-चार गिद्ध उस पर मँडरा रहे थे। उसका हृदय धड़कने लगा। समीप जाकर देखा और पहचान गई। यह धर्मदास की लाश थी।

# फातिहा

सरकारी अनाथालय से निकलकर मैं सीधा फौज में भरती किया गया। मेरा शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मेरे हाथ पैर कहीं लम्बे और स्नायु-युक्त थे। मेरी लम्बाई पूरी छह फुट नौ इंच थी। पलटन में 'देव' के नाम से विख्यात था। जब से मैं फौज में भरती हुआ, तब से मेरी किस्मत ने पलटा खाना शुरू किया और मेरे हाथ से कई ऐसे काम हुए, जिनसे प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आय भी बढ़ती गई। पलटन का हर एक जवान मुझे जानता था। मेजर सरदार सिंह हिम्मतसिंह की कृपा मेरे ऊपर बहुत थी; क्योंकि मैंने एक बार उनकी प्राण-रक्षा की थी। इसके अतिरिक्त न जाने क्यों उनको देखकर मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा का संचार होता। मैं यही समझता कि यह मेरे पूज्य है और सरदार साहब का भी व्यवहार मेरे साथ स्नेह-युक्त और मित्रता-पूर्ण था।

मुझे अपने माता-पिता का पता नहीं है, और न उनकी कोई स्मृति ही है। कभी-कभी जब मैं इस प्रश्न पर विचार करने बैठता हूँ, तो कुछ धुँधले-से दृश्य दिखाई देते हैं — बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच में

रहता हुआ एक परिवार, और एक स्त्री का मुख, जो शायद मेरी माँ का होगा। पहाड़ी के बीच में तो मेरा पालन-पोषण ही हुआ है। पेशावर से 80 मील दूर पूर्व एक ग्राम है, जिसका नाम 'कुलाहा' है, वहीं पर एक सरकारी अनाथालय है। इसी में मैं पाला गया। यहाँ से निकलकर सीधा फौज में चला गया। हिमालय की जलवायु से मेरा शरीर बना है, और मैं वैसा ही दीर्घाकृति आदि बर्बर हूँ, जैसे कि सीमाप्रांत के रहने वाले अफ्रीदी, गिलजई महसूदी आदि पहाड़ी कबीलों के लोग होते है। यदि उनके और मेरे जीवन में कुछ अन्तर है तो वह सभ्यता का। मैं थोड़ा बहुत पढ़-लिख लेता हूँ, बातचीत कर लेता हूँ, अदब कायदा जानता हूँ। छोटे-बड़े का लिहाज कर सकता हूँ, किंतु मेरी आकृति वैसी ही है, जैसी कि किसी भी सरहदी पुरुष की हो सकती है।

कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा बलवती होती कि स्वछंद होकर पहाड़ों की सैर करूँ; लेकिन जीविका का प्रश्न मेरी इच्छा को दबा देता। उस सूखे देश में खाने का कुछ भी ठिकाना नहीं था। वहाँ के लोग एक रोटी के लिए मनुष्य की हत्या कर डालते, एक कपड़े के लिए मुरदे की लाश चीड़-फाड़कर फेंक देते और एक बंदूक के लिए सरकारी फौज पर छापा मारते है। इसके अतिरिक्त उन जंगली जातियों का एक-एक मनुष्य मुझे जानता था और मेरे खून का प्यासा था। यदि मैं उन्हें मिल

जाता, तो जरूर मेरा नाम-निशान दुनिया से मिट जाता। न जाने कितने अफ्रीदियों और ग़िलज़इयों को मैंने मारा, कितनों को पकड़-पकड़कर सरकारी जेलखानों में भर दिया था और न मालूम उनके कितने गाँवों को जलाकर खाक कर दिया था। मैं भी बहुत सतर्क रहता, और जहाँ तक होता, एक स्थान पर हफ्ते से अधिक कभी न रहता।

## 2

एक दिन मैं मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर की ओर जा रहा था। उस समय दिन को दो बजे थे। आजकल छुट्टी-सी थी; क्योंकि अभी हाल ही में कई गाँव भस्मीभूत कर दिए गए थे और जल्दी उनकी तरफ से कोई आशंका नहीं थी। हम लोग निश्चिंत होकर गप्प और हँसी-खेल में दिन गुजारते थे। बैठे-बैठे दिल घबरा गया था। सिर्फ मन बहलाने के लिए सरदार साहब के घर की ओर चला; किंतु रास्ते में एक दुर्घटना हो गई। एक बूढ़ा अफ्रीदी, जो अब भी हिंदुस्तानी जवान का सिर मरोड़ देने के लिए काफी था, एक फौजी जवान से भिड़ा हुआ था। मेरे देखते-देखते उसने अपनी कमर से एक तेज छुरा निकाला और उसकी छाती

में घुसेड़ दिया। उस जवान के पास एक कारतूसी बंदूक थी, बस उसी के लिए यह सब लड़ाई थी। पलक मारते-मारते, फौजी जवान का काम तमाम हो गया और बूढ़ा बंदूक लेकर भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा; लेकिन दौड़ने में वह इतना तेज थी कि बात-की-बात में आँखों से ओझल हो या। मैं भी बेतहाशा उसका पीछा कर रहा था। आखिर सरहद पर पहुँचते-पहुँचते उससे बीस हाथ की दूरी पर रह गया। उसने पीछे फिर कर देखा, मैं अकेला उसका पीछा कर रहा था। उसने बंदूक की निशाना मेरी ओर साधा। मैं फौरन ही जमीन पर लेट गया और बंदूक की गोली मेरे सामने पत्थर पर लगी। उसने समझा कि मैं गोली का शिकार हो गया। वह धीरे-धीरे सतर्क पदों से मेरी ओर बढ़ा। मैं साँस खींचकर लेट गया। जब वह बिलकुल मेरे पास आ गया, शेर की तरह उछलकर मैंने उसकी गरदन पकड़कर जमीन पर पलट दिया और छुरा निकालकर उसकी छाती में घुसेड़ दिया। अफ्रीदी की जीवन-लीला समाप्त हो गई। इसी समय पलटन के कई लोग भी आ पहुँचे। चारों तरफ से लोग मेरी प्रशंसा करने लगे। अभी तक मैं अपने आपे में न था; लेकिन अब मेरी सुध-बुध वापस आई। न मालूम क्यों उस बुड्ढे की ओर देखकर मेरा जी घबराने लगा। अभी तक न मालूम कितने ही अफ्रीदियों को मारा था; लेकिन कभी भी मेरा हृदय इतना घबराया न था। मैं जमीन

पर बैठ गया और उस बुड्ढे की ओर देखने लगा। पलटन के जवान भी पहुँच गए और मुझे घायल जानकर अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। धीरे-धीरे मैं उठा और चुपचाप शहर की ओर चला। सिपाही मेरे पीछे उसी बुड्ढे की लाश घसीटते हुए चले। शहर के निवासियों ने मेरी ओर जय-जयकार का ताँता बाँध दिया। मैं चुपचाप मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर में घुस गया।

सरदार साहब उस समय अपने खास कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर पूछा — क्यों, उस अफ्रीदी को मार आए?

मैंने बैठते हुए कहा — जी हाँ, लेकिन सरदार साहब न जाने क्यों मैं कुछ बुजदिल हो गया हूँ।

सरदार साहब ने आश्चर्य से कहा — असदखाँ और बुजदिल! यह दोनों एक जगह होना नामुमकिन है।

मैंने उठते हुए कहा — सरदार साहब, यहाँ तबीयत नहीं लगती, उठकर बाहर बरामदे में बैठिए। न मालूम क्यों मेरा दिल घबराता है।

सरदार साहब उठकर मेरे पास आए और स्नेह से मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा — असद, तुम दौड़ते-दौड़ते थक गए हो, और

कोई बात नहीं है। अच्छा चलो बरामदे में बैठें। शाम की ठंडी हवा तुम्हें ताजा कर देगी।

सरदार साहब और मैं, दोनों बरामदे में जाकर कुर्सियों पर बैठ गए। शहर के चौमुहाने पर उस वृद्ध की लाश रखी गई थी और उसके चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। बरामदे में जब मुझे बैठ हुए देखा, तो लोग मेरी ओर इशारा करने लगे। सरदार साहब ने यह दृश्य देखकर कहा — असदखाँ, देखा, लोगों की निगाह में तुम कितने ऊँचे हो? तुम्हारी वीरता को यहाँ का बच्चा-बच्चा सराहता है। अब भी तुम कहते हो कि मैं बुजदिल हूँ।

मैंने मुस्कराकर कहा — जब से इस बुड्ढे को मारा है, तब से मेरा दिल मुझे धिक्कार रहा है।

सरदार साहब ने हँसकर कहा — क्योंकि तुमने अपने से निर्बल को मारा है।

मैंने अपनी दिलजमई करते हुए कहा — मुमकिन है, ऐसा ही हो।

इसी समय एक अफ्रीदी रमणी धीरे-धीरे आकर सरदार साहब के मकान के सामने खड़ी हो गई। ज्यों ही सरदार साहब ने देखा, उनका मुँह सफेद पड़ गया। उनकी भयभीत दृष्टि उसकी ओर से फिर कर मेरी ओर हो गई। मैं भी आश्चर्य से उनके मुँह की ओर निहारने लगा। उस रमणी का-सा सुगठित शरीर मरदों का

भी कम होता है। खाकी रंग के मोटे कपड़े का पायजामा और नीले रंग का मोटा कुरता पहने हुए थी। बलूची औरतों की तरह सिर पर रूमाल बाँध रखा था। रंग चंपई था और यौवन की आभा फूट-फूटकर बाहर निकल पड़ती थी। इस समय उनकी आँखों में ऐसी भीषणता थी, जो किसी के दिल में भय का संचार करती। रमणी की आँखें सरदार साहब की ओर से फिर कर मेरी ओर आई और उसने यों घूरना शुरू किया कि मैं भी भयभीत हो गया। रमणी ने सरदार साहब की ओर देखा और फिर जमीन की ओर थूक दिया और फिर मेरी ओर देखती हुई धीरे-धीरे दूसरी ओर चली गई।

रमणी को जाते देख सरदार साहब की जान में जान आई। मेरे सिर पर से भी एक बोझ हट गया।

मैंने सरदार साहब से पूछा — क्यों, क्या आप जानते हैं? सरदार ने एक गहरी ठंड़ी साँस लेकर कहा — हाँ, बखूबी। एक समय था, जब यह मुझ पर जान देती थी और वास्तव में अपनी जान पर खेलकर मेरी रक्षा भी की थी; लेकिन अब इसको मेरी सूरत से नफरत है। इसी ने मेरी स्त्री की हत्या की है। इसे जब कभी देखता हूँ। मेरे होश-हवास काफूर हो जाते है और वही दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचने लगता है।

मैंने भय-विह्वल स्वर से पूछा — सरदार साहब, उसने मेरी ओर भी तो बड़ी भयानक दृष्टि से देखा था। न मालूम क्यों मेरे भी रोएँ खड़े हो गए थे।

सरदार साहब ने सिर हिलाते हुए बड़ी गंभीरता से कहा — असदखाँ, तुम भी होशियार रहो। शायद इस बूढे अफ्रीदी से इसका संपर्क है। मुमकिन है, यह उसका भाई या बाप हो। तुम्हारी ओर उसका देखना कोई मानी रखता है। बड़ी भयानक स्त्री है।

सरदार साहब की बात सुनकर मेरी नस-नस काँप उठी। मैंने बातों का सिलसिला दूसरी ओर फेरते हुए कहा — सरदार साहब, आप इसको पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते? इसको फाँसी हो जाएगी।

सरदार साहब ने कहा — भाई असदखाँ, इसने मेरे प्राण बचाए थे और शायद अब भी मुझे चाहती है। इसकी कथा बहुत लंबी है। कभी अवकाश मिला तो कहूँगा।

सरदार की बातों से मुझे भी कुतूहल हो रहा था। मैं उनसे वह वृत्तांत सुनाने के लिए आग्रह करना शुरू कर किया। पहले तो उन्होंने टालना चाहा; पर जब मैंने बहुत जोर दिया तो विवश

होकर बोले — असद, मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूँ; इसलिए तुमसे कोई परदा न रखूँगा। लो, सुनो —

## 3

असदखाँ, पाँच साल पहले मैं इतना वृद्ध न था, जैसा कि अब दिखाई पड़ता हूँ। उस समय मेरी आयु 40 वर्ष से अधिक न थी। एक भी बाल सफेद न हुआ था और समय मुझमें इतना बल था कि दो जवानों को मैं लड़ा देता। जर्मनों से मैंने मुठभेड़ की है और न मालूम कितनों को यमलोक का रास्ता बता दिया। जर्मन-युद्ध के बाद मुझे यहाँ सीमाप्रांत पर काली पलटन का मेजर बनाकर भेजा गया। जब पहले-पहले मैं यहाँ आया, तो यहाँ कठिनाइयाँ सामने आई; लेकिन मैंने उसकी जरा परवाह न की और धीरे-धीरे उन सब पर विजय पाई। सबसे पहले यहाँ आकर मैंने पश्तो सीखना शुरू किया। पश्तों के बाद और जबानें सीखीं; यहाँ तक कि मैं उनको बड़ा आसानी और मुहाविरों के साथ बोलने लगा; फिर इसके बाद कई आदमियों की टोलियाँ बनाकर देश का अन्तर्भाग भी छान डाला। इस पड़ताल में कई बार मैं मरते-मरते बचा; किंतु सब कठिनाइयाँ झेलते हुए मैं यहाँ पर

सकुशल रहने लगा। उस जमाने में मेरे हाथ से ऐसे-ऐसे काम हो गए, जिनसे सरकार में मेरी बड़ी नामवरी और प्रतिष्ठा हो गई। एक बार कर्नल हैमिलटन की मेमसाहब को मैं अकेले छुड़ा लिया था और कितने ही देशी आदमियों और औरतों के प्राण मैंने बचाए हैं। यहाँ पर आने के तीन साल बाद से मेरी कहानी आरंभ होती है।

एक रात को मैं अपने कैंप में लेटा हुआ था। अफ्रीदियों से लड़ाई हो रही थी। दिन के थके-माँदे सैनिक गाफिल पड़े हुए थे। कैंप में सन्नाटा था। लेटे-लेटे मुझे भी नींद आ गई। जब मेरी नींद खुली तो देखा कि छाती पर एक अफ्रीदी — जिसकी आयु मेरी आयु से दूनी होगी — सवार है और मेरी छाती में एक छुरा घुसड़ेने ही वाला है। मैं पूरी तरह से उसके अधीन था, कोई भी बचने का उपाय न था, किंतु उस समय मैंने बड़े ही धैर्य से काम लिया और पश्तो भाषा में कहा — मुझे मारो नहीं, मैं सरकारी फौज में अफसर हूँ, मुझे पकड़ ले चलो, सरकार तुमको रुपया देकर मुझे छुड़ाएगी।

ईश्वर की कृपा से मेरी बात उसके मन में बैठ गई। कमर से रस्सी निकालकर मेरे हाथ-पैर बाँधे और फिर कंधे पर बोझ की तरह लाद कर खेमे से बाहर आया। बाहर मार-काट का बाजार गर्म था। उसने एक विचित्र प्रकार से चिल्लाकर कुछ कहा और

मुझे कंधे पर लादे वह जंगल की ओर भागा। यह मैं कह सकता हूँ कि उसको मेरा बोझ कुछ भी न मालूम होता था और बड़ी तेजी से भागा जा रहा था। उसके पीछे-पीछे कई आदमी जो उसी के गिरोह के थे, लूट का माल लिये हुए भागे चले आ रहे थे।

प्रातःकाल हम लोग एक तालाब के पास पहुँचे। तालाब बड़े-बड़े पहाड़ों से घिरा हुआ था। उसका पानी बड़ा निर्मल था और जंगली पेड़ इधर-उधर उग रहे थे। तालाब के पास पहुँचकर हम सब लोग ठहरे। बुड्ढे ने, जो वास्तव में उस गिरोह का सरदार था, मुझे पत्थर पर डाल दिया। मेरी कमर में बड़ी जोर से चोट लगी, ऐसा मालूम हुआ कि कोई हड्डी टूट गई है; लेकिन ईश्वर की कृपा से हड्डी टूटी न थी। सरदार ने मुझे पृथ्वी पर डालने के बाद कहा — क्यों, कितना रुपया दिलाएगा?

मैंने अपनी वेदना दबाते हुए कहा — पाँच सौ रुपए।

सरदार ने मुँह बिगाड़कर कहा — नहीं, इतना कम नहीं लेगा। दो हजार से एक पैसा भी कम मिला, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा — सरकार इतनी रुपया काले आदमी के लिए नहीं खर्च करेगी।

सरदार ने छुरा बाहर निकालते हुए कहा — तब फिर क्यों कहा था कि सरकार इनाम देगी! ले तो फिर यहीं मर।

सरदार छुरा लिये मेरी तरफ बढ़ा।

मैं घबराकर बोला — अच्छा. सरदार, मैं तुमको दो हजार दिलवा दूँगा।

सरदार रुक गया और बड़े जोर से हँसा। उसकी हँसी की प्रतिध्वनि ने निर्जीव पहाड़ों को भी कँपा दिया। मैंने मन ही मन कहा — बड़ा भयानक आदमी है।

गिरोह के दूसरे आदमी अपनी-अपनी लूट का माल सरदार के सामने रखने लगे। उसमें कई बंदूकें, कारतूस, रोटियाँ और कपड़े थे। मेरी भी तलाशी ले गई। मेरे पास एक छह फायर का तमंचा था। तमंचा पाकर सरदार उछल पड़ा, और उसे फिरा-फिराकर देखने लगा। वहीं पर उसी समय हिस्सा-बाँट शुरू हो गया। बराबर का हिस्सा लगा; लेकिन मेरा रिवाल्वर उसमें नहीं शामिल किया गया। वह सरदार साहब की खास चीज थी।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद, फिर यात्रा शुरू हुई। इस बार मेरे पैर खोल दिए गए और साथ-साथ चलने को कहा — मेरी आँखों पर पट्टी भी बाँध दी गई, ताकि मैं रास्ता न देख सकूँ। मेरे

हाथ रस्सी के बँधे हुए थे, और उसका एक सिरा एक अफ्रीदी के हाथ में था।

चलते-चलते मेरे पैर दुखने लगे, लेकिन उनकी मंजिल पूरी न हुई। सिर पर जेठ का सूरज चमक रहा था, पैर जल रहे थे, प्यास से गला सूखा जा रहा था; लेकिन वे बराबर चले जा रहे थे। वे आपस में बातें करते जाते थे; लेकिन अब मैं उनकी एक बात भी न समझ पाता। कभी-कभी एक-आध शब्द तो समझ जाता; लेकिन अंशों में मैं कुछ भी न समझ पाता था। वे लोग इस समय अपनी विजय पर प्रसन्न थे, और एक अफ्रीदी ने अपनी भाषा में एक गीत गाना शुरू किया। गीत बड़ा ही अच्छा था।

असदखाँ ने पूछा — सरदार साहब, वह गीत क्या था?

सरकार साहब ने कहा — उस गीत के भाव याद है। भाव यह है कि एक अफ्रीदी जा रहा है, उसकी स्त्री कहती है — कहाँ जाते हो?

युवक उत्तर देता है — जाते है तुम्हारे लिए रोटी और कपड़ा लाने।

स्त्री पूछती है — और कुछ अपने बच्चों के लिए नहीं लाओगे?

युवक उत्तर देता है — बच्चे के लिए बंदूक लाऊँगा, ताकि वह जब बड़ा हो, तो वह भी लड़े और अपनी प्रेमिका के लिए रोटी और कपड़ा ला सके।

स्त्री कहती है — यह कहो, कब आओगे?

युवक उत्तर देता है — आऊँगा तभी, जब कुछ जीत लाऊँगा; नहीं तो वहीं मर जाऊँगा।

स्त्री कहती है — शाबाश, जाओ, तुम वीर हो, तुम जरूर सफल होंगे।

गीत सुनकर मैं मुग्ध हो गया। गीत समाप्त होते-होते हम लोग भी रुक गए। मेरी आँखें खोली गईं। सामने बड़ा-सा मैदान था और चारों ओर गुफाएँ बनी हुई थीं, जो उन्हीं लोगों के रहने की जगह थी।

फिर मेरी तलाशी ली गई और इस दफे सब कपड़े उतरवा लिये गए, केवल पायजामा रह गया। सामने एक बड़ा-सा शिलाखंड रखा हुआ था। सब लोगों ने मिलकर उसे हटाया और मुझे उसी की ओर ले चले। मेरी आत्मा काँप उठी। यह तो जिंदा कब्र में डाल देंगे। मैंने बड़ी ही वेदनापूर्ण दृष्टि से सरदार की ओर देखकर कहा — सरदार, सरकार तुम्हें रुपए देगी। मुझे मारो नहीं।

सरदार ने हँसकर कहा — तुम्हें मारता कौन है, कैद किया जाता है। इस घर में बन्द रहोगे, जब रुपया आ जाएगा, छोड़ दिए जाओगे।

सरदार की बात सुनकर मेरे प्राण में प्राण आए। सरदार ने मेरी पाकेटबुक और पेंसिल सामने रखते हुए कहा — लो, इसमें लिख दो। अगर एक पैसा भी कम आया, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।

मैंने कमिश्नर साहब के नाम एक पत्र लिखकर दे दिया। उन लोगों ने मुझे उसी अंध कूप में लटका दिया और रस्सी खींच ली।

## 4

सरदार साहब ने एक लंबी साँस ली और कहना शुरू किया — असदखाँ, जिस समय मैं उस कुएँ में लटकाया जा रहा था, मेरी अन्तरात्मा काँप रही थी। नीचे घटाटोप अंधकार की जगह हल्की चाँदनी छाई हई थी। भीतर से गुफा न बहुत छोटी थी और न बहुत बड़ी थी। फर्श खुरखदा था, ऐसा मालूम होता था कि बरसों यहाँ पानी की धारा गिरी है और यह गढ़ा तब जाकर तैयार हुआ

है। पत्थर की मोटी दीवार से यह कूप घिरा हुआ था और उसमें जहाँ-तहाँ छेद थे, जिनसे प्रकाश और वायु आती थी। नीचे पहुँचकर मैं अपनी दशा का हेर-फेर सोचने लगा। दिल बहुत घबराता था। कालकोठरी की यंत्रणा भोगना भी भाग्य में विधाता ने लिख दिया था।

धीरे-धीरे संध्या का आगमन हुआ। उन लोगों ने अभी तक मेरी कुछ खोज-खबर न ली थी! भूख से आत्मा व्याकुल हो रही थी। बार-बार विधाता और अपने को कोसता। जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तो विधाता को कोसता है।

अन्त में एक छेद से चार बड़ी-बड़ी रोटियाँ किसी ने बाहर से फेंकीं। जिस तरह कुत्ता एक रोटी के टुकड़े पर दौड़ता है, वैसे ही मैं दौड़ा और उठाकर उस छेद की ओर देखने लगा; लेकिन फिर किसी ने कुछ न फेंका, और न कुछ आदेश ही मिला। मैं बैठकर रोटियाँ खाने लगा। थोड़ी देर बाद उसी छेद पर एक लोहे का प्याला रख दिया गया, जिसमें पानी भरा हुआ था। मैंने परमात्मा को धन्यवाद देकर पानी उठाकर पिया। जब आत्मा कुछ तृप्त हुई, तो कहा — थोड़ा पानी और चाहिए।

इस पर दीवार की उस ओर से एक भीषण हँसी की प्रतिध्वनि सुनाई दी और किसी ने खनखनाते हुए स्वर में कहा — पानी अब कल मिलेगा। प्याला दे दो, नहीं तो कल भी पानी नहीं मिलेगा।

क्या करता, हार कर प्याला वहीं पर रख दिया।

इसी प्रकार कई दिन बीत गए। नित्य दोनों समय चार रोटियाँ और एक प्याला पानी मिल जाता था। धीरे-धीरे मैं भी इस शुष्क जीवन का आदी हो गया। निर्जनता अब उतनी न खलती। कभी-कभी मैं अपनी भाषा में और कभी-कभी पश्तों में गाता। इससे तबीयत कुछ बहल जाती और हृदय भी शांत हो जाती।

एक दिन रात्रि के समय मैं पश्तो गीत गा रहा था। मजनूं झुलसाने वाले बगुलों से कह रहा था — तुममें क्या वह हरारत नहीं, जो काफिलों को जलाकर खाक कर देती है? आखिर यह गरमी मुझे क्यों नहीं जलाती? क्या इसलिए कि मेरे अंदर खुद एक ज्वाला भरी हुई है? देखो, जब लैला ढूँढ़ती हुई यहाँ आवे, तो मेरा शरीर बालू से ढक देना, नहीं तो शीशे की तरह लैला का दिल टूट जाएगा।

मैंने गाना बन्द किया। उसी समय छेद से किसी ने कहा — कैदी, फिर तो गाओ!

मैं चौंक पड़ा। कुछ खुशी भी हुई, कुछ आश्चर्य भी, पूछा — तुम कौन हो?

उसी छेद से उत्तर मिला — मैं हूँ तूरया, सरदार की लड़की।

मैंने पूछा — क्या तुमको यह गाना पसंद है?

तूरया ने उत्तर दिया — हाँ, कैदी गाओ, मैं फिर से सुनना चाहती हूँ।

मैं हर्ष से गाने लगा। गीत समाप्त होने पर तूरया ने कहा — तुम रोज यही गीत मुझे सुनाया करो। इसके बदले मैं तुमको और रोटियाँ और पानी दूँगी।

तूरया चली गई। इसके बाद मैं सदा रात के समय वही गीत गाता, और तूरया सदा दीवार के पास आकर सुनती।

मेरे मनोरंजन का एक मार्ग निकल आया।

धीरे-धीरे एक मास बीत गया, पर किसी ने अभी तक मेरे छुड़ाने के लिए रुपया न भेजा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते मैं अपनी जीवन से निराश होता जाता।

ठीक एक महीने बाद सरदार ने आकर कहा — कैदी, अगर कल तक रुपया न आएगा, तो तुम मार डाले जाओगे। अब रोटियाँ नहीं खिला सकता। मुझे जीवन की कुछ आशा न रही। उस

दिन न मुझसे खाया गया और न कुछ पिया गया। रात हुई, फिर रोटियाँ फेंक दी गई; लेकिन खाने की इच्छा नहीं हुई।

निश्चित समय पर तूरया ने आकर कहा — कैदी, गाना गाओ।

उस दिन मुझे कुछ अच्छा न लगता था। मैं चुप रहा।

तूरया ने फिर कहा — कैदी, क्या सो गया?

मैंने बड़े ही मलिन स्वर में कहा — नहीं, आज सोकर कर क्या करूँ, कल सोऊँगा कि फिर जागना न पड़ेगा।

तूरया ने प्रश्न किया — क्यों क्या सरकार रुपया न भेजेगी?

मैंने उत्तर दिया — भेजेगी तो; लेकिन कल तो मैं मार डाला जाऊँगा, मेरे मरने के बाद रुपया आया भी, तो मेरे किस काम का!

तूरया ने सांत्वनापूर्ण स्वर में कहा — अच्छा, तुम गाओ, मैं कल तुम्हें मरने न दूँगी।

मैंने गाना शुरू किया। जाते समय तूरया ने पूछा — कैदी, तुम कटघरे में रहना पसंद करते हो।

मैंने सहर्ष उत्तर दिया — हाँ, किसी तरह इस नरक से तो छुटकारा मिले।

तूरया ने कहा — अच्छा, कल मैं अब्बा से कहूँगी।

दूसरे ही दिन मुझे अंध कूप से बाहर निकाला गया। मेरे दोनों पैर दो मोटी शहतीरों के छेदों में बन्द कर दिए गए। और वह काठ की ही कीलों से प्राकृतिक गड्ढ़ों में कस दिए गए।

सरदार ने मेरे पास आकर कहा — कैदी, पंद्रह दिन की अवधि और दी जाती है, इसके बाद तुम्हारी गर्दन तन से अलग की दी जाएगी। आज दूसरा खत अपने घर को लिखो। अगर ईद तक रुपया न आया, तो तुम्हीं को हलाल किया जाएगा।

मैंने दूसरा पत्र लिखकर दे दिया।

सरदार के जाने के बाद तूरया आई। यह वही रमणी थी, जो अभी गई है। यही उस सरदार की लड़की थी। यही मेरा गाना सुनती थी और इसी ने सिफारिश करके मेरी जान बचाई थी।

तूरया आकर मुझे देखने लगी। मैं भी उसकी ओर देखने लगा।

तूरया ने पूछा — कैदी घर में तुम्हारे कौन-कौन है?

मैंने बड़े ही कातर स्वर से कहा — दो छोटे-छोटे बालक; और कोई नहीं।

मुझे मालूम था कि अफ्रीदी बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।

तूरया ने पूछा — उनकी माँ नहीं है?

मैंने केवल दया उपजाने के लिए कहा — नहीं, उनकी माँ मर गई। वे अकेले हैं। मालूम नहीं, जीते है या मर गए, क्योंकि मेरे सिवाय उनकी देख-रेख करनेवाला और कोई न था।

कहते-कहते मेरी आँखों में आँसू भर आए। तूरया की भी आँखें सूखी न रहीं। तूरया ने अपना आवेग सँभालते हुए कहा — तो तुम्हारे कोई नहीं है? बच्चे अकेले है? बहुत रोते होंगे!

मैंने मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा -हाँ, रोते जरूर होंगे। कौन जानता है, शायद मर भी गए हों?

तूरया ने बात काटकर कहा — नहीं, अभी नहीं मरे होंगे। अच्छा, तुम रहते कहाँ हो? मैं जाकर पता लगा आऊँगी।

मैंने अपने घर का पता बता दिया। उसने कहा — उस जगह तो मैं कई बार हो आई। बाजार से सौदा लेने मैं अकसर जाती हूँ, अब जाऊँगी तो तुम्हारे बच्चों की भी खबर ले आऊँगी।

मैंने शंकित हृदय से पूछा — कब जाओगी?

उसने कुछ सोचकर कहा — उस जुमेरात को जाऊँगी। अच्छा तुम वही गीत गाओ।

मैंने आज बड़ी उमंग और उत्साह से गाना शुरू किया। मैंने आज देखा कि उसका असर तूरया पर कैसा पड़ता है। उसका

शरीर काँपने लगा, आँखें डबडबा आई, गाल पीले पड़ गए और वह काँपती हुई बैठ गई। उसकी दशा देखकर मैंने दूने उत्साह से गाना शुरू किया और अन्त में कहा — तूरया, अगर मैं मारा जाऊँ, तो मेरे बच्चों को मेरे मरने की खबर देना।

मेरी बात का पूरा असर पड़ा। तूरया ने भर्राए हुए स्वर में कहा — कैदी तुम मरोगे नहीं। मैं तुम्हारे बच्चों के लिए तुम्हें छोड़ दूँगी।

मैंने निराश होकर कहा — तूरया, तुम्हारे छोड़ देने से भी मैं बच नहीं सकता। इस जंगल में भटक-भटककर मर जाऊँगा, और फिर तुम पर भी मुसीबत आ सकती है। अपनी जान के लिए तुमको मुसीबत में न डालूँगा।

तूरया ने कहा — मेरे लिए चिंता न करो। मेरे ऊपर कोई शक न करेगा। मैं सरदार की लड़की हूँ, जो कहूँगी वही सब मान लेंगे, लेकिन क्या तुम जाकर रुपया भेज दोगे।

मैंने प्रसन्न होकर कहा — हाँ तूरया, मैं रुपया भेज दूँगा।

तूरया ने जाते हुए कहा — तो मैं भी तुम्हें छुटकारा दिला दूँगी।

इस घटना के बाद तूरया सदैव मेरे बच्चों के संबंध में बातें करती। असदखाँ, सचमुच इन अफ्रीदियों को बच्चे बहुत प्यारे

होते है। विधाता ने यदि उन्हें बर्बर हिंसक पशु बनाया है, तो मनुष्योचित प्रकृति से वंचित भी नहीं रखा है। आखिर जुमेरात आई और अभी तक सरदार वापस न आया। न कोई इस गिरोह का आदमी ही वापस आया। उस दिन संध्या समय तूरया ने आकर कहा — कैदी, अब मैं नहीं जा सकती; क्योंकि मेरा पिता अभी तक नहीं आया। यदि कल भी न आया, तो मैं तुम्हें रात को छोड़ दूँगी। तुम अपने बच्चों के पास जाना; लेकिन देखा, रुपया भेजना न भूलना। मैं तुम पर विश्वास करती हूँ।

मैंने उस दिन बड़े उत्साह से गाना गाया। आधी रात तक तूरया सुनती रही, फिर सोने चली गई। मैं भी ईश्वर से मनाता रहा कि कल और सरदार न आए। काठ में बँधे-बँधे मेरा पैर बिलकुल निकम्मा हो गया था। तमाम शरीर दुःख रहा था। इससे तो मैं कालकोठरी में ही अच्छा था, क्योंकि वहाँ हाथ-पैर तो हिला-डुला सकता था।

दूसरे दिन भी गिरोह वापस न आया। उस दिन तूरया बहुत चिंतित थी। शाम को आकर तूरया ने मेरे पैर खोलकर कहा — कैदी, अब तुम जाओ। चलो, मैं तुम्हें थोड़ी दूर पहुँचा दूँ।

थोड़ी देर तक मैं अवश लेटा रहा। धीरे-धीरे मेरे पैर ठीक हुए और ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ मैं तूरया के साथ चल दिया।

तूरया को प्रसन्न करने के लिए मैं रास्ते-भर गीत गाता आया। तूरया बार-बार सुनती और बार-बार रोती। आधी रात के करीब मैं तालाब के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचकर तूरया ने कहा — सीधे चले जाओ; तुम पेशावर पहुँच जाओगे। देखो होशियारी से जाना, नहीं तो कोई तुम्हें अपनी गोली का शिकार बना डालेगा। यह लो, तुम्हारे कपड़े है; लेकिन रुपया जरूर भेज देना। तुम्हारी जमानत मैं लूँगी। अगर रुपया न आया, तो मेरे भी प्राण जाएँगे और तुम्हारे भी। अगर रुपया आ जाएगा, तो कोई भी अफ्रीदी तुम पर हाथ न उठाएगा, चाहे तुम किसी को मार भी डालो। जाओ, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुमको अपने बच्चों से मिलाए।

तूरया फिर ठहरी नहीं। गुनगुनाती हुई लौट पड़ी। रात दो-पहर बीत चुकी थी। चारों ओर भयानक निस्तब्धता छाई हुई थी, केवल वायु साँय-साँय करती हुई बह रही थी, आकाश के बीचों-बीच चंद्रमा अपनी सोलहों कला से चमक रहा था। तालाब के तट पर रुकना सुरक्षित न था। मैं धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ा। बार-बार चारों ओर देखता जाता था। ईश्वर की कृपा से प्रातःकाल होते-होते मैं पेशावर की सरहद पर पहुँच गया।

सरहद पर सिपाहियों का पहरा था। मुझे देखते ही तमाम फौज भर में हलचल मच गई। सभी लोग मुझे मरा समझे हुए थे। जीता-जागता लौटा हुआ देखकर सभी प्रसन्न हो गए।

कर्नल हैमिलटन साहब भी समाचार पाकर उसी समय मिलने आए और सब हाल पूछकर कहा — मेजर साहब, मैं आपको मरा हुआ समझता था। मेरे पास तुम्हारे दो पत्र आए थे, लेकिन मुझे स्वप्न में भी विश्वास न हुआ था कि ये तुम्हारे लिखे हुए है। मैं तो उन्हें जाली समझता था। ईश्वर का धन्यवाद है कि तुम जीते बचकर आ गए।

मैंने कर्नल साहब को धन्यवाद दिया और मन ही मन कहा — काले आदमी का लिखा हुआ जाली था और कहीं अगर गोरा आदमी लिखता, तो दो की कौन कहे, चार हजार रुपया पहुँच जाता। कितने ही गाँव जला दिए जाते, और न जाने क्या-क्या होता।

मैं चुपचाप अपने घर आया। बाल-बच्चों का पाकर आत्मा संतुष्ट हुई। उसी दिन एक विश्वासी अनुचर के द्वारा दो हजार रुपए तूरया के पास भेज दिया।

## 5

सरदार ने एक ठंड़ी साँस लेकर कहा — असदखाँ, अभी मेरी कहानी समाप्त नहीं हुई। अभी तो दुःखांत भाग अवशेष ही है। यहाँ आकर मैं धीरे-धीरे अपनी सब मुसीबतें भूल गया, लेकिन तूरया को न भूल सका। तूरया की कृपा से ही मैं अपनी स्त्री और बच्चों से मिल पाया था, यहीं नहीं, जीवन भी पाया था; फिर भला मैं उसे कैसे भूल जाता!

महीनों और सालों बीत गए। मैंने तूरया को और न उसके बाप को ही देखा। तूरया ने आने के लिए कहा भी लेकिन वह आई नहीं, वहाँ से आकर मैंने अपनी स्त्री को उसके मायके भेज दिया था; क्योंकि खयाल था कि शायद तूरया आए, तो फिर मैं झूठा बनूँगा। लेकिन जब तीन साल बीत गए और तूरया न आई, तो मैं निश्चिंत हो गया और स्त्री को मायके से बुला लिया। हम लोग सुखपूर्वक दिन काट रहे थे कि अचानक फिर दुर्दशा की घड़ी आई।

एक संध्या के समय इसी बरामदे में बैठा हुआ अपनी स्त्री से बातें कर रहा था कि किसी ने बाहर का दरवाजा खटखटाया। नौकर ने दरवाजा खोल दिया और बेधड़क जीना चढ़ती हुई एक

काबुली स्त्री ऊपर चली आई। उसने बरामदे में आकर विशुद्ध पश्तो भाषा में पूछा — सरदार साहब कहाँ है?

मैंने कमरे के भीतर आकर पूछा — तुम कौन हो, क्या चाहती हो?

उसी स्त्री ने कुछ मूँगे निकालते हुए कहा — यह मूँगे मैं बेचने के लिए आई हूँ, खरीदिएगा?

यह कहकर उसने बड़े-बड़े मूँगे निकालकर मेज पर रख दिए।

मेरी स्त्री भी मेरे साथ कमरे के भीतर आई थी। वह मूँगे उठाकर देखने लगी। उसी काबुली स्त्री ने पूछा — सरदार साहब, यह कौन है आपकी?

मैंने उत्तर दिया — मेरी स्त्री है, और कौन है?

काबुली स्त्री ने कहा — आपकी स्त्री तो मर चुकी थी, क्या आपने दूसरा विवाह किया है?

मैंने रोषपूर्ण स्वर में कहा — चुप बेवकूफ कहीं की, तू मर गई होगी।

मेरी स्त्री पश्तो नहीं जानती थी, वह तन्मय होकर मूँगे देख रही थी।

किंतु मेरी बात सुनकर न मालूम क्यों काबूली औरत की आँखें चमकने लगीं। उसने बड़े ही तीव्र स्वर से कहा — हाँ, बेवकूफ न होती, तो तुम्हें छोड़ कैसे देती? दोजखी पिल्ले, मुझसे झूठ बोला! ले, अगर तेरी स्त्री न मरी थी, तो अब मर गई!

कहते-कहते शेरनी की तरह लपककर उसने एक छुरा मेरी स्त्री की छाती में घुसेड़ दिया। मैं उसे रोकने के लिए आगे बढ़ा; लेकिन वह कूदकर आँगन में चली गई और बोली — अब पहचान ले, मैं तूरया हूँ। मैं आज तेरे घर में रहने के लिए आई थी। मैं तुमसे विवाह करती और तेरी होकर रहती। तेरे लिए मैंने बाप, घर, सब कुछ छोड़ दिया था, लेकिन तू झूठा है, मक्कार है। तू अब अपनी बीवी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी। यह कहकर वह तेजी से नीचे चली गई!

अब मैं अपनी स्त्री के पास पहुँचा। छुरा ठीक हृदय में लगा था। एक ही वार ने उसका काम तमाम कर दिया था। डाक्टर बुलवाया; लेकिन वह मर चुकी थी।

कहते-कहते सरदार साहब की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने अपनी भीगी हुई आँखों को पोंछकर कहा — असदखाँ, मुझे स्वप्न में भी अनुमान न था कि तूरया इतनी पिशाच-हृदय हो सकेगी। अगर मैं पहले उसे पहचान लेता तो यह आफत न आने पाती;

लेकिन कमरे में अंधकार था; और इसके अतिरिक्त मैं उसकी ओर से निराश हो चुका था।

तब से फिर कभी तूरया नहीं आई। अब जब कभी मुझे देखती है, तो मेरी ओर देखकर नागिन की भाँति फुफकारती हुई चली जाती है। इसे देखकर मेरा हृदय काँपने लगता है और मैं अवश हो जाता हूँ। कई बार कोशिश की, मैं इसे पकड़वा दूँ, लेकिन उसे देखकर मैं बिलकुल निकम्मा हो जाता हूँ हाथ-पैर बेकाबू हो जाते है, मेरी सारी वीरता हवा हो जाती है।

यही नहीं, तूरया का मोह अब भी मेरे ऊपर है। मेरे बच्चों को हमेशा वह कोई न कोई बहुमूल्य चीज दे जाती है। जिस दिन बच्चे उसे नहीं मिलते दरवाजे के भीतर फेंक जाती है। उनमें एक कागज का टुकड़ा बँधा हुआ होता है जिसमें लिखा रहता है — सरदार साहब के बच्चों के लिए।

मैं अभी तक इस स्त्री को नहीं समझ पाया। जितना ही समझने का यत्न करता हूँ, उतनी ही याद कठिन होती जाती है। नहीं समझ में आता कि यह मानवी है या राक्षसी!

इसी समय सरदार साहब के लड़के ने आकर कहा — देखिए, वही औरत यह सोने का तावीज दे गई है।

सरदार ने मेरी ओर देखकर कहा — देखा, असदखाँ, मैं तुमसे कहता न था। देखो, आज भी यह तावीज दे गई। न मालूम कितने ही तावीज और कितनी ही दूसरी चीजें अर्जुन और निहाल को दे गई होगी। कहता हूँ कि तूरया बड़ी ही विचित्र स्त्री है?

## 6

सरदार साहब से विदा होकर मैं घर चला। चौरास्ते से बुड्ढे की लाश हटा दी गई थी; पर वहाँ पहुँचकर मेरे रोएँ खड़े हो गए। मैं आप ही आप एक मिनट वहाँ खड़ा हो गया। सहसा पीछे देखा। छाया की भाँति एक स्त्री मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। मुझे खड़ा देखकर वह स्त्री रुक गई और एक दूकान से कुछ खरीदने लगी।

मैंने अपने हृदय से प्रश्न किया — क्या वह तूरया है।

हृदय ने उत्तर दिया — हाँ, शायद वही है।

तूरया मेरा पीछा क्यों कर रही है? यह सोचता हुआ मैं घर पहुँचा और खाना खाकर लेटा; पर आज की घटनाओं का मुझ पर ऐसा

असर पड़ा था कि किसी तरह नींद न आती थी। जितना ही मैं सोने की यत्न करता उतनी ही नींद मुझसे दूर भागती।

फौजी घड़ियाल ने बारह बजाए, एक बजाए, दो बजाए; मुझे नींद न थी। मैं करवटें बदलता हुआ सोने का उपक्रम कर रहा था। इसी उधेड़बुन में कब नींद ने मुझे धर दबाया; मुझे जरा भी याद नहीं।

यद्यपि मैं सो रहा था; लेकिन मेरा ज्ञान जाग रहा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री, जिसकी आकृति तूरया से बहुत कुछ मिलती थी, लेकिन उससे कहीं अधिक भयावनी थी, दीवार फोड़कर भीतर घुस आई है। उसके हाथ में एक तेज छुरा है, जो लालटेन के प्रकाश में चमक रहा है। वह दबे पाँव सतर्क नेत्रों से ताकती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है। मैं उसे देखकर उठना चाहता हूँ, लेकिन हाथ-पैर मेरे काबू में नहीं हैं। मानों उनमें जान है ही नहीं। वह स्त्री मेरे पास पहुँच गई। थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा, और फिर अपने छुरेवाले हाथ को ऊपर उठाया। मैं चिल्लाने का उपक्रम करने लगा; लेकिन मेरी घिग्गी बँध गई। शब्द कंठ से फूटा ही नहीं। उसने मेरे दोनों हाथों को अपने घुटने के नीचे दबाया और मेरी छाती पर सवार हो गई। मैं छटपटाने लगा और मेरी आँखें खुल गई! सचमुच एक काबुली

औरत मेरी छाती पर सवार थी। उसके हाथ में छुरा था। और वह छुरा मारना ही चाहती थी।

मैंने कहा — कौन, तूरया?

यह वास्तव में तूरया ही थी। उसने मुझे बलपूर्वक दबाते हुए कहा — हाँ, मैं तूरया ही हूँ। आज तूने मेरे बाप का खून किया है, उसके बदले में तेरी जान जाएगी।

यह कहकर उसने अपना छुरा ऊपर उठाया। इस समय मेरे सामने जीवन और मरण का प्रश्न था। जीवन की लालसा ने मुझमें साहस का संचार किया मैं मरने के लिए तैयार न था। मेरे अरमान और उमंगें अब भी बाकी थीं। मैंने बलपूर्वक अपना दाहिना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया और एक ही झटके में मेरा हाथ छूट गया। मैंने अपनी पूरी ताकत से तूरया का छुरावाला हाथ पकड़ लिया। न मालूम क्यों तूरया ने कुछ भी विरोध न किया। वह मेरे हाथ को देखते हुए मेरी छाती से उतर आई। उसकी आँखें पथराई हुई थीं और वह एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी।

मैंने हँसकर कहा — तूरया, अब तो पासा पलट गया। अब तेरे मरने की बारी है। तेरे बाप को मारा और अब तुझे भी मारता हूँ।

तूरया अब भी एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी। उसने कुछ भी उत्तर न दिया।

मैंने उसे झँझोड़ते हुए कहा — बोलती क्यों नहीं? अब तो तेरी जान मेरी मुट्ठी में है।

तूरया का मोह टूटा। उसने बड़ी गंभीरता और दृढ़ कंठ से कहा — तू मेरा भाई है। तूने अपने बाप को मारा है आज!

मैंने हँसते हुए कहा — अफ्रीदी मक्कार भी होते है, यह आज ही मुझे मालूम हुआ।

तूरया ने शांत स्वर से कहा — तू मेरा खोया हुआ भाई नाजिर है। वह जो तेरे हाथ में निशान है, वही बतला रहा है कि तू मेरा खोया हुआ भाई है।

बचपन से ही मेरे हाथ में एक साँप गुदा हुआ था। और यही मेरी पहचान फौजी रजिस्टर में भी लिखी हुई थी।

मैंने हँसकर कहा — तूरया, तू मुझे भुलावा नहीं दे सकती। मैं अब तुझे किसी तरह न छोड़ूँगा।

तूरया ने अपने हाथ से छुरा फेंककर कहा — सचमुच तू मेरा भाई है। अगर तुझे विश्वास नहीं होता, तो देख, मेरे दाहिने हाथ में भी ऐसा ही साँप गुदा हुआ है।

मैंने तुरया के हाथ पर दृष्टि डाली, तो वहाँ भी बिलकुल मेरा ही जैसा साँप गुदा हुआ है।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा — तूरया, मैं तेरा विश्वास नहीं कर सकता, यह इत्तफाक की बात है।

तूरया ने कहा — मेरा हाथ छोड़े दे। मैं तुझ पर वार न करूँगी। अफ्रीदी झूठ नहीं बोलते।

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया।, वह पृथ्वी पर बैठ गई और मेरी ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा — अच्छा, तुझे अपने माँ-बाप का पता है?

मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया — नहीं, मैं सरकारी अनाथालय में पाला गया हूँ।

मेरी बात सुनकर तूरया उठ खड़ी हुई और बोली — तब तू मेरी खोया हुआ बड़ा भाई नाजिर ही है। मेरे पैदा होने के एक साल पहले तू खोया था! मेरे माँ-बाप तब सरकारी फौज पर छापा डालने के लिए आए थे और तू भी साथ था। मेरी माँ लड़ने में बड़ी होशियार थी। तू उनकी पीठ पर बँधा हुआ था और वे लड़ रही थीं। इसी समय एक गोली उनके पैर पर लगी और वे गिरकर बेहोश हो गई बस, कोई तुझे खोल ले गया। मेरी माँ को मेरा बाप अपने कंधे पर उठा लाया; लेकिन तुझे खोज न सका।

बहुत तलाश की; लेकिन कहीं भी तेरा पता न लगा। अम्माँ अक्सर तेरी चर्चा किया करती थीं। उनके हाथ में भी निशान था।

यह कहकर उसने फिर वही हाथ मुझे दिखलाया। मैं उसका और अपना साँप मिलाने लगा। वास्तव में दोनों साँप हूबहू एक-से थे, बाल भर भी अन्तर न था। मैं हताश-सा होकर चारपाई पर गिर पड़ा।

तूरया मेरे पास बैठकर स्नेह से मेरे माथे का पसीना पोंछने लगी। उसने कहा — नाजिर, माँ कहती थीं कि तू मरा नहीं, जिंदा है। एक दिन जरूर तू हम लोगों से मिलेगा।

तूरया का बात पर अब मुझे विश्वास हो चला था। जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ कह रहा था कि तूरया जो कहती है; ठीक है। मैंने एक लंबी साँस लेकर कहा — क्यों तूरया, मैंने जिसे आज मारा है, हम लोगों का बाप था?

तूरया के मुँह पर शोक का एक छोटा-सा बादल घिर आया। उसने बड़े ही दुःखपूर्ण स्वर में कहा — हाँ, नाजिर, वह अभागा हमारा बाप ही थी। कौन जानता था कि वह अपने प्यारे लड़के के हाथों हलाल होगा।

फिर सांत्वनापूर्ण स्वर में बोली — लेकिन नाजिर, तूने तो अनजान में यह काम किया है। बाप के मरने से मैं बिलकुल अकेली हो गई थी; लेकिन अब तुझे पाकर बाप के रंज को भूल जाऊँगी। नाजिर, तू रंज न कर। तुझे क्या मालूम था कि कौन तेरा बाप है और कौन तेरी माँ है। देख, मैं ही तुझे मारने के लिए आई थी। तुझे मार डालती; लेकिन खुदा की मेहरबानी से मैंने अपना खानदानी निशान देख लिया। खुदा की ऐसी ही मरजी थी।

तूरया से मालूम हुआ कि मेरे बाप का नाम हैदर खाँ था, जो अफ्रीदियों के एक गिरोह का सरदार था। मैं सरदार हिम्मतसिंह के संबंध में भी तूरया से बातें कीं तो मालूम हुआ कि तूरया सरदार साहब को प्यार करने लगी थी। वह हमारे बाप से लड़-भिड़कर सरदार से निकाह करने आई थी; लेकिन वहाँ इनकी स्त्री को पाकर वह ईर्ष्या और क्रोध से पागल हो गई, और उसने उसकी स्त्री की हत्या कर डाली। काबुली औरत के भेष में जाकर वह कुछ मजाक करना चाहती थी; लेकिन घटना-चक्र उसे दूसरी ओर ले गया।

मैंने सरदार साहब की दशा का वर्णन किया। सुनकर वह कुछ सोचती रही और फिर कहा — नहीं वह आदमी झूठा और दगाबाज है। मैं उससे निकाह नहीं करूँगी। लेकिन तेरी खातिर

अब सब भूल जाऊँगी। कल उनके बच्चों को ले आना, मैं प्यार करूँगी।

प्रातःकाल तूरया को देखकर मेरा नौकर आश्चर्य करने लगा। मैंने उससे कहा — यह मेरी बहन है।

नौकर को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। तब मैंने विस्तारपूर्वक सब हाल कहा और उसी समय अपने बाप की लाश की खबर लेने के लिए भेजा। नौकर ने आकर कहा — लाश अभी तक थाने पर रखी हुई है।

मैंने बड़े साहब के नाम एक पत्र लिखकर सब हाल बता दिया और लाश पाने के लिए दरख्वास्त की। उसी समय साहब के यहाँ से स्वीकृत आ गई।

एक पत्र लिखकर मेजर साहब को भी बुलवाया।

मेजर साहब ने आकर कहा — क्या बात है असद? इतनी जल्दी आने के लिए क्यों लिखा?

मैंने हँसते हुए कहा — मेजर साहब, मेरा नाम अब असद नहीं, मेरा असली नाम है नाजिर।

मेजर साहब ने साश्चर्य मेरी ओर देखते हुए कहा — रात भर में तुम पागल हो नहीं हो गए।

मैंने हँसते हुए कहा — नहीं सरदार साहब, अभी और सुनिए। तूरया मेरी सगी बहन है, और जिसे कल मैंने मारा वह मेरा बाप था।

सरदार साहब मेरी बात सुनकर मानों आकाश से गिर पड़े। आँखें कपाल पर चढ़ गईं। उन्होंने कहा — क्यों असद, तुम मुझ पागल कर डालोगे?

मैंने सरदार साहब का हाथ पकड़कर कहा — आइए, तूरया के मुँह से ही सब हाल सुन लीजिए। तूरया मेरे यहाँ बैठी हुआ आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

सरदार साहब सकते की हालत में मेरे पीछे-पीछे चले। तूरया उन्हें आते देखकर उठ खड़ी हुई और हँसती हुई बोली — कैदी, तुम वही गीत फिर गाओ। तूरया की बात सुनकर मैं और सरदार साहब भी हँसने लगे।

सरदार साहब को बिठाकर मैंने विस्तारपूर्वक सब हाल कहा। कहानी सुनकर सरदार साहब ने मुझसे कहा — नाजिर, अब तुम्हें नाजिर ही कहूँगा। तूरया को मैं तुमसे माँगता हूँ! मैं इसके साथ विवाह करूँगा।

मैंने हँसकर कहा — लेकिन आप हिंदू है, और हम लोग मुसलमान।

सरदार साहब ने हँसकर कहा — पलटनियों की कोई जाति-पाँति नहीं है।

तूरया ने उसी समय कहा — लेकिन सरदार साहब, मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगी। हाँ, अगर तुम अपने दोनों बच्चों को मेरे पास भेज दो तो मैं उनकी माँ बन जाऊँगी।

सरदार साहब हँसते हुए हुए विदा हुए।

उसी दिन शाम को हमने सरदार साहब, तूरया और दूसरे पलटनियों का जाकर अपने बाप का लाश दफनाई।

सूरज डूब रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा हो रहा था; हम दोनों, तूरया और मैं, अपने बाप की कब्र पर फातिहा पढ़ रहे थे।

# वैर का अन्त

रामेश्वरराय अपने बड़े भाई के शव को खाट से नीचे उतारते हुए भाई से बोले — तुम्हारे पास कुछ रुपए हों तो लाओ, दाह-क्रिया की फिक्र करें, मैं बिल्कुल खाली हाथ हूँ।

छोटे भाई का नाम विश्वेश्वरराय था। वह एक जमींदार के कारिंदा थे, आमदनी अच्छी थी। बोले — आधे रुपए मुझसे ले लो। आधे तुम निकालो।

रामेश्वर — मेरे पास रुपए नहीं है।

विश्वेश्वर — तो फिर इनके हिस्से का खेत रेहन रख दो।

रामेश्वर — तो जाओ, कोई महाजन ठीक करो। देर न करो। विश्वेश्वरराय ने अपने एक मित्र से कुछ रुपए उधार लिए, उस वक्त का काम चला। पीछे फिर कुछ रुपए लिये, खेत की लिखा-पढ़ी कर दी। कुछ पाँच बीघे जमीन थी। 300 रु. मिले। गाँव के लोगों का अनुमान है कि क्रिया-कर्म में मुश्किल से 100 रु. उठे होंगे। पर विश्वेश्वरराय ने षोड्शी के दिन 301 रु. का लेखा भाई

के सामने रख दिया। रामेश्वरराय ने चकित होकर पूछा — सब रुपए उठ गए?

विश्वेश्वर — क्या मैं इतनी नीच हूँ कि करनी के रुपए भी कुछ उठा रखूँगा! किसको यह धन पचेगा।

रामेश्वर — नहीं, मैं तुम्हें बेईमान नहीं बताता, खाली पूछता था।

विश्वेश्वर — जिसे शक हो तो जिस बनिये के चीजें ली गई है, उससे पूछ लो।

## 2

साल-भर बाद एक दिन विश्वेश्वरराय ने भाई से कहा — रुपए हो तो लाओ, खेत छुड़ा लें।

रामेश्वर — मेरे पास रुपए कहाँ से आए। घर का हाल तुमसे छिपा थोड़े ही है।

विश्वेश्वर — तो मैं सब रुपए देकर जमीन छोड़ाए लेता हूँ। जब तुम्हारे पास रुपए हों, आधा देकर अपनी आधी जमीन मुझसे ले लेना।

रामेश्वर — अच्छी बात है, छुड़ा लो।

30 साल गुजर गए। विश्वेश्वरराय जमीन को भोगते रहे, उसे खाद-गोबर से खूब सजाया।

उन्होंने निश्चय किया कि यह जमीन न छोड़ूँगा। मेरा तो इस पर मौरूसी हक हो गया। अदालत से भी नहीं ले सकता। रामेश्वरराय ने कई बार यत्न किया कि रुपए देकर अपना हिस्सा ले ले; पर तीस साल में वे कभी 150 रुपए जमा न कर सके।

मगर रामेश्वरराय का लड़का जागेश्वर कुछ सँभल गया। वह गाड़ी लादने का काम करने लगा था और इस काम में उसे अच्छा नफा भी होता था। उसे अपने हिस्से की रात-दिन चिंता रहती थी। अन्त में उसने रात-दिन श्रम करके यथेष्ट धन बटोर लिया और एक दिन चाचा से बोला — काका, अपने रुपए ले लीजिए। मैं अपना नाम चढ़वा लूँ।

विश्वेश्वरराय — अपने बाप के तुम्हीं चतुर बेटे नहीं हो। इतने दिनों तक कान न हिलाए, जब मैंने जमीन सोना बना दिया तब हिस्सा बाँटने चले हो? तुमसे माँगने तो नहीं गया था।

विश्वेश्वर — तो अब जमीन न मिलेगी।

रामेश्वर — भाई का हक मारकर कोई सुखी नहीं रहता।

विश्वेश्वर — जमीन हमारी है। भाई की नहीं।

जागेश्वर — तो आप सीधे न दीजिएगा?

विश्वेश्वर — न सीधे दूँगा, न टेढ़े से दूँगा। अदालत करो।

जागेश्वर — अदालत करने की मुझे सामर्थ्य नहीं है; पर इतना कहे देता हूँ कि जमीन चाहे मुझे न मिले; पर आपके पास न रहेगी।

विश्वेश्वर — यह धमकी जाकर किसी और को दो।

जागेश्वर — फिर यह न कहिएगा कि भाई होकर वैरी हो गया।

विश्वेश्वर — एक हजार गाँठ में रखकर तब जो कुछ जी मे आए, करना।

जागेश्वर — मैं गरीब आदमी हजार रुपए कहाँ से लाऊँगा; पर कभी-कभी भगवान दीनों पर दयालु हो जाते है।

विश्वेश्वर — मैं इस डर से बिल नहीं खोद रहा हूँ।

रामेश्वरराय तो चुप ही रहा पर जागेश्वर इतना क्षमाशील न था। वकील से बातचीत की। वह अब आधी नहीं; पूरी जमीन पर दाँत लगाए हुए था।

मृत सिद्धेश्वरीराय के एक लड़की तपेश्वरी थी। अपने जीवन-काल में वे उसका विवाह कर चुके थे। उसे कुछ मालूम न था कि बाप ने क्या छोड़ा और किसने लिया। क्रिया-कर्म अच्छी

तरह हो गया; वह इसी में खुश थी। षोड्शी में आई थी। फिर ससुराल चली गई। 30 वर्ष हो गए, न किसी ने बुलाया, न वह मैके आई। ससुराल की दशा भी अच्छी न थी। पति का देहांत हो चुका था। लड़के भी अल्प वेतन पर नौकर थे। जागेश्वर ने अपनी फूफी को उभारना शुरू किया। वह उसी को मुद्दई बनाना चाहता था।

तपेश्वरी ने कहा — बेटा, मुझे भगवान ने जो दिया, उसी में मगन हूँ। मुझे जगह-जमीन न चाहिए। मेरे पास अदालत करने को धन नहीं है।

जागेश्वर — रुपए मैं लगाऊँगा, तुम खाली दावा कर दो।

तपेश्वरी — भैया तुम्हें खड़ाकर किसी का काम न रखेंगे।

जागेश्वर — यह नहीं देखा जाता कि वे जायदाद लेकर मजे उड़ावे और हम मुँह ताकें। मैं अदालत का खर्च दे दूँगा। इस जमीन के पीछे बिक जाऊँगा पर उसका गला न छोड़ूँगा।

तपेश्वरी — अगर जमीन मिल भी गई तो तुम अपने रुपयों के एवज में ले लोगे, मेरे हाथ क्या लगेगा? मैं भाई से क्यों बुरी बनूँ?

जागेश्वर — जमीन आप ले लीजिएगा, मैं केवल चाचा साहब का घमंड तोड़ना चाहता हूँ।

तपेश्वरी — अच्छा, जाओ, मेरी तरफ से दावा कर दो।

जागेश्वर ने सोचा, जब चाचा साहब की मुट्ठी से जमीन निकल जाएगी तब मैं दस-पाँच रुपए पर इनसे ले लूँगा। इन्हें अभी कौड़ी नहीं मिलती। जो कुछ मिलेगा उसी को बहुत समझेंगी। दूसरे दिन दावा कर दिया। मुंसिफ के इजलास में मुकदमा पेश हुआ। विश्वेश्वरराय ने सिद्ध किया कि तपेश्वरी सिद्धेश्वरी की कन्या ही नहीं है।

गाँव के आदमियों पर विश्वेश्वरराय का दबाव था। सब लोग उससे रुपए-पैसे उधार ले जाते थे। मामले-मुकद्दमें में उनसे सलाह लेते थे। सबने अदालत में बयान किया कि हम लोगों ने कभी तपेश्वरी को नहीं देखा। सिद्धेश्वरी के कोई लड़की ही न थी। जागेश्वर ने बड़े-बड़े वकीलों से पैरवी कराई, बहुत धन खर्च किया, लेकिन मुंसिफ ने उसके विरुद्ध फैसला सुनाया। बेचारा हताश हो गया। विश्वेश्वर की अदालत में सबसे जान-पहचान थी। जागेश्वर को जिस काम के लिए मुट्ठियों रुपए खर्च करने पड़ते थे, वह विश्वेश्वर मुरौवत में करा लेता।

जागेश्वर ने अपील करने का निश्चय किया। रुपए न थे, गाड़ी-बैल बेंच डाले। अपील हुई। महीनों मुकदमा चला। बेचारा सुबह से शाम तक कचहरी के अमलों और वकीलों की खुशामद

किया करता, रुपए भी उठ गए, महाजनों से ऋण लिया। बारे अबकी उसकी डिग्री हो गई। पाँच सौ का बोझ सिर पर हो गया था, पर अब जीत ने आँसू पोंछ दिए।

विश्वेश्वर ने हाईकोर्ट में अपील की। जागेश्वर को अब कहीं से रुपए न मिले। विवश होकर अपने हिस्से की जमीन रेहन रखी। फिर घर बेचने की नौबत आई। यहाँ तक कि स्त्रियों के गहने भी बिक गए। अन्त में हाईकोर्ट से भी उसकी जीत हो गई। आनंदोत्सव में बची-खुची पूँजी भी निकल गई। एक हजार पर पानी फिर गया। हाँ, संतोष यही थी कि पाँच बीघे मिल गए। तपेश्वरी क्या इतनी निर्दय हो जाएगी कि थाली मेरे सामने से खींच लेगी।

लेकिन खेतों पर अपना नाम चढ़ते ही तपेश्वरी की नीयत बदली। उसने एक दिन गाँव में आकर पूछ-ताछ की तो मालूम हुआ कि पाँच बीघे 100 रु में उठ सकते हैं। लगान केवल 25 रु. था, 75 रु. साल का नफा था। इस रकम ने उसे विचलित कर दिया। उसने असामियों को बुलाकर उनके साथ बंदोबस्त कर दिया। जागेश्वरराय हाथ मलता रह गया। आखिर उससे न रहा गया। बोला — फूफी जी, आपने जमीन तो दूसरों को दे दी, अब मैं कहाँ जाऊँ।

तपेश्वरी — बेटा, पहले अपने घर में दीया जलाकर तब मसजिद में जलाते है इतनी जगह मिल गई, तो मैके से नाता हो गया, नहीं तो कौन पूछता।

जागेश्वर — मैं तो उजड़ गया।

तपेश्वरी — जिस लगान पर और लोग ले रहे है, उससे दो-चार रुपए कर करके तुम्हीं क्यों नहीं ले लेते?

तपेश्वरी तो दो-चार दिन में विदा हो गई। रामेश्वरराय पर वज्रपात हो गया। बुढ़ापे में मजदूरी करनी पड़ी। मान-मर्यादा से हाथ धोया। रोटियों के लाले पड़ गए। बाप-बेटे दोनों प्रातःकाल से संध्या तक मजदरी करते, तब कहीं आग जलती। दोनों में बहुधा तकरार हो जाती। रामेश्वर सारा अपराध बेटे से सिर रखता। जागेश्वर कहता — आपने मुझे रोका होता तो मैं क्यों इस विपत्ति में फँसता। उधर विश्वेश्वरराय ने महाजनों को उकसा दिया। साल भी न गुजरने पाया था कि बेचारे निराधार हो गए। — जमीन निकल गई, घर नीलाम हो गया, दस-बीस पेड़ थे, वे भी नीलाम हो गये। चौबे जी दूबे न बने, दरिद्र हो गए। इस पर विश्वेश्वर के ताने और भी गजब ढाते। यह विपत्ति का सबसे नोकदार काँटा था। आतंक का सबसे निर्दय आघात था।

दो साल तक इस दुःखी परिवार ने जितनी मुसीबतें झेलीं, यह उन्हीं का दिल जानता है। कभी पेटभर भोजन न मिला। हाँ, इतनी आन थी कि नीयत नहीं बदली। दरिद्रता ने सब कुछ किया, पर आत्मा का पतन न कर सकी। कुलमर्यादा में आत्मरक्षा की बड़ी शक्ति होती है।

एक दिन संध्या दोनों आदमी बैठे आग ताप रहे थे कि सहसा एक आदमी ने आकर कहा — ठाकुर चलो, विश्वेश्वरराय तुम्हें बुलाते है।

रामेश्वर ने उदासीन भाव से कहा — मुझे क्यों बुलाएंगे? मैं उनका कौन होता हूँ? क्या कोई और उपद्रव खड़ा करना चाहते है?

इतने में दूसरा आदमी दौड़ा हुआ आकर बोला — ठाकुर, जल्दी चलो, विश्वेश्वरराय की दशा अच्छी नहीं है।

विश्वेश्वरराय को इधर कई दिनों से खाँसी-बुखार की शिकायत थी, लेकिन शत्रुओं के विषय में हमें किसी अनिष्ट की शंका नहीं होती। रामेश्वर और जागेश्वर कभी कुशल-समाचार पूछने भी न गए। कहते, उन्हें क्या हुआ है। अमीरों को धन का रोग होता है। जब आराम करने को जी चाहा; पलंग पर लेट रहे, दूध में साबूदाना उबालकर मिश्री मिलाकर खाया और फिर उठ बैठे।

विश्वेश्वरराय की दशा अच्छी नहीं है, यह सुनकर भी दोनों जगह से न हिले। रामेश्वर ने कहा — दशा को क्या हुआ है। आराम से पड़े बातें तो कर रहे है।

जागेश्वर — किसी वैद्य-हकीम को बुलाने भेजना चाहते होंगे। शायद बुखार तेज हो गया है।

रामेश्वर — यहाँ किसे इतनी फुरसत है। सारा गाँव तो उसका हितू है, जिसे चाहें भेज दें।

जागेश्वर — हर्ज ही क्या है। जरा जाकर सुन आऊँ?

रामेश्वर — जाकर थोड़े उपले बटोर लाओ, चूल्हा जले, फिर जाना। ठकुरसोहाती करनी आती तो आज यह दशा न होती।

जागेश्वर ने टोकरी उठाई और हार की तरफ चला कि इतने में विश्वेश्वरराय के घर से रोने की आवाजें आने लगीं। उसने टोकरी फेंक दी और दौड़ा हुआ चाचा के घर में जा पहुँचा। देखा तो उन्हें चारपाई से नीचे उतार रहे थे। जागेश्वर को ऐसा जान पड़ा, मेरे मुँह में कालिख लगी हुई है। वह आँगन से दालान में चला आया और दीवार में मुँह छिपाकर रोने लगा। युवावस्था आवेशमय होती है। क्रोध में आग हो जाती है, तो करुणा से पानी भी हो जाती है।

# 3

विश्वेश्वरराय की तीन बेटियाँ थी। उनके विवाह हो चुके थे। तीन पुत्र थे, वे अभी छोटे थे। सबसे कम की उम्र 10 वर्ष से अधिक न थी। माता जी जीवित थी। खानेवाले तो चार थे, कमानेवाला कोई न था। देहात में जिसके घर में दोनों जून चूल्हा जले, वह धनी समझा जाता है। उसके धन के अनुमान में भी अत्युक्ति से काम लिया जाता है। लोगों का विचार था कि विश्वेश्वरराय ने हजारों रुपए जमा कर लिये है; पर वास्तव में कुछ न था। आमदनी पर सबकी निगाह रहती है, खर्च को कोई नहीं देखता। उन्होंने लड़कियों के विवाह खूब दिल खोलकर किए थे। भोजन-वस्त्र में, मेहमानों और नातेदारों के आदर-सत्कार में उनकी सारी आमदनी गायब हो जाती थी। अगर गाँव में अपना रोब जमाने के लिए दो-चार सौ रुपयों का लेन-देन कर लिया था, को कई महाजनों का कर्ज भी था। यहाँ तक कि छोटी लड़की के विवाह में अपनी जमीन गिरों रख दी थी।

साल-भर तक तो विधवा ने ज्यों-त्यों करके बच्चों का भरण-पोषण किया। गहने बेचकर काम चलाती रही; पर जब यह आधार भी न रहा तब कष्ट होने लगा। निश्चय किया कि तीनों लड़कों को

तीनों कन्याओं के पास भेज दूँ। रही अपनी जान उसकी क्या चिंता। तीसरे दिन भी पावभर आटा मिल जाएगा तो दिन कट जाएंगे। लड़कियों ने पहले तो भाइयों को प्रेम से रखा; किंतु तीन महीने से ज्यादा कोई न रख सकी। उनके घरवाले चिढ़ते थे और अनाथों को मारते थे। लाचार हो माता ने लड़को को बुला लिया।

छोटे-छोटे लड़के दिन-दिनभर भूखे रह जाते। किसी को कुछ खाते देखते तो घर में जाकर माँ से माँगते। फिर माँ से माँगना छोड़ दिया। खानेवालों ही के सामने जाकर, खड़े हो जाते और क्षुधित नेत्रों से देखते। कोई तो मुट्ठी-भर चबेना निकालकर दे देता; पर प्रायः लोग दुत्कार देते थे।

जाड़ों के दिन थे। खेतों में मटर की फलियाँ लगी हुई थी। एक दिन तीनों लड़कें खेत में घुसकर मटर खाने लगे। किसान ने देख लिया; दयावान आदमी था। खुद एक बोझा मटर उखाड़कर विश्वेश्वर के घर लाया और ठकुराइन से बोला — काकी, लड़कों को डाँट दो किसी के खेत में न जाया करें। जागेश्वर उसी समय अपने द्वार पर बैठा चिलम पी रहा था, किसान को मटर लाते देखा — तीनों बालक पिल्लों की भाँति पीछे-पीछे दौड़े चले आते थे। उसकी आँखें सजल हो गई। घर में जाकर पिता से बोला — चाची के पास अब कुछ नहीं रहा, लड़के भूखों मर रहे हैं।

रामेश्वर — तुम त्रिया-चरित्र नहीं जानते। यह सब दिखावा है। जन्म-भर की कमाई कहाँ उड़ गई?

जागेश्वर — अपना काबू चलते हुए कोई लड़कों को भूखा नहीं मार सकता।

रामेश्वर — तुम क्या जानो। बड़ी चतुर औरत है।

जागेश्वर — लोग हमीं लोगों को हँसते होंगे।

रामेश्वर — हँसी की लाज है तो जाकर छाँह कर लो, खिलाओ-पिलाओ। है दम!

जागेश्वर — न भर-पेट खाएँगे, आधे ही पेट सही। बदनामी तो न होगी? चाचा से लड़ाई थी। लड़कों ने हमारा क्या बिगाड़ा है।

रामेश्वर — वह चुड़ैल तो अभी जीती है न?

जागेश्वर चला आया। उसके मन में कई बार यह बात आई थी कि चाची को कुछ सहायता दिया करूँ, पर उनकी जली-कटी बातों से डरता था। आज से उसने एक नया ढंग निकाला है। लड़कों को खेलते देखता तो बुला लेता, कुछ खाने को दे देता। मजूरों को दोपहर की छुट्टी मिलती है। अब वह अवकाश के समय काम करके मजूरी के पैसे कुछ ज्यादा पा जाता। घर चलते समय खाने की कोई न कोई चीज लेता आता और अपने

घरवालों की आँख बचाकर उन अनाथों को दे देता। धीरे-धीरे लड़के उससे इतने हिल-मिल गए कि उसे देखते ही 'भैया-भैया' कहकर दौड़ते, दिनभर उसकी राह देखा करते। पहले माता डरती थी कि कहीं मेरे लड़कों को बहलाकर ये महाशय पुरानी अदावत तो नहीं निकालना चाहते हैं। वह लड़कों को जागेश्वर के पास जाने और उससे कुछ लेकर खाने से रोकती, पर लड़के शत्रु और मित्र को बूढ़ों से ज्यादा पहचानते हैं। लड़के माँ के मना करने की परवा न करते, यहाँ तक कि शनैः-शनैः माता को भी जागेश्वर की सहृदयता पर विश्वास आ गया।

एक दिन रामेश्वर ने बेटे से पूछा — तुम्हारे पास रुपए बढ़ गए है, तो चार पैसे जमा क्यों नहीं करते। लुटाते क्यों हो?

जागेश्वर — मैं तो एक-एक कौड़ी किफायत करता हूँ?

रामेश्वर — जिन्हें अपना समझ रहे हो, वे एक दिन तुम्हारे शत्रु होंगे।

जागेश्वर — आदमी का धर्म भी तो कोई चीज है। पुराने वैर पर एक परिवार की भेंट नहीं कर सकता। मेरा बिगड़ता ही क्या है, यही न रोज घंटे-दो-घंटे और मेहनत करनी पड़ती है।

रामेश्वर ने मुँह फेर लिया। जागेश्वर घर में गया तो उसकी स्त्री न कहा — अपने मन की ही करते हो, चाहे कोई कितना समझाए। पहले घर में आदमी दीया जलाता है।

जागेश्वर — लेकिन यह तो उचित नहीं कि अपने घर में दीया की जगह मोमबत्तियाँ जलाए और मस्जिद को अँधेरा ही छोड़ दे।

स्त्री — मैं तुम्हारे साथ क्या पड़ी, मानो कुएँ में गिर पड़ी। कौन सुख देते हो? गहने उतार लिये, अब साँस भी नहीं लेते।

जागेश्वर — मुझे तुम्हारे गहने से भाइयों की जान ज्यादा प्यारी है।

स्त्री ने मुँह फेर लिया और बोली — वैरी की संतान कभी अपनी नहीं होती।

जागेश्वर ने बाहर जाते हुए उत्तर दिया — वैर का अन्त वैरी के जीवन के साथ हो जाता है।

# दो भाई

प्रातःकाल सूर्य की सुहावनी धूप में कलावती दोनों बेटों को जाँघों पर बैठा दूध और रोटी खिलाती। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुँह में कौर लिये, कई पग उछल-कर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में इस प्रार्थना की रट लगाते थे, जिसमें एक पुराने सहृदय कवि ने किसी जाड़े के सताए हुए बालक के हृदयोद्‌गार को प्रकट किया है --

'दैव-दैव घाम करो तुम्हारे बालक को लगता जाड़'

माँ उन्हें चुमकार कर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदय में प्रेम की उमंग थी और नेत्रों में गर्व की झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गले में बाँहें डाले खेलते थे। केदार की बुद्धि चुस्त थी। माधव का शरीर। दोनों में इतना स्नेह था कि साथ-साथ पाठशाला जाते, साथ-साथ खाते और साथ ही साथ रहते थे! दोनों भाइयों का ब्याह हुआ। केदार की वधू चम्पा अमित-भाषिणी और चंचला थी। माधव की वधू श्यामा साँवली-सलोनी, रूपराशि की खनि थी। बड़ी ही मृदुभाषिणी, बड़ी ही सुशीला और शांतस्वभाव की।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामा पर रीझे। परन्तु कलावती का मन किसी से न मिला। वह दोनों से प्रसन्न और दोनों से अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा का बहुत अंश इस व्यर्थ के प्रयत्न में व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलता का एक भाग श्यामा के शांत स्वभाव से बदल ले।

दोनों भाई संतानवान हुए। हरा-भरा वृक्ष खूब फैला और फलों से लद गया। कुत्सित वृक्ष में केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीला-सा, मुरझाया हुआ; किंतु दोनों अप्रसन्न थे। माधव को धन-संपत्ति का लालसा थी और केदार को संतान की अभिलाषा।

भाग्य की इस कूटनीति ने शनैः शनैः द्वेष का रूप धारण किया। जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कों को सँवारने-सुधारने में लगी रहती; उसे सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती थी। बेचारी चम्पा को चूल्हे में जलना और चक्की में पिसना पड़ता। यह अनीति कभी-कभी कटु शब्दों में निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पा के क्रोध को शांत करने के बदले और बढ़ाती। यहाँ तक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागने की राह न पाकर शिकारी की तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओं की भाँति अलग हो गई। उस दिन एक ही

घर में दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयों ने दाने की सूरत न देखी और कलावती सारे दिन सोती रही।

## 2

कई वर्ष बीत गए। दोनों भाई जो किसी समय एक ही पालथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते थे और एक ही छाती से दूध पीते थे, उन्हें अब एक घर में, एक गाँव में रहना कठिन हो गया। परन्तु कुल की साख में बट्टा न लगे, इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की धधकी हुई आग को राख के नीचे दबाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगों में अब भ्रातृ-स्नेह न था। केवल भाई के नाम की लाज थी। माँ भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती। हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब नादान बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गए थे।

जब उन्हें अपने-पराये की पहचान न थी, उस समय यदि कोई छेड़ने के लिए एक को अपने साथ ले जाने की धमकी देता, तो दूसरा जमीन पर लोट जाता और उस आदमी को कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाई को मृत्यु भी धमकाती तो दूसरे के नेत्रों में आँसू न आते। अब उन्हें अपने-पराये की पहचान हो गई थी।

बेचारे माधव की दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उस पर कुल-मर्यादा का निर्वाह। हृदय चाहे रोए, पर होंठ हँसते रहें। हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियाँ और आवश्यक वस्तुएँ मोतियों के मोल। कुछ पाइयों की जमींदारी कहाँ तक सम्हालती। लड़कों का ब्याह अपने वश की बात थी। पर लड़कियों का विवाह कैसे टल सकता। दो पाई जमीन पहली कन्या के विवाह में भेंट हो गई। उस पर भी बराती बिना भात खाए आँगन से उठ गए। शेष दूसरी कन्या के विवाह में निकल गई। साल भर बाद तीसरी लड़की का विवाह हुआ, पेड़-पत्ते भी न बचे। हाँ, अब की डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहर में वही संबंध है जो मांस और कुत्ते में।

# 3

इस कन्या का अभी गौना न हुआ था कि माधव पर दो साल के बकाया लगान का वारंट आ पहुँचा। कन्या के गहने गिरों (बन्दक) रखे गए। गला छूटा। चम्पा इसी समय की ताक में थी। तुरंत नए नातेदारों को सूचना दी। तुम बेसुध बैठे हो, यहाँ गहनों का सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक नाई और दो ब्राह्मण माधव के दरवाजे पर आकर बैठ गए। बेचारे के गले में फाँसी पड़ गई। रुपयें कहाँ से आवें, न जमीन, न जायदाद, न बाग, न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभी का उठ चुका था। अब यदि कोई संपत्ति थी, तो केवल वही दो कोठरियाँ, जिसमें उसने अपनी सारी आयु बिताई थी, और उनका कोई ग्राहक न था। विलंब से नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदार के पास आया और आँखों में आँसू भरे बोला, भैया इस समय मैं बड़े संकट में हूँ, मेरी सहायता करो।

केदार ने उत्तर दिया — मद्धू! आजकल मैं भी तंग हो रहा हूँ, तुमसे सच कहता हूँ।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वर से बोली — अरे, तो क्या इनके लिए भी तंग हो रहे है! अलग भोजन करने से क्या इज्जत अलग हो जाएगी!

केदार ने स्त्री की ओर कनखियों से ताककर कहा — नहीं-नहीं मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या, कोई न कोई प्रबंध किया ही जाएगा।

चम्पा ने माधव से पूछा — पाँच बीस से कुछ ऊपर ही पर गहने रखे है न।

माधव ने उत्तर दिया — हाँ, ब्याज सहित कोई सवा सौ रूपए होते है।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़ने में लग गए। चम्पा ने तत्त्व की बातचीत शुरू की — रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात न थी परन्तु हमें भी दूसरे से दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाए-पढ़ाए रुपया देते नहीं।

माधव ने सोचा, यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ाने को होता, तो क्या और महाजन मर गए थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों? बोला — लिखने-पढ़ने को मेरे पास है ही क्या? जो कुछ जगह-जायदाद है, वह यही घर है।

केदार और चम्पा ने एक दूसरे को मर्मभेदी नयनों से देखा और मन ही मन कहा — क्या आज सचमुच जीवन की प्यारी अभिलाषाएँ पूरी होंगी। परन्तु हृदय की यह उमंग मुँह तक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गई। चम्पा बड़ी गंभीरता से बोली — घर पर तो कोई महाजन कदाचित ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे, पर गँवई में तो कोई सेंत में रहने वाला भी नहीं। फिर साझे की चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पा की कठोरता से खेल बिगड़ न जाए। बोले — एक महाजन से मेरी जान-पहचान है। वह कदाचित कहने-सुनने में आ जाए!

चम्पा ने गर्दन हिलाकर इस युक्ति की सराहना की और बोली — पर दो-तीन बीस से अधिक मिलना कठिन है।

केदार ने जान पर खेलकर कहा — अरे, बहुत दबाने पर चार बीस हो जाएंगे। और क्या!

अबकी चम्पा ने तीव्र दृष्टि से केदार को देखा और अनमनी-सी होकर बोली — महाजन ऐसे अंधे नहीं होते।

माधव अपने भाई-भावज के इस गुप्त रहस्य को कुछ-कुछ समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहाँ से मिल गई। बोला — और रुपये कहाँ से आवेंगे.

चम्पा चिढ़कर बोली — और रुपयों के लिए और फिक्र करो। सवा सौ रुपए इन दो कोठरियों के इस जनम में कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजन से दिला दूँ, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातों से सशंक हो गया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे है। दृढ़ता के साथ अड़ कर बोला — और कौन सी फिक्र करूँ? गहने होते तो कहता, लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दस के लिए क्या पचास के लिए दोनों एक ही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाए, तो यहाँ तक तो स्वीकार है; परन्तु घर भी बेचूँ और उस पर भी प्रतिष्ठा धूल में मिले, ऐसा मैं न करूँगा। केवल नाम का ध्यान है, नहीं एक बार नहीं कर जाऊँ तो मेरा कोई क्यो करेगा। और सच पूछो तो मुझे अपने नाम की कोई चिंता नहीं है। मुझे कौन जानता है? संसार तो भैया को हँसेगा।

केदार का मुँह सूख गया। चम्पा भी चकरा गई। वह बड़ी चतुर वाक्यनिपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवार से ऐसी दृढ़ता की आशा न थी? उसकी ओर आदर से देखकर बोली — लालू, कभी-कभी तुम भी लड़कों की-सी बातें करते हो? भला इस झोंपड़ी पर कौन सौ रुपए निकलकर देगा? तुम सवा सौ के बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूँ। उतना ही मेरा भी

तो है? घर पर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हाँ, और रुपयों का प्रबंध हम-आप कर देंगे। इज्जत हमारी-तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पाएगी। वह रुपया अलग खाते में चढ़ा दिया जाएगा।

माधव की इच्छाएँ पूरी हुई। उसने मैदान मार लिया। सोचने लगा, मुझे तो रुपयों से काम है। चाहे एक नहीं, दस खाते में चढ़ा लो। रहा मकान वह जीते जी नहीं छोड़ने का। प्रसन्न होकर चला। उसके जाने के बाद केदार और चम्पा ने कपट-भेष त्याग दिया और बड़ी देर तक एक दूसरे को इस कड़े सौदे का दोषी सिद्ध करने की चेष्टा करते रहे। अन्त में मन को इस तरह संतोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नहीं, किंतु भर-कठौत तो है। घर, हाँ देखेंगे कि श्यामा रानी इस घर में कैसे राज करती है।

केदार के दरवाजे पर दो बैल खड़े है। इनमें कितनी संघ-शक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एक ही जुए में चलते है, बस इनमें इतना ही नाता है। किंतु अभी कुछ दिन हुए, जब इनमें से एक चम्पा के मैके मँगनी गया था, तो दूसरे ने तीन दिन तक नाद में मुँह नहीं डाला। परन्तु शोक, एक गोद में खेले भाई, एक छाती से दूध पीनेवाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घर में रहना भी नहीं चाहते।

# 4

प्रातःकाल था। केदार के द्वार पर गाँव के मुखिया और नंबरदार विराजमान थे। मुंशी दातादयाल अभिमान से चारपाई पर बैठे रेहन का मसविदा तैयार करने में लगे थे। बार-बार कलम बनाते और बार-बार खत रखते, पर खत की शान न सुधरती। केदार का मुखारविंद विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखिया ने कहा — भाई ऐसा हित, न भाई ऐसा शत्रु। केदार ने छोटे भाई की लाज रख ली।

नंबरदार ने अनुमोदन किया — भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तार ने कहा — भाई, सपूतों का यहीं काम है।

दातादयाल ने पूछा — रेहन लिखनेवाले का नाम?

बड़े भाई बोले — माधव वल्द शिवदत्त।

'और लिखानेवाले का?'

'केदार वल्द शिवदत्त।'

माधव ने बड़े भाई की ओर चकित होकर देखा। आँखें डबडबा आईं। केदार उसकी ओर देख न सका। नंबरदार, मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है? बातचीत तो किसी साहूकार की थी। जब घर ही में रुपया मौजूद है तो इस रेहननामे का आवश्यकता ही क्या थी? भाई-भाई में इतना अविश्वास। अरे, राम! राम! क्या माधव 80 रु. का भी महँगा है। और यदि दबा भी बैठता, तो क्या रुपए पानी में चले जाते।

सभी की आँखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानो आश्चर्य की अथाह नदी में नौकाएँ डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजे की चौखट पर खड़ी थी। वह सदा केदार की प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोकरीति ने उसे अपने जेठ को आड़े हाथों लेने से रोका।

बूढ़ी अम्माँ ने सुना तो सूखी नदी उमड़ आई। उसने एक बार आकाश की ओर देखा और माथा ठोंक लिया।

अब उसे उस दिन का स्मरण हो आया जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोद में बैठे हुए उछल-कूद कर दूध-रोटी खाते थे। उस समय माता के नेत्रों में कितना अभिमान था, हृदय में कितनी उमंग और कितना उत्साह।

परन्तु आज, आह! आज नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक-संताप। उसने पृथ्वी की ओर देखकर कातर स्वर में कहा — हे नारायण! क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही कोख से जन्म लेना था?

# महातीर्थ

मुंशी इंद्रमणि की आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा। अपने बच्चों के लिए दाई का खर्च न उठा सकते थे। लेकिन एक तो बच्चे की सेवा-शुश्रूषा की फिक्र और दूसरे अपने बराबर वालों से हेठे बनकर रहने का अपमान; इस खर्च को सहने पर मजबूर करता था। बच्चा दाई को बहुत चाहता था, हमदम उसके गले का हार बना रहता था। इसलिए दाई और भी जरूरी मालूम होती थी, पर शायद सबसे बड़ा कारण यह था कि वह मुरौवत के वश दाई को जवाब देने का साहस नहीं कर सकते थे। बुढ़िया उनके यहाँ तीन साल से नौकर थी। उसने उनके इकलौते लड़के का लालन-पालन किया था। अपना काम बड़ी मुस्तैदी और परिश्रम से करती थी। उसे निकालने का कोई बहाना नहीं था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इंद्रमणि जैसे भले आदमी के स्वभाव के विरुद्ध था, पर सुखदा इस संबंध में अपने पति से सहमत न थी। उसे संदेह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजार से लौटती तो वह दालान में छिपी रहती कि देखूँ आटा कहीं छिपाकर तो नहीं रख देती; लकड़ी तो नहीं छिपा देती। उसकी

लाई हुई चीजों को घंटों देखती, पूछताछ करती। बार-बार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है। क्या इतना महँगा हो गया? दाई कभी तो इन संदेहात्मक प्रश्नों का उत्तर नम्रतापूर्वक देती, किंतु जब कभी बहू जी ज्यादा तेज हो जातीं, तो वह भी कड़ी पड़ जाती थी। शपथें खाती। सफाई की शहादतें पेश करती। वाद-विवाद में घंटों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहती थी और प्रतिदिन यह नाटक दाई के अश्रुपात के साथ समाप्त होता था। दाई का इतनी सख्तियाँ झेलकर पड़े रहना सुखदा के संदेह को और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नहीं होता था कि यह बुढ़िया केवल बच्चे के प्रेमवश पड़ी हुई है। वह बुढ़िया को इतनी बाल-प्रेम-शीला नहीं समझती थी।

## 2

संयोग से एक दिन दाई को बाजार से लौटने में जरा देर हो गई। वहाँ दो कुँजड़िनों में देवासुर संग्राम मचा था। उनका चित्रमय हाव-भाव, उनका आग्नेय तर्क-वितर्क, उनके कटाक्ष और व्यंग्य सब अनुपम थे। विष के दो नद थे या ज्वाला के दो पर्वत, जो दोनों तरफ से उमड़कर आपस में टकरा गए थे। क्या

वाक्य-प्रवाह था, कैसी विचित्र विवेचना! उनका शब्द-बाहुल्य, उनकी मार्मिक विचारशीलता, उनके अलंकृत और उनकी उपमाओं की नवीनता पर ऐसा कौन-सा कवि है जो मुग्ध न हो जाता। उनका धैर्य, उनकी शांति विस्मयजनक थी। दर्शकों की एक खासी भीड़ भी थी। वह लाज को भी लज्जित करनेवाले इशारे, वह अश्लील शब्द जिनसे मलिनता के भी कान खड़े होते, सहस्रों रसिकजनों के लिए मनोरंजन की सामग्री बने हुए थे।

दाई भी खड़ी हो गई कि देखूँ क्या मामला है। तमाशा इतना मनोरंजक था कि उसे समय का बिलकुल ध्यान न रहा। यकायक जब नौ बजे की आवाज कान में आई तो चौंक पड़ी और लपकी हुई घर की ओर चली।

सुखदा भरी बैठी थी। दाई को देखते ही त्योरी बदल कर बोली — क्या बाजार में खो गई थी?

दाई विनयपूर्ण भाव से बोली — एक जान-पहचान की महरी से भेंट हो गई। वह बातें करने लगी।

सुखदा इस जवाब से और भी चिढ़कर बोली — यह दफ्तर जाने की देर हो रही है और तुम्हें सैर-सपाटे की सूझती है।

परन्तु दाई ने इस समय दबने में ही कुशल समझी, बच्चे को गोद में लेने चली, पर सुखदा ने झिझककर कहा — रहने दो, तुम्हारे बिना वह व्याकुल नहीं हुआ जाता।

दाई ने इस आज्ञा को मानना आवश्यक नहीं समझा। बहू जी का क्रोध ठंडा करने के लिए इससे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणि को इशारे से अपने पास बुलाया। वह दोनों हाथ फैलाए खड़खड़ाता हुआ उसकी ओर चला। दाई ने उसे गोद में उठा लिया और दरवाजे की तरफ चली। लेकिन सुखदा बाज की तरह झपटी और रुद्र को उसकी गोद से छीन कर बोली — तुम्हारी यह धूर्तता बहुत दिनों से देख रही हूँ। यह तमाशे किसी और को दिखाइयो। यहाँ जी भर गया।

दाई रुद्र पर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इस बात को जानती है। उसकी समझ में सुखदा और उनके बीच यह ऐसा मजबूत संबंध था, जिसे साधारण झटके तोड़ न सकते थे। यही कारण था कि सुखदा के कटुवचनों को सुनकर भी उसे यह विश्वास न होता था कि मुझे निकालने पर प्रस्तुत है। सुखदा ने यह बातें कुछ ऐसी कठोरता से कहीं और रुद्र को ऐसी निर्दयता से छीन लिया कि दाई से सह्य न हो सका। बोली — बहू जी! मुझसे कोई बड़ा अपराध तो नहीं हुआ, बहुत तो पाव घंटे की देर हुई होगी। इस पर आप इतना बिगड़ रही हैं तो साफ क्यों नहीं

कह देती कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायण ने पैदा किया है तो खाने को भी देगा। मजदूरी का अकाल थोड़े ही है।

सुखदा ने कहा — तो यहाँ तुम्हारी परवाह ही कौन करता है? तुम्हारी जैसी लौंडिनें गली-गली ठोकरें खाती फिरती हैं।

दाई ने जवाब दिया — हाँ, नारायण आपको कुशल से रखें। लौंडिने और दाइयाँ आपको बहुत मिलेंगी। मुझसे जो अपराध हुआ हो, क्षमा कीजिएगा, मैं जाती हूँ।

सुखदा — जाकर मरदाने में अपना हिसाब कर लो।

दाई — मेरी तरफ से रुद्र बाबू को मिठाइयाँ मँगवा दीजिएगा।

इतने में इंद्रमणि भी बाहर से आ गए, पूछा — क्या है क्या?

दाई ने कहा — कुछ नहीं। बहू जी ने जवाब दिया है, घर जाती हूँ।

इंद्रमणि गृहस्थी के जंजाल से इस तरह बचते थे जैसे कोई नंगे पैरवाला मनुष्य काँटों से बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह खड़े रहना मंजूर था, पर काँटों में पैर रखने की हिम्मत न थी। खिन्न होकर बोले — क्या बात हुई?

सुखदा ने कहा — कुछ नहीं। अपनी इच्छा। जी नहीं चाहता, नहीं रखते। किसी के हाथों बिक तो नहीं गए।

इंद्रमणि ने झुँझलाकर कहा — तुम्हें बैठे-बैठे एक न एक खुचड़ सूझती रहती है।

सुखदा ने तिनककर कहा — हाँ, मुझे तो इसका रोग है। क्या करूँ स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गले में बाँध लो, मेरे यहाँ जरूरत नहीं।

## 3

दाई घर से निकली तो आँखें डबडबाई हुई थी। हृदय रुद्रमणि के लिए तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार बालक को लेकर प्यार कर लूँ; पर यह अभिलाषा लिये हुए ही उसे घर से बाहर निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाई के पीछे-पीछे दरवाजे तक आया, पर दाई ने जब दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया तो वह मचलकर जमीन पर लेट गया और अन्ना-अन्ना कहकर रोने लगा। सुखदा ने चुमकारा, प्यार किया, गोद में लेने की कोशिश की, मिठाई देने का लालच दिया, मेला दिखाने का वादा किया, इससे जब काम न चला तो बन्दर, सिपाही, लूलू और हौआ की धमकी दी पर रुद्र ने वह रौद्र भाव धारण किया कि किसी तरह चुप न हुआ। यहाँ तक कि सुखदा

को क्रोध आ गया, बच्चे को वहीं छोड़ दिया और आकर घर के धंधे में लग गई। रोते-रोते रुद्र का मुँह और गाल लाल हो गए, आँखें सूज गईं। निदान वह वहीं जमीन पर सिसकते-सिसकते सो गया।

सुखदा ने समझा कि बच्चा थोड़ी देर में रो-धोकर चुप हो जाएगा। रुद्र ने जागते ही अन्ना की रट लगाई। तीन बजे इंद्रमणि दफ्तर से आए और बच्चे की यह दशा देखी तो स्त्री की तरफ कुपित नेत्रों से देखकर उसे गोद में उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्त में रुद्र को विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गई है तो उसे संतोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही उसने फिर चीखना शुरू किया — अन्ना मिठाई ला।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गए। रुद्र को अन्ना का रट लगाने और रोने के सिवा और कोई काम न था। वह शांत प्रकृति कुत्ता, जो उसकी गोद में एक क्षण के लिए भी न उतरता था, वह मौन व्रतधारी बिल्ली जिसे ताख पर देखकर वह खुशी से फूला न समाता था, वह पंखहीन चिड़िया, जिस पर वह जान देता ता, सब उसके चित्त से उतर गए। वह उनकी तरफ आँख उठाकर भी न देखता। अन्ना जैसी जीती-जागती, प्यार करनेवाली, गोद में लेकर

घुमाने वाली, थपक-थपककर सुलाने वाली, गा-गाकर खुश करने वाली चीज का स्थान उन निर्जीव चीजों से पूरा न हो सकता था। वह अक्सर सोते-सोते चौंक पड़ता अन्ना-अन्ना पुकारकर हाथों से इशारा करता, मानों उसे बुला रहा है। अन्ना की खाली कोठरी का दरवाजा खुलते ही सुनता तो अन्ना! अन्ना कहकर दौड़ता। समझता कि अन्ना आ गई। उसका भरा हुआ शरीर घुल गया, गुलाब जैसा चेहरा सूख गया, माँ और बाप उसकी मोहनी हँसी के लिए तरसकर रह जाते थे। यदि बहुत गुदगुदाने या छेड़ने से हँसता भी तो ऐसा जान पड़ता था कि दिल ले नहीं हँसता, केवल दिल रख लेने के लिए हँस रहा है। उसे अब दूध से प्रेम न था, न मिश्री से, न मेवे से, न मीठे बिस्कुट से, न ताजी इमरती से। उनसे मजा तब था जब अन्ना अपने हाथों से खिलाती थी। अब उनमें मजा नहीं था। दो साल का लहलहाता हुआ सुंदर पौधा मुरझा गया। वह बालक जिसे गोद में उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपन का अनुभव होता था, अब सूख कर काँटा हो गया। सुखदा अपने बच्चे की यह दशा देखकर भीतर ही भीतर कुढ़ती, अपनी मूर्खता पर पछताती। इंद्रमणि, जो शांतिप्रिय आदमी थे, अब बालक को गोद से अलग न करते थे, उसे रोज साथ हवा खिलाने ले जाते थे। नित्य नए खिलौने लाते थे, पर मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न पनपता था। दाई उसके लिए संसार की सूर्य

थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाश से वंचित रहकर हरियारी को बाहर कैसे दिखाता? दाई के बिना उसे अब चारों ओर सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रख ली गई थी। पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुँह छिपा लेता था, मानो वह कोई डाइन या चुड़ैल हो।

प्रत्यक्ष रूप में दाई को न देखकर रुद्र अब उसकी कल्पनाओं में मग्न रहता। वहाँ उसकी प्यारी अन्ना चलती-फिरती दिखाई देती थी। उसकी वह गोद थी, वही स्नेह; वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयाँ, वही सुहावना संसार, वही आनन्दमय जीवन। अकेले बैठकर कल्पित अन्ना से बातें करता, अन्ना, कुत्ता भूके। अन्ना गाय दूध देती। अन्ना; उजला-उजला घोड़ा दौड़े। सबेरा होते ही लोटा लेकर दाई की कोठरी में जाता और कहता — अन्ना, पानी। दूध का गिलास लेकर उसकी कोठरी में रख आता और कहता — अन्ना, दूध पिला। अपनी चारपाई पर तकिया रखकर चादर से ढाँक देता, और कहता — अन्ना सोती है। सुखदा जब खाने बैठती तो कटोरे उठा-उठाकर अन्ना की कोठरी में ले जाता और कहता — अन्ना खाना खाएगी। अन्ना अब उसके लिए एक स्वर्ग की वस्तु थी, जिसके लौटने की अब उसे बिलकुल आशा न थी। रुद्र के स्वभाव में धीरे-धीरे बालकों की चपलता और सजीवता की जगह एक निराशाजनक धैर्य, एक

आनन्दविहीन शिथिलता दिखाई देने लगी। इस तरह तीन हफ्ते गुजर गए। बरसात का मौसम था। कभी बैचेन करनेवाली गर्मी, कभी हवा के ठंड़े झोंके। बुखार और जुकाम का जोर था। रुद्र की दुर्बलता इस ॠतु-परिवर्तन को बर्दाश्त न कर सकी। सुखदा उसे फलालैन का कुर्ता पहनाएँ रखती थी। उसे पानी के पास नहीं जाने देती। नंगे पैर एक कदम भी नहीं चलने देती। पर सर्दी लग ही गई। रुद्र को खाँसी और बुखार आने लगा।

## 4

प्रभात का समय था। रुद्र चारपाई पर आँख बन्द किए पड़ा था। डाक्टरों का इलाज निष्फल हुआ। सुखदा चारपाई पर बैठी उसकी छाती में तेल की मालिश कर रही थी और इंद्रमणि विषाद की मूर्ति बने हुए करुणापूर्ण आँखों से बच्चे को देख रहे थे। इधर सुखदा से बहुत कम बोलते थे। उन्हें उससे एक तरह की घृणा-सी हो गई थी। वह रुद्र की बीमारी का एकमात्र कारण उसी को समझते थे। वह उनकी दृष्टि में बहुत नीच स्वभाव की स्त्री थी। सुखदा ने डरते-डरते कहा — आज बड़े हकीम साहब को बुला लेते; शायद उनकी दवा से फायदा हो।

इंद्रमणि ने काली घटाओं की ओर देखकर रुखाई से जवाब दिया — बड़े हकीम नहीं, यदि धन्वतंरि भी आवें तो भी उसे कोई फायदा न होगा।

सुखदा ने कहा — तो क्या अब किसी की दवा ने होगी?

इंद्रमणि — बस, इसकी एक ही दवा है और अलभ्य है।

सुखदा — तुम्हें तो बस वही धुन सवार है। क्या बुढ़िया आकर अमृत पिला देगी।

इंद्रमणि — वह तुम्हारे लिए चाहे विष हो, पर लड़के के लिए अमृत ही होगी।

सुखदा — मैं नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उसके अधीन है।

इंद्रमणि — यदि नहीं समझती हो और अब तक नहीं समझी, तो रोओगी। बच्चे से हाथ धोना पड़ेगा।

सुखदा — चुप भी रहो, क्या अशुभ मुँह से निकालते हो। यदि ऐसी ही जली-कटी सुनानी है, तो बाहर चले जाओ।

इंद्रमणि — तो मैं जाता हूँ। पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारे ही गर्दन पर होगी। यदि लड़के को तंदुरुस्त देखना चाहती हो, तो उसी दाई के पास जाओ, उससे विनती और प्रार्थना करो, क्षमा माँगो। तुम्हारे बच्चे की जान उसी की दया के अधीन है।

सुखदा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों से आँसू जारी थे।

इंद्रमणि ने पूछा — क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ?

सुखदा — तुम क्यों जाओगे, मैं आप ही चली लाऊँगी।

इंद्रमणि — नहीं, क्षमा करो। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है। न जाने तुम्हारे जबान से क्या निकल पड़े कि जो वह आती भी तो न आवे।

सुखदा ने पति की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखा और बोली — हाँ, और क्या मुझे अपने बच्चे की बीमारी का शोक थोड़े ही है। मैंने लाज के मारे तुमसे कहा नहीं, पर मेरे हृदय में यह बात बार-बार उठी है। यदि मुझे दाई के मकान का पता मालूम होता तो मैं कब की उसे मना लाई होती। वह मुझसे कितनी ही नाराज हो, पर रुद्र से उसे प्रेम था। मैं आज ही उसके पास जाऊँगी। तुम विनती करने को कहते हो, मैं उसके पैरों पड़ने के लिए तैयार हूँ। उसके पैरों को आँसुओं से भिगोऊँगी, और जिस तरह राजी होगी, राजी करूँगी।

सुखदा ने बहुत धैर्य धर कर यह बातें कहीं, परन्तु उमड़े हुए आँसू न रुक सके। इंद्रमणि ने स्त्री की ओर सहानुभूतिपूर्वक देखा और

लज्जित हो बोले — मैं तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता। मैं खुद ही जाता हूँ।

## 5

कैलासी संसार में अकेली थी। किसी समय उसका परिवार गुलाब की तरह फूला हुआ था; परन्तु धीरे-धीरे उसकी सब पत्तियाँ गिर गई। अब उसकी सब हरियाली नष्ट-भ्रष्ट हो गई, और अब वही एक सूखी हुई टहनी उस हरे-भरे पेड़ की चिह्न रह गई थी।

परन्तु रुद्र को पाकर इस सूखी हुई टहनी में जान पड़ गई थी। इसमें हरी-भरी पत्तियाँ निकल आई थी। वह जीवन, जो अब तक नीरस और शुष्क था; अब सरस और सजीव हो गया था। अँधेरे जंगल में भटके हुए पथिक को प्रकाश की झलक आने लगी। अब उसकी जीवन निरर्थक नहीं बल्कि सार्थक हो गया था।

कैलासी रुद्र की भोली-भाली बातों पर निछावर हो गई; पर वह अपना स्नेह सुखदा से छिपाती थी, इसलिए कि माँ के हृदय में द्वेष न हो। वह रुद्र के लिए माँ से छिपकर मिठाइयाँ लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिन में दो-तीन बार उसे उबटन मलती कि बच्चा खूब पुष्ट हो। वह दूसरों के सामने उसे कोई

चीज नहीं खिलाती कि उसे नजर लग जाएगी। सदा वह दूसरों से बच्चे के अल्पाहार का रोना रोया करती। उसे बुरी नजर से बचाने के लिए ताबीज और गंडे लाती रहती। यह उसका विशुद्ध प्रेम था। उसमें स्वार्थ की गंध भी न थी।

इस घर से निकलकर आज कैलासी की वह दशा थी, जो थियेटर में यकायक बिजली लैम्पों के बुझ जाने से दर्शकों की होती है। उसके सामने वही सूरत नाच रही थी। कानों में वही प्यारी-प्यारी बातें गूँज रही थीं। उसे अपना घर काटे खाता था। उस कालकोठरी में दम घुटा जाता था।

रात ज्यों-त्यों कर कटी। सुबह को वह घर में झाड़ू लगा रही थी। बाहर ताजे हलवे की आवाज सुनकर बड़ी फुर्ती से घर से बाहर आई। तब याद आ गया, आज हलुवा कौन खाएगा? आज गोद में बैठकर कौन चहकेगा? वह मधुर गान सुनने के लिए जो हलुवा खाते समय रुद्र की आँखों से, होटों से, और शरीर के एक-एक अंग से बरसता, कैलासी का हृदय तड़प गया। वह व्याकुल होकर घर से बाहर निकली कि चलूँ रुद्र को देख आऊँ। पर आधे रास्ते से लौट गई।

रुद्र कैलासी के ध्यान से एक क्षण भर के लिए भी नहीं उतरता था। यह सोते-सोते चौंक पड़ती, जान पड़ता रुद्र डंडे का घोड़ा

दबाए चला आता है। पड़ोसियों के पास जाती, तो रुद्र ही की चर्चा करती। रुद्र उसके दिल और जान में बसा हुआ था। सुखदा के कठोरतापूर्ण कुव्यवहार का उसके हृदय में ध्यान नहीं था। वह रोज इरादा करती थी कि आज रुद्र को देखने चलूँगा। उसके लिए बाजार से मिठाइयाँ और खिलौने लाती। घर से चलती, पर रास्ते से लौट आती। कभी दो-चार कदम से आगे नहीं बढ़ा जाता। कौन मुँह लेकर जाऊँ। जो प्रेम को धूर्तता समझता हो, उसे कौन-सा मुँह दिखाऊँ? कभी सोचती यदि रुद्र मुझे न पहचाने तो? बच्चों के प्रेम का ठिकाना ही क्या? नई दाई से हिल-मिल गया होगा। यह ख्याल उसके पैरों पर जंजीर का काम कर जाता था।

इस तरह दो हफ्ते बीत गए। कैलासी का जी उचटा रहता, जैसे उसे कोई लम्बी यात्रा करनी हो। घर की चीजें जहाँ की तहाँ पड़ी रहतीं, न खाने की सुधि थी, न कपड़े की। रात-दिन रुद्र ही के ध्यान में डूबी रहती थी। संयोग से इन्हीं दिनों बद्रीनाथ की यात्रा का समय आ गया। मुहल्ले के कुछ लोग यात्रा की तैयारियाँ करने लगे। कैलासी की दशा इस समय पालतू चिड़िया की-सी थी, जो पिंजड़े से निकलकर फिर किसी कोने की खोज में हो। उसे विस्मृति का यह अच्छा अवसर मिल गया। यात्रा के लिए तैयार हो गई।

## 6

आसमान पर काली घटाएँ छाई हुई थी, और हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थी। देहली स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ थी। कुछ गाड़ियों पर बैठे हुए थे, कुछ अपने घरवालों से विदा हो रहे थे। चारों तरफ एक हलचल-सी मची हुई थी। संसार-माया आज भी उन्हें जकड़े हुए थी। कोई स्त्री को सावधान कर रहा था कि धान कट जावे तो तालाब वाले खेत में मटर बो देना, और बाग के पास गेहूँ। कोई अपने जवान लड़के को समझा रहा था, असामियों पर बकाया लगान की नालिश में देर न करना, और दो रुपए सैंकड़ा सूद जरूर काट लेना। एक बूढ़े व्यापारी महाशय अपने मुनीम से कह रहे थे कि माल आने में देर हो तो खुद चले जाइएगा, और चलतू माल लीजिएगा, नहीं तो रुपया फँस जाएगा। पर कोई-कोई ऐसे श्रद्धालु मनुष्य भी थे, जो धर्म-मग्न दिखाई देते थे। वे या तो चुपचाप आसमान की ओर निहार रहे थे या माला फेरने में तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाड़ी में बैठी सोच रही थी, इन भले आदमियों को अब भी संसार की चिंता नहीं छोड़ती। वही बनिज — व्यापार लेन-देन की चर्चा। रुद्र इस समय यहाँ

होता, तो बहुत रोता, मेरी गोद से कभी न उतरता। लौटकर उसे अवश्य देखने जाऊँगी। या ईश्वर किसी तरह गाड़ी चले; गर्मी के मारे जी व्याकुल हो रहा है। इतनी घटा उमड़ी हुई है, किंतु बरसने का नाम नहीं लेती। मालूम नहीं, यह रेलवाले क्यों देर कर रहे है। झूठमूठ इधर-उधर दौड़ते-फिरते है। यह नहीं कि झटपट गाड़ी खोल दें। यात्रियों की जान में जान आए। एकाएक उसने इंद्रमणि को बाइसिकिल लिये प्लेटफार्म पर आते देखा। उसका चेहरा उतरा हुआ, और कपड़े पसीने से तर थे। वह गाड़ियों में झाँकने लगे। कैलासी केवल यह जताने के लिए कि मैं भी यात्रा करने जा रही हूँ; गाड़ी से बाहर निकल आई। और इंद्रमणि उसे देखते ही लपककर करीब आ गए; और बोले — क्यों कैलासी, तुम भी यात्रा को चली?

कैलासी ने सगर्व दीनता से उत्तर दिया — हाँ, यहाँ क्या करूँ? जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं, मालूम नहीं कब आँखें बन्द हो जाएँ, परमात्मा के यहाँ मुँह दिखाने का भी तो कोई उपाय होना चाहिए। रुद्र बाबू अच्छी तरह है?

इंद्रमणि — अब तो जा ही रही हो। रुद्र का हाल पूछकर क्या करोगी? उसे आशीर्वाद देती रहना।

कैलासी की छाती धड़कने लगी। घबराकर बोली — उनका जी अच्छा नहीं है क्या?

इंद्रमणि — वह तो उसी दिन से बीमार है जिस दिन तुम वहाँ से निकलीं। दो हफ्ते तक उसने अन्ना-अन्ना की रट लगाई। अब एक हफ्ते से खाँसी और बुखार में पड़ा है। सारी दवाइयाँ करके हार गया कुछ फायदा न हुआ। मैंने सोचा था कि चलकर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिवा लाऊँगा। क्या जाने तुम्हें देखकर उसकी तबीयत सँभल जाएँ। पर तुम्हारे घर पर आया तो मालूम हुआ कि तुम यात्रा करने जा रही हो। अब किस मुँह से चलने को कहूँ। तुम्हारे साथ सलूक ही कौन-सा अच्छा किया था जो इतना साहस करूँ। फिर पुण्य-कार्य में विघ्न डालने का भी डर है। जाओ, उसकी ईश्वर मालिक है। आयु शेष है तो बच ही जाएगा। अन्यथा ईश्वरी गति में किसी का क्या वश।

कैलासी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सामने की चीजें तैरती हुई मालूम होने लगी। हृदय-भावी अशुभ की आशंका से दहल गया। हृदय से निकल पड़ा — या ईश्वर, मेरे रुद्र का बाल बाँका न हो। प्रेम से गला भर आया। विचार किया मैं कैसी कठोरहृदया हूँ। प्यारा बच्चा रो-रोकर हलाकन हो गया, और मैं उसे देखने तक नहीं गई। सुखदा का स्वभाव अच्छा नहीं, न सही किंतु रुद्र ने मेरा क्या बिगाड़ा था कि मैंने माँ का बदला बेटे से

लिया। ईश्वर मेरा अपराध क्षमा करो। प्यारा रुद्र मेरे लिए हुड़क रहा है। इस ख्याल से कैलासी का कलेजा मसोस उठा, और आँखों में आँसू बह निकले। मुझे क्या मालूम था कि उसे मुझसे इतना प्रेम है। नहीं मालूम बच्चे की क्या दशा है। भयातुर हो बोली — दूध तो पीते है न?

इंद्रमणि — तुम दूध पीने को कहती हो! उसने दो दिन से आँखें तक नहीं खोली।

कैलासी — या मेरे परमात्मा! अरे कुली! कुली! बेटा, आकर मेरा सामान गाड़ी से उतार दे। अब मुझे तीरथ जाना नहीं सूझता। हाँ, बेटा जल्दी कर, बाबू जी देखे कोई एक्का हो तो ठीक कर लो।

एक्का रवाना हुआ। सामने सड़क पर बग्गियाँ खड़ी थी। घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। कैलासी बार-बार झुँझलाती थी और एक्कावान से कहती थी, बेटा जल्दी कर। मैं तुझे कुछ ज्यादे दे दूँगी। रास्तें में मुसाफिरों की भीड़ देखकर उसे क्रोध आता था। उसका जी चाहता था कि घोड़े के पर लग जाते; लेकिन इंद्रमणि का मकान करीब आ गया तो कैलासी की हृदय उछलने लगा। बार-बार हृदय से रुद्र के लिए शुभ आशीर्वाद निकलने लगा। ईश्वर करे सब कुशल-मंगल हो। एक्का इंद्रमणि की गली की

ओर मुड़ा। अकस्मात कैलासी के कान रोने की ध्वनि पड़ी। कलेजा मुँह को आ गया। सिर में चक्कर आ गया। मालूम हुआ नदी में डूबी जाती हूँ। जी चाहा कि इक्के पर से कूद पड़ूँ। पर थोड़ी ही देर में मालूम हुआ कि कोई स्त्री मैके से विदा हो रही है, संतोष हुआ। अन्त में इंद्रमणि का मकान आ पहुँचा। कैलासी ने डरते-डरते दरवाजा की तरफ ताका। जैसे कोई घर से भागा हुआ अनाथ लड़का शाम को भूखा-प्यासा घर आए, दरवाजे की ओर सटकी हुई आँखों से देखे कि कोई बैठा तो नहीं है। दरवाजे पर सन्नाटा छाया हुआ था। महाराज बैठा सुरती मल रहा था। कैलासी को जरा ढाढ़स हुआ। घर में बैठी तो नई दाई पुलटिस पका रही है। हृदय में बल का संचार हुआ। सुखदा के कमरे में गई तो उसका हृदय गर्मी के मध्याह्नकाल से सदृश काँप रहा था। सुखदा रुद्र को गोद में लिए दरवाजे की ओर एकटक ताक रही थी। शोक और करुणा की मूर्ति बनी थी।

कैलासी ने सुखदा से कुछ नहीं पूछा। रुद्र को उसकी गोद से लिया और उसकी तरफ सजल नयनों से देखकर कहा — बेटा रुद्र आँखें खोलो।

रुद्र ने आँखें खोली, क्षणभर दाई को चुपचाप देखता रहा, तब यकायक दाई के गले से लिपटकर बोला — अन्ना आई! अन्ना आई!

रुद्र का पीला मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा, जैसे बुझते हुए दीपक में तेल पड़ जाए। ऐसा मालूम हुआ मानो वह कुछ बढ़ गया है।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातःकाल का समय था। रुद्र आँगन में खेल रहा था। इंद्रमणि ने बाहर आकर उसे गोद में उठा लिया, और प्यार से बोले — तुम्हारी अन्ना को मारकर भगा दें?

रुद्र ने मुँह बनाकर कहा — नहीं, रोएगी।

कैलासी बोली — क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बद्रीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्रा का पुण्य-फल कौन देगा?

इंद्रमणि ने मुस्कराकर कहा — तुम्हें उससे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ महातीर्थ है।

# विस्मृति

चित्रकूट के सान्निकट धनगढ़ नामक एक गाँव है। कुछ दिन हुए वहाँ शानसिंह और गुमानसिंह दो भाई रहते थे। ये जाति के ठाकुर (क्षत्रिय) थे। युद्धस्थल में वीरता के कारण उनके पूर्वजों को भूमि का एक भाग मुआफी प्राप्त हुआ था। खेती करते थे, भैंसें पाल रखी थी, घी बेचते थे, मट्ठा खाते थे और प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत करते थे। उनकी एक बहिन थी, जिसका नाम दूजी थी। यथा नाम तथा गुण। दोनों भाई परिश्रमी और अत्यंत साहसी थे। बहिन अत्यंत कोमल, सुकुमारी, सिर पर घड़ा रखकर चलती तो उसकी कमर बल खाती थी; किंतु तीनों अभी कुँवारे थे। प्रकटतः विवाह की चिंता न थी। बड़े भाई शानसिंह सोचते, छोटे भाई के रहते हुए अब मैं अपना विवाह कैसे करूँ। छोटे भाई गुमानसिंह लज्जावश अपनी अभिलाषा प्रकट न करते थे कि बड़े भाई से पहले मैं अपना ब्याह कर लूँ? वे लोगों से कहा करते थे कि भाई हम बड़े आनन्द में है, आनन्दपूर्ण भोजन कर मीठी नींद सोते हैं। कौन यह झंझट सिर पर ले? किंतु लग्न के दिनों में कोई नाई या ब्राह्मण गाँव में वर ढूँढ़ने आ जाता तो उसकी

सेवा-सत्कार में यह कोई बात न उठा रखते थे। पुराने चावल निकाले जाते, पालतू बकरे देवी को भेंट होते, और दूध की नदियाँ बहने लगती थीं। यहाँ तक कि कभी-कभी उसका भ्रातृ-स्नेह प्रतिद्वंद्विता एवं द्वेष भाव के रूप में परिणत हो जाता था। इन दिनों में इनकी उदारता उमंग पर आ जाती थी, और इसमें लाभ उठाने वालों की भी कमी न थी। कितने ही नाई और ब्राह्मण ब्याह के असत्य समाचार लेकर उनके यहाँ आते, और दो-चार दिन पूड़ी-कचौड़ी खा कुछ विदाई लेकर वरक्षा (फलदान) भेजने का वादा करके अपने घर की राह लेते। किंतु दूसरे लग्न तक वह अपना दर्शन तक न देते थे। किसी न किसी कारण भाइयों का यह परिश्रम निष्फल हो जाता था। अब कुछ आशा थी, तो दूजी से। भाइयों ने यह निश्चय कर लिया था कि इसका विवाह वहीं पर किया जाए जहाँ से एक बहू प्राप्त हो सके।

## 2

इसी बीच में गाँव का बूढ़ा कारिंदा परलोक सिधारा। उसकी जगह पर एक नवयुवक ललनसिंह नियुक्त हुआ जो अंगरेजी की शिक्षा पाया हुआ शौकीन, रंगीन और रसीला आदमी था। दो-चार

ही दिनों में उसने पनघटों, तालाबों और झरोखों की देखभाल भली-भाँति कर ली। अन्त में उसकी रसभरी दृष्टि दूजी पर पड़ी। उसकी सुकुमारता और रुपलावण्य पर मुग्ध हो गया। भाइयों से प्रेम और परस्पर मेल-जोल पैदा किया। कुछ विवाह-संबंधी बातचीत छेड़ दी। यहाँ तक कि हुक्का-पानी भी साथ-साथ होने लगा। सायं-प्रातः इनके घर पर आया करता। भाइयों ने भी उसके आदर-सम्मान की सामग्रियाँ जमा कीं। पानदान मोल लाए, कालीन खरीदी। वह दरवाजे पर आता तो दूजी तुरंत पान के बीड़े बनाकर भेजती। बड़े भाई कालीन बिछा देते और छोटे भाई तश्तरी में मिठाइयाँ रख लाते। एक दिन श्रीमान ने कहा — भैया शानसिंह, ईश्वर की कृपा हुई तो अब की लग्न में भाभीजी आ जाएँगी। मैंने सब बातें ठीक कर ली हैं।

शानसिंह की बाछें खिल गई। अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा — मैं अब इस अवस्था में क्या करूँगा। हाँ, गुमानसिंह की बातचीत कहीं ठीक हो जाती, तो पाप कट जाता।

गुमानसिंह ने ताड़ का पंखा उठा लिया और झेलते हुए बोले — वाह भैया! कैसी बात कहते हो?

ललनसिंह ने अकड़कर शानसिंह को देखते हुए कहा — भाई साहब, क्या कहते हो, अबकी लग्न में दोनों भाभियाँ छमाछम

करती हुई घर में आवें तो बात! मैं ऐसा कच्चा मामला नहीं रखता। तुम तो अभी से बुड्ढ़ों की भाँति बातें करने लगे। तुम्हारी अवस्था यद्यपि पचास से भी अधिक हो गई; पर देखने में चालीस वर्ष से भी कम मालूम होती है। अब दोनों विवाह होंगे, बीच खेत होंगे। यह तो बताओ, वस्त्राभूषण का समुचित प्रबंध है न?

शानसिंह ने उसके जूतों को सीधा करते हुए कहा — भाई साहब! आप की यदि ऐसी कृपा-दृष्टि है, तो सब कुछ हो जाएगा। आखिर इतने दिन कमा-कमा कर क्या किया है।

गुमानसिंह घर में गए, हुक्का ताजा किया, तम्बाकू में दो-तीन बूँद इत्र के डाले, चिलम भरी, दूजी से कहा — कि शरबत घोल दें और हुक्का लाकर ललनसिंह के सामने रख दिया।

ललनसिंह ने दो-चार दम लगाए और बोले — नाई दो-चार दिन में आनेवाला है। ऐसा घर चुना है कि चित्त प्रसन्न हो जाए, एक विधवा है। दो कन्याएँ है एक से एक सुंदर। विधवा दो-एक वर्ष में संसार को त्याग देगी और तुम एक संपूर्ण गाँव में दो आने के हिस्सेदार बन जाओगे। गाँव वाले जो अभी हँसी करते है, पीछे जल-जल मरेंगे। हाँ, भय इतना ही है कि कोई बुढ़िया के कान न भर दे कि सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाए।

शानसिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। गुमानसिंह की मुखकांति मलिन हो गई। कुछ देर बार शानसिंह बोले — अब तो आपकी ही आशा है, आपकी जैसी राय हो, किया जाए।

जब कोई पुरुष हमारे साथ अकारण मित्रता का व्यवहार करने लगे तो हमको सोचना चाहिए कि इसमें उसका कोई स्वार्थ तो नहीं छिपा है। यदि हम अपने सीधेपन से इस भ्रम में पड़ जाए कि कोई मनुष्य हमको केवल अनुगृहित करने लिए हमारी सहायता करने पर तत्पर है तो हमें धोखा खाना पड़ेगा। किंतु अपने स्वार्थ की धुन में ये मोटी-मोटी बातें भी हमारी निगाहों से छिप जाती है और हमें छल अपने रँगे हुए भेष में आकर हमको सर्वदा के लिए परस्पर व्यवहार का उपदेश देता है। शानसिंह और गुमानसिंह ने विचार से कुछ काम न लिया और ललनसिंह के फंदे नित्यप्रति गाढ़े होते गए। मित्रता ने यहाँ तक पाँव पसारे कि भाइयों की अनुपस्थिति में भी वह बेधड़क घर में घुस जाते और आँगन में खड़े होकर बहन से पान-हुक्का माँगते। दूजी उन्हें देखते ही अति प्रसन्नता से पान बनाती। फिर आँखें मिलतीं, एक प्रेमाकांक्षा से बेचैन, दूसरी लज्जावश सकुची हुई। फिर मुस्कराहट की झलक होठों पर आती। चितवनों की शीतलता कलियों को खिला देती। हृदय नेत्रों द्वारा बातें कर लेते।

इस प्रकार प्रेमलिप्सा बढ़ती गई। उस नेत्रालिंगन में, जो मनोभावों का बाह्यरूप था, उद्विग्नता और विकलता की दशा उत्पन्न हुई। वह दूजी, जिसे कभी मनिहारे और बिसाती की रुचिकर ध्वनि भी चौखट से बाहर न निकाल सकती थी, अब एक प्रेम-विह्वलता की दशा में प्रतीक्षा की मूर्ति बनी हुई घंटों दरवाजों पर खड़ी रहती। उन दोहे और गीतों में, जिन्हें वह कभी विनोदार्थ गाया करती थी, अब उसे विशेष अनुराग और विरह-वेदना का अनुभव होता? तात्पर्य यह कि प्रेम का रंग गाढ़ा हो गया।

शनैः-शनैः गाँव में चर्चा होने लगी। घास और कास स्वयं उगते हैं। उखाड़ने से भी नहीं जाते। अच्छे पौधे बड़ी देख-रेख से उगते है। इसी प्रकार बुरे समाचार स्वयं फैलते है, छिपाने से भी नहीं छिपते। पनघटों और तालाबों के किनारे इस विषय पर कानाफूसी होने लगी। गाँव की बनियाइन, जो अपनी तराज़ू पर हृदयों को तोलती थी और ग्वालिन जो जल में प्रेम का रंग देकर दूध का दाम लेती थी और तंबोलिन जो पान के बीड़ों से दिलों पर रंग जमाती थी, बैठकर दूजी की लोलुपता और निर्लज्जता का राग अलापने लगी। बेचारी दूजी को घर से निकलना दुर्लभ हो गया। सखी-सहेलियाँ एवं बड़ी-बूढ़ियाँ सभी उनको ताने मारतीं। सखी-सहेलियाँ हँसी से छेड़ती और वृद्धा स्त्रियाँ हृदय-विदारक व्यंग्यों से।

मर्दों तक बातें फैली। ठाकुरों का गाँव था। उनकी क्रोधाग्नि भड़की। आपस में सम्मति हुई कि ललनसिंह को इस दुष्टता का दंड देना उचित है। दोनों भाइयों को बुलाया और बोले — भैया, क्या अपनी मर्यादा का नाश करके विवाह करोगे?

दोनों भाई चौंक पड़े। उन्हें विवाह की उमंग में यह सुधि ही नहीं थी कि घर में क्या हो रहा हैं। शानसिंह ने कहा — तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई। साफ-साफ क्यों नहीं कहते।

एक ठाकुर ने जवाब दिया — साफ-साफ क्या कहलाते हो। इस शोहदे ललनसिंह का अपने यहाँ आना-जाना बन्द कर दो, तुम तो अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे ही हो, पर उसकी जान की कुशल नहीं। हमने अभी तक इसीलिए तरह दिया है कदाचित तुम्हारी आँखें खुलें, किंतु ज्ञात होता है कि तुम्हारे ऊपर उसने मुर्दे का भस्म डाल दिया है। ब्याह क्या अपनी आबरू बेच कर करोगे? तुम लोग खेत में रहते हो और हम लोग अपनी आँखों से देखते है कि वह शोहदा अपना बनाव-सँवार किए आता है और तुम्हारे घर में घंटों घुसा रहता है। तुम उसे अपना भाई समझते हो तो समझा करो, हम तो ऐसे भाई को गला काट लें जो विश्वासघात करे।

भाइयों के नेत्रपट खुले। दूजी के ज्वर के संबंध में जो ज्वर का संदेह था, वह प्रेम का ज्वर निकला। रुधिर में उबाल आया। नेत्रों से चिनगारियाँ उड़ी। तेवर बदले। दोनों भाइयों ने एक दूसरे की ओर क्रोधमय दृष्टि से देखा। मनोगत भाव जिह्वा तक न आ सके। अपने घर आए; किंतु दर पर पाँव रखा ही था कि ललनसिंह से मुठभेड़ हो गई।

ललनसिंह ने हँसकर कहा — वाह भैया! वाह! हम तुम्हारी खोज में बार-बार आते है, किंतु तुम्हारे दर्शन तक नहीं मिलते। मैंने समझा, आखिर रात्रि में तो कुछ काम न होगा। किंतु देखता हूँ, आपको इस समय भी छुट्टी नहीं है।

शानसिंह ने हृदय के भीतर क्रोधाग्नि को दबाकर कहा — हाँ, इस समय वास्तव में छुट्टी नहीं है।

ललनसिंह — आखिर क्या काम है? मैं भी सुनूँ।

शानसिंह — बहुत बड़ा काम है, आपसे छिपा न रहेगा।

ललनसिंह — कुछ वस्त्राभूषण का भी प्रबंध कर रहे हो? अब लग्न सिर पर आ गया है।

शानसिंह — अब बड़ा लग्न सिर पर आ पहुँचा है, पहले इसका प्रबंध करना।

ललनसिंह — क्या किसी से ठन गई।

शानसिंह — भली-भाँति।

ललनसिंह — किससे?

शानसिंह — इस समय जाइये, प्रातःकाल बतलाऊँगा।

## 3

दूजी भी ललनसिंह के साथ दरवाजे की चौखट तक आई थी। भाइयों की आहट पाते ही ठिठक गई और यह बातें सुनी। उसका माथा ठनका कि आज यह क्या मामला है। ललनसिंह का कुछ आदर-सत्कार नहीं हुआ। न हुक्का,न पान। क्या भाइयों को कानों में कुछ भनक तो नहीं पड़ी। किसी ने कुछ लगा तो नहीं दिया। यदि ऐसा हुआ तो कुशल नहीं।

इसी उधेड़बुन में पड़ी थी कि भाइयों ने भोजन परोसने की आज्ञा दी। जब वह भोजन करने बैठे तो दूजी ने अपनी निर्दोषिता और पवित्रता प्रकट करने के लिए एवं अपने भाइयों के दिल का भेद लेने के लिए कुछ कहना चाहा। त्रिया-चरित्र में अभी निपुण न थी। बोली — भैया, ललनसिंह से कह दो, घर में न आया करें।

आप घर में रहिए तो कोई बात नहीं, किंतु कभी-कभी आप नहीं रहते तो मुझे अत्यंत लज्जा आता है। आज ही वह आपको पूछते हुए चले आए, अब मैं उनसे क्या कहूँ। आपको नहीं देखा ते लौट गए!

शानसिंह ने बहिन की तरफ ताने-भरे नेत्रों से देखकर कहा — अब वह घर में न आएँगे।

गुमानसिंह बोले — हम इसी समय जाकर उन्हें समझा देंगे।

भाइयों ने भोजन कर लिया। दूजी को पुनः कुछ कहने का साहस न हुआ। उसे उनके तेवर आज कुछ बदले हुए मालूम होते थे। भोजनोपरांत दोनों भाई दीपक लेकर भंडारे की कोठरी में गए। अनावश्यक बर्तन, पुराने सामान, पुरुषाओं के समय के अस्त्र-शस्त्र आदि इसी कोठरी में रखे थे। गाँव में जब कोई बकरा देवी जी को भेंट दिया जाता तो यह कोठरी खुलती? आज तो कोई ऐसी बात नही हैं। इतनी रात गए यह कोठरी क्यों खोली जाती है? दूजी को किसी भावी दुर्घटना का संदेह हुआ। वह दबे पाँव दरवाजे पर गई तो देखती क्या है कि गुमानसिंह एक भुजाली लिये पत्थर पर रगड़ रहा है। उसका कलेजा धक-धक करने लगा और पाँव थर्राने लगे। वह उल्टे पाँव लौटना चाहती थी कि शानसिंह की आवाज सुनाई दी — इसी समय एक घड़ी में चलना

ठीक है। पहली नींद बड़ी गहरी होती है। बेधड़क सोता होगा। गुमानसिंह बोले — अच्छी बात है, देखो, भुजाली की धार? एक हाथ में काम तमाम हो जाएगा।

दूजी को ऐसा ज्ञात हुआ मानों किसी ने पहाड़ पर से ढकेल दिया। सारी बातें उसकी समझ में आ गई। वह भय की दशा में घर से निकली और ललनसिंह के चौपाल की ओर चली। किंतु वह अंधेरी रात प्रेम की घाटी थी और वह रास्ता प्रेम का कठिन मार्ग। वह इस सुनसान अँधेरी रात में चौकन्ने नेत्रों से इधर-उधर देखती, विह्वलता की दशा में शीघ्रता से चली जाती थी। किंतु हाय निराशा! एक-एक पल उसे प्रेम-भवन से दूर लिये जाता था। उस अंधेरी भयानक रात्रि में भटकती, न जाने कहाँ चली जाती थी, किससे पूछे। लज्जावश किसी से कुछ न पूछ सकती थी। कहीं चूड़ियों का झनझनाना भेद न खोल दे। क्या इस अभागे आभूषणों को आज ही झनझनाहट है? अन्त में एक वृक्ष के तले वह बैठ गई। सब चूड़ियाँ चूर-चूर कर दी, आभूषण उतार कर आँचल में बाँध लिए। किंतु हाय! यह चूड़ियाँ सुहाग की चूड़ियाँ थी और यह गहने सुहाग के गहने थे जो एक बार उतारकर फिर न पहने गए।

उसी वृक्ष के नीचे पयस्विनी नदी पत्थर के टुकड़ों से टकराती हुई बहती थी। यहाँ नौकाओं का निर्वाह दुस्तर था। दूजी बैठी

हुई सोचती, क्या मेरे जीवन की नदी में प्रेम की नौका दुःख की शिलाओं से टक्कर खाकर डूब जाएगी!

## 4

प्रातःकाल ग्रामवासियों ने आश्चर्यपूर्वक सुना कि ठाकुर ललनसिंह की किसी ने हत्या कर डाली। सारे गाँव के स्त्री-पुरुष, वृद्धा-युवा सहस्रों की संख्या में चौपाल के सामने जमा हो गए। स्त्रियाँ पनघटों को जाती हुई रुक गई। किसान हल-बैल लिये ज्यों के त्यों खड़े रह गए। किसी की समझ में न आता था कि यह हत्या किसने की। कैसा मिलनसार, हँसमुख सज्जन मनुष्य था। उनका कौन ऐसा शत्रु था। बेचारे ने किसी पर इजाफा लगान या बेदखली नालिश तक नहीं की। किसी को दो बातें तक नहीं कही। दोनों भाइयों के नेत्रों से आँसू की धारा बहती थी। उनका घर उजड़ गया। सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया।
गुमानसिंह ने रोकर कहा — हम तीन भाई थे, अब दो ही रह गए। हमसे तो दाँत-काटी रोटी थी। साथ उठना, हँसी-दिल्लगी, भोजन-छाजन एक हो गया था। हत्यारे से इतना भी नहीं देखा गया। हाय! अब हमको कौन सहारा देगा?

शानसिंह ने आँसू पोंछते हुए कहा — हम दोनों भाई कपास निराने जा रहे थे। ललनसिंह से कई दिन से भेंट नहीं हुई थी। सोचे कि इधर से होते चलें, किंतु पिछवाड़े आते ही सेंध दिखाई पड़ी। हाथों के तोते उड़ गए। दरवाजों पर जाकर देखा तो चौकीदार-सिपाही सब सो रहे हैं। उन्हें जगाकर ललनसिंह के किवाड़ खटखटाने लगे। परन्तु बहुत बल करने पर भी किवाड़ अंदर से न खुले तो सेंध के रास्ते से झाँका। आह? कलेजे में तीर लग गया! संसार अंधेरा दिखाई दिया। प्यारे ललनसिंह का सिर धड़ से अलग था। रक्त की नदी बह रही थी। शोक! भैया सदा के लिए बिछुड़ गए।

मध्याह्न काल तक इसी प्रकार विलाप होता रहा। दरवाजे पर मेला लगा हुआ था। दूर-दूर से लोग इस दुर्घटना का समाचार पाकर इकट्ठे होते जाते थे। संध्या होते-होते हल्के के दरोगा साहब भी चौकीदार और सिपाहियों का एक झुंड लिये आ पहुँचे। कढ़ाही चढ़ गई। पूरियाँ छनने लगी। दारोगा जी ने जाँच करनी शुरू की। घटनास्थल देखा। चौकीदारों का बयान हुआ। दोनो भाइयों के बयान लिखे। आस-पास के पासी और चमार पकड़े गए और उन पर मार पड़ने लगी। ललनसिंह का लाश लेकर थाने गए। हत्यारे का पता न चला। दूसरे दिन इन्सपेक्टर-पुलिस का आगमन हुआ। उन्होंने भी गाँव का चक्कर लगया, चमारों और

पासियों की मरम्मत हुई। हलुआ-मोहन, गोश्त-पूड़ी के स्वाद लेकर सायंकाल को उन्होंने भी अपनी राह ली। कुछ पासियों पर जो कि कई बार डाके-चोरी में पकड़े जा चुके थे, संदेह हुआ। उनका चालान हुआ। मजिस्ट्रेट ने गवाही पुष्ट पाकर अपराधियों को सेशन सुपुर्द किया और मुकदमे की पेशी होने लगी।

मध्याह्न का समय था। आकाश पर मेघ छाए हुए थे। कुछ बूँदें भी पड़ रही थीं। सेशन जज कुँवर विनयकृष्ण बघेल के इजलास में मुकदमा पेश था। कुँवर साहब बड़े सोच-विचार में थे कि क्या करूँ। अभियुक्तों के विरुद्ध साक्षी निर्बल थे। किंतु सरकारी वकील, जो एक प्रसिद्ध नीतिज्ञ थे, नजीरों पर नजीर पेश करते जाते थे कि अचानक दूजी श्वेत साड़ी पहने, घूँघट निकाले हुए निर्भय न्यायालय में आ पहुँची और हाथ जोड़कर बोली — श्रीमान! मैं शानसिंह और गुमानसिंह की बहन हूँ। इस मामले में जो कुछ जानती हूँ वह मुझसे भी सुन लिया जाए, इसके बाद सरकार जो फैसला चाहें करें।

कुँवर साहब ने आश्चर्य से दूजी की तरफ दृष्टि फेरी। शानसिंह और गुमानसिंह के शरीर में काटो तो रक्त नहीं। वकीलों ने आश्चर्य की दृष्टि से उसकी ओर देखना शुरू किया। दूजी के चेहरे पर दृढ़ता झलक रही थी। भय का लेशमात्र न था। नदी आँधी के पश्चात स्थिर दशा में थी। उसने उसी प्रवाह में कहना

प्रारंभ किया — ठाकुर ललनसिंह की हत्या करने वाले मेरे दोनों भाई हैं।

कुँवर साहब के नेत्रों के सामने से पर्दा हट गया। सारी कचहरी दंग हो गई और सब टकटकी बाँधे दूजी की तरफ देखने लगे।

दूजी बोली — यह वह भुजाली है, जो ललनसिंह की गर्दन पर फेरी गई है। अभी इसका खून ताजा है। मैंने अपनी आँखों से भाइयों को इसे पत्थर पर रगड़ते देखा; उनकी बातें सुनी। मैं उसी समय घर से बाहर निकली कि ललनसिंह को सावधान कर दूँ; किंतु मेरा भाग्य खोटा था; चौपाल का पता न लगा। मेरे दोनों भाई सामने खड़े है। वह मर्द हैं, मेरे सामने असत्य कदापि न कहेंगे। इनसे पूछ लिया जाए। और सच पूछिए तो यह छुरी मैंने चलाई है। मेरे भाइयों का अपराध नहीं है। यह सब मेरे भाग्य का खेल है। यह सब मेरे कारण हुआ और न्याय की तलवार मेरी ही गर्दन पर पड़नी चाहिए। मैं ही अपराधिनी हूँ और हाथ जोड़कर कहती हूँ कि इस भुजाली से मेरी गर्दन काट ली जाए।

न्यायालय में एक स्त्री का आना बाजार में भानमती का आना है। अब तक अभियोग नीरस और अरुचिकर था। दूजी के आगमन ने उसमें प्राण डाल दिए। न्यायालय में एक भीड़ लग गई। मुवक्किल और वकील, अमले और दुकानदार, असावधानी की दशा में इधर-उधर दौड़ते चले जाते थे। प्रत्येक पुरुष उसको देखने का इच्छुक था। सहस्रों नेत्र उसके मुखड़े की तरफ देखते थे और वह जन-समूह में शांति की मूर्ति बनी हुई निश्चल खड़ी थी।

इस घटना की प्रत्येक पुरुष अपनी-अपनी समझ के अनुसार आलोचना करता था। वृद्धजन कहते थे — बेहया है, ऐसी लड़की का सिर काट लेना चाहिए। भाइयों ने वही किया, जो मर्दों का काम था। इस निर्लज्ज को तो देखो कि अपना परदा ढाँकने के बदले उसका डंका बजा रही है और भाइयों को भी डूबोए देती है। आँखों का पानी गिर गया है। ऐसी न होती तो यह दिन ही क्यों आता?

मगर नवयुवकों, स्वतंत्रता पर जान न्योछावर कर देनेवाले वकीलों और अमलों में उसके साहस और निर्भयता की प्रशंसा हो रही थी। उसकी समझ में जब यहाँ तक नौबत आ गई थी, तो भाइयों का धर्म था कि दोनों का ब्याह कर देते।

कई वृद्ध वकीलों की अपने नवयुवक मित्रों के कुछ छेड़छाड़ हो गई। एक फैशनेबुल बैरिस्टर साहब ने हँसकर कहा — मित्र, और तो जो कुछ है सो है, यह स्त्री सहस्रों में एक है, रानी मालूम होती है। सर्वसाधारण ने इनका समर्थन किया। कुँवर विनयकृष्ण इस समय कचहरी से उठे थे। बैरिस्टर साहब की बात सुनी और घृणा से मुँह फेर लिया। वह सोच रहे थे कि जिस स्त्री के क्रोध में इतनी ज्वाला है, क्या उसका प्रेम भी इसी प्रकार ज्वालापूर्ण होगा।

## 6

दूसरे दिन फिर दस बजे मुकदमा पेश हुआ। कमरे में तिल रखने की भी जगह न थी। दूजी कठघरे के पास सिर झुकाए खड़ी थी। दोनों भाई कई कांस्टेबल के बीच में चुपचाप खड़े थे। कुँवर विनयकृष्ण ने उन्हें संबोधित करके उच्च स्वर से कहा — ठाकुर शानसिंह, गुमानसिंह! तुम्हारी बहिन ने तुम्हारे संबंध में अदालत में जो कुछ बयान किया है, उसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है?

शानसिंह ने गर्वपूर्ण भाव से उत्तर दिया — बहिन ने जो कुछ बयान किया है वह सब सत्य है। हमने अपना अपराध इसलिए छुपाया था कि हम बदनामी, बेइज्जती से डरते थे। किंतु अब जब हमारी बदनामी जो कुछ होनी थी, हो चुकी तो हमको अपनी सफाई देने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे जीवन से अब मृत्यु ही उत्तम है। ललनसिंह से हमारी हार्दिक मित्रता थी। आपस में कोई विभेद न था। हम उसे अपना भाई समझते थे, किंतु उसने हमको धोखा दिया। उसने हमारे कुल में कलंक लगा दिया और हमने उसका बदला लिया। उसने चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा हमारी इज्जत लेनी चाही। किंतु हम अपने कुल की मर्यादा इतनी सस्ती नहीं बेच सकते थे। स्त्रियाँ ही कुल-मर्यादा की संपत्ति होती हैं। मर्द उसके रक्षक होते है। जब इस संपत्ति पर कपट का हाथ उठे तो मर्दों का धर्म है कि रक्षा करें। इस पूँजी को अदालत का कानून, परमात्मा का भय या सद्विचार नहीं बता सकता। हमको इसके लिए न्यायालय से जो दंड प्राप्त हो, वह शिरोधार्य है।

जज ने शानसिंह की बात सुनी। कचहरी में सन्नाटा छा गया और सन्नाटे की दशा में उन्होंने अपना फैसला सुनाया। दोनों भाइयों को हत्या के अपराध में 14 वर्ष काले पानी का दंड मिला।

# 7

सायंकाल हो गया था। दोनों भाई कांस्टेबलों के बीच में कचहरी से बाहर निकले। हाथों में हथकड़ियाँ थीं, पाँवों में बेड़ियाँ। हृदय अपमान से संकुचित और सिर लज्जा के बोझ से झुके हुए थे। मालूम होता था मानों सारी पृथ्वी हम पर हँस रही है।

दूजी पृथ्वी पर बैठी हुई थी कि उसने कैदियों के आने की आहट सुनी और उठ खड़ी हुई। भाइयों ने भी उसकी तरफ देखा। परन्तु हाय! उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि यह भी हमारे ऊपर हँस रही है। घृणा से नेत्र फेर लिये। दूजी ने भी उन्हें देखा; किंतु क्रोध और घृणा से नहीं; केवल एक उदासीन भाव से। जिन भाइयों की गोद में खेली और जिनके कंधों पर चढ़कर बाल्यावस्था व्यतीत की; जिन भाइयों पर प्राण न्योछावर करती थी, आज वही दोनों भाई कालेपानी को जा रहे हैं जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता और उसके रक्त में तनिक भी गति नहीं होती! रुधिर भी द्वेष से जल की भाँति जम जाता है। सूर्य की किरणें वृक्षों की डालियों से मिली, फिर जड़ो को चूमती हुई चल दीं। उनके लिए अंधकार गोद फैलाए हुए था। क्या इस अभागिनी स्त्री के लिए भी संसार में कोई ऐसा आश्रय नहीं थी।

आकाश की लालिमा नीलावरण हो गई। तारों के कँवल खिले। वायु के लिए पुष्प-शय्या बिछ गई। ओस के लिए हरी मखमल का फर्श बिछ गया, किंतु अभागिनी दूजी उसी वृक्ष के नीचे शिथिल बैठी थी। उसके लिए संसार में कोई स्थान न था। अब तक जिस वह अपना घर समझती थी, उसके दरवाजे उसके लिए बन्द थे। वहाँ क्या मुँह लेकर जाती? नदी को अपने उद्गम से चलकर अथाह समुद्र के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं ठिकाना नहीं है।

दूजी उसी तरह निराशा के समुद्र में निमग्न हो रही थी, कि एक वृद्ध स्त्री ने उसके सामने आकर खड़ी हो गई। दूजी चौंककर उठ बैठी। वृद्ध स्त्री ने उसकी ओर आश्चर्यान्वित होकर कहा — इतनी रात बीत गई, अभी तक तुम यहीं बैठी हो?

दूजी ने चमकते हुए तारों की ओर देखकर कहा — कहाँ जाऊँ? इन शब्दों में कैसा हृदय-विदारक आशय छिपा हुआ था! कहाँ जाए? संसार में उसके लिए अपमान की गली के सिवा और कोई स्थान नहीं था।

बुढ़िया ने प्रेममय स्वर में कहा — बेटी, भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा, किन्तु तुम कब तक यहाँ बैठी रहोगी? मैं दीन ब्राह्मणी हूँ। चलो मेरे घर रहो; जो कुछ भिक्षा-भवन माँगे मिलेगा, उसी में हम दोनों निर्वाह कर लेंगी। न जाने पूर्वजन्म में

हमसे-तुमसे क्या संबंध था। जब से तुम्हारी दशा सुनी है, बेचैन हूँ। सारे संसार में आज घर-घर तुम्हारी चर्चा हो रही है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बस अब उठो, यहाँ सन्नाटे में पड़े रहना अच्छा नहीं। समय बुरा है। मेरा घर यहाँ से थोड़ी ही दूर पर है। नारायण का दिया बहुत कुछ है। मैं भी अकेली से दुकेली हो जाऊँगी। भगवान किसी न किसी प्रकार दिन काट ही देंगे।

एक घने, सुनसान, भयानक वन में भटका हुआ मनुष्य जिधर पगडंडियों का चिह्न पाता है, उसी मार्ग को पकड़ लेता है। वह सोच-विचार नहीं करता कि मार्ग मुझे कहाँ ले जाएगा। दूजी इस बुढ़िया के साथ चली। इतनी ही प्रसन्नता से वह कुएँ में भी कूद पड़ती। वायु में उड़नेवाली चिड़िया दाने पर गिरी। क्या इन दानों के नीचे जाल बिछा हुआ था?

## 8

दूजी को बूढ़ी कैलासी के साथ रहते हुए एक मास बीत गया। कैलासी देखने में दीन, किंतु मन की धनी थी। उसके पास संतोष रूपी धन था जो किसी से सामने हाथ नहीं फैलाता। रीवाँ के

महाराजा के यहाँ से कुछ सहायता मिलती थी। यही उसके जीवन का अवलंब था। वह सर्वदा दूजी को ढाढ़स देती रहती थी। ज्ञात होता था कि यह दोनों माँ-बेटी हैं।

कैलासी कुछ हिंदी जानती थी। दूजी को रामायण और सीता-चरित्र सुनाती। दूजी इन कथाओं को बड़े प्रेम से सुनती। उज्जवल वस्त्र पर रंग भली-भाँति चढ़ता है। जिस दिन उसने सीता-वनवास की कथा सुनी, वह सारे दिन रोती रही। सोई तो सीता की मूर्ति उसके सामने खड़ी थी। उसके शरीर पर उज्जवल साड़ी थी, आँखों और आँसू की ओट में प्यार छिपा हुआ था। दूजी ने हाथ फैलाए हुए लड़कों की भाँति उनकी तरफ दौड़ी। माता, मुझको भी साथ लेती चलो। मैं वन में तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम्हारे लिए पुष्प-शय्या बिछाऊँगी, तुमको कमल के थालों में फलों का भोजन कराऊँगी। तुम वहाँ अकेली एक बुड्ढे साधु के साथ कैसे रहोगी? मैं तुम्हारे चित्त को प्रसन्न रखूँगी। जिस समय हम और तुम वन में किसी सागर के किनारे घने वृक्षों की छाया में बैठेंगी उस समय मैं वायु की धीमी-धीमी लहरों के साथ गाऊँगी।

सीता ने उसको तिरस्कार से देखकर कहा — तू कलंकिनी है, मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। तपस्या की आँच में अपने को पवित्र कर।

दूजी की आँखें खुल गई। उसने निश्चय किया, मैं इस कलंक को मिटाऊँगी।

आकाश के नीचे समुद्र में तारागण पानी के बुलबुलों की भाँति मिटते जाते थे। दूजी ने उन झिलमिलते हुए तारों को देखा। मैं भी उन्हीं तारों की तरह सबके नेत्रों में छिप जाऊँगी। उन्हीं बुलबुलों की भाँति मिट जाऊँगी।

विलासियों का रात हुई। संयोगी जागे। चक्कियों ने अपने सुहावने राग छेड़े। कैलासी स्नान करने चली। तब दूजी उठी और जंगल की ओर चल दी। चिड़िया पंख-हीन होने पर भी सुनहरे पिंजड़े में न रह सकी।

## 9

प्रकाश की धुँधली-सी झलक में कितनी आशा, कितना बल, कितना आश्वासन है, यह उस मनुष्य से पूछो जिसे अँधेरे ने एक घने वन में घेर लिया है। प्रकाश की वह प्रभा उसके लड़खड़ाते हुए पैरों को शीघ्रगामी बना देती है; उसके शिथिल शरीर में जान डाल देती है। जहाँ एक-एक पग रखना दुस्तर था, वहाँ इस जीवन-प्रकाश

को देखते हुए यह मीलों और कोसों तक प्रेम की उमंगों से उछलता हुआ चला जाता है।

परन्तु दूजी के लिए आशा की यह प्रभा कहाँ थी? वह भूखी-प्यासी, उन्माद की दशा में चली जाती थी।

शहर पीछे छूटा। बाग और खेत आए। खेतों में हरियाली थी, वाटिकाओं में वसंत की छटा। मैदान और पर्वत मिले। मैदानों से बाँसुरी की सुरीली तानें आती थी। पर्वतों के शिखर मोरों की झनकार से गूँज रहे थे।

दिन चढ़ने लगा। सूर्य उसकी ओर आता हुआ दिखाई दिया। कुछ काल तक उसके साथ रहा। कदाचित रूठे को मनाता था। पुनः अपनी राह चला गया। वसंत ऋतु की शीतल, मंद, सुगंधित वायु चलने लगी; खेतों ने कुहरे की चादरें ओढ़ ली। रात हो गई और दूजी एक पर्वत के किनारे से उलझती, चट्टानों से टकराती चली जाती थी, मानों किसी झील की मंद-मंद लहरों में किनारे पर उगे हुए झाऊ के पौधों का साया थरथरा रहा हो। इस प्रकार ज्ञात की खोज में अकेली निर्भय वह गिरती-पड़ती चली जाती थी। यहाँ तक कि भूख-प्यास और अधिक श्रम के कारण उसकी शक्तियों ने जवाब दे दिया। वह एक शिला पर बैठ गई और भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखने लगी। दाहिने-बायें घोर

अंधकार था। उच्च पर्वतशिखाओं पर तारे जगमगा रहे थे। सामने एक टीला मार्ग रोके खड़ा था और समीप ही किसी जलधारा से दबी हुई सायँ-सायँ की आवाज सुनाई देती थी।

## 10

दूजी थककर चूर हो गई थी; पर उसे नींद न आई। सर्दी से कलेजा काँप रहा था। वायु के निर्दय झोंके लेशमात्र भी चैन न लेने देते थे। कभी-कभी एक क्षण के लिए आँखें झपक जाती और फिर चौंक पड़ती। रात्रि ज्यों-त्यों व्यतीत हुई। सबेरा हुआ। चट्टान से कुछ दूर एक घना पाकर का वृक्ष था, जिसकी जड़ें सूखे पत्थरों से चिमट कर यों रस खींचती थी जैसे कोई महाजन दीन असामियों को बाँधकर उनसे ब्याज के रुपए वसूल करता है। इस वृक्ष के सामने कई छोटी-छोटी चट्टानों ने मिलकर एक कोठरी की आकृति बना रखी थी। दाहिनी ओर लगभग दो सौ गज की दूरी पर नीचे की ओर पयस्विनी नदी चट्टानों और पाषाण-शिलाओं से उलझती, घूमती-घामती बह रही थी, जैसे कोई दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य बाधाओं का ध्यान न कर अपने इष्ट-साधन के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। नदी के किनारे साधु-प्रकृति वकुले

चुपचाप मौनव्रत धारण किए हुए बैठे थे। संतोषी जल-पक्षी पानी में तैर रहे थे। लोभी टिटिहरियाँ नदी पर मँडराती थीं और रह-रहकर मछलियों की खोज में टूट पड़ती थी। खिलाड़ी मैने निःशंक अपने पैरों को खुजला-खुजला स्नान कर रहे थे। और चतुर कौवे झुंड-के-झुंड भोजन-संबंधी प्रश्न को हल कर रहे थे। एक वृक्ष के नीचे मोरों की सभा सुसज्जित थी और वृक्षों की शाखाओं पर कबूतर आनन्द कर रहे थे। एक दूसरे वृक्ष पर महाशय काग एवं श्रीमान पं. नीलकंठ जी घोर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त थे। महाशय काग ने छेड़ने के लिए पंडित जी के निवास स्थान की ओर दृष्टि डाली थी। इस पर पंडित जी इतने क्रोधित हुए कि महाशय काग के पीछे पड़ गए। महाशय काग अपनी स्वाभाविक बुद्धिमत्ता को काम में लाकर सहज ही में भाग खड़े हुए। श्रीमान पंडित जी बुरा-भला कहते हुए काग के पीछे पड़े। किसी भाँति महाशय जी की सर्वज्ञता ने उनकी जान बचाई।

थोड़ी देर में जंगली नील गायों का एक झुंड आया। किसी ने पानी पिया, किसी ने सूँघकर छोड़ दिया। दो-चार युवावस्था के मतवाले हिरन आपस में सींग मिलाने लगे। फिर एक काला हिरन अभिमान-भरे नेत्रों से देखता ऐंड-ऐंड़ कर पग उठाता कुछ मृगनयनियों को साथ लिये नदी के किनारे आया। बच्चे थोड़ी दूर पर खेलते हुए चले आते थे। कुछ और हट कर एक वृक्ष के

नीचे बन्दरों ने अपने डेरे डाल रखे थे। बच्चे क्रीड़ा करते थे। पुरुषों से छेड़छाड़ हो रही थी। रमणियाँ सानंद बैठी हुई एक-दूसरी के बालों से जूएँ निकालती थीं और उन्हें अपने मुँह में रखती जाती थी। दूजी एक चट्टान पर अर्द्धनिद्रा की दशा में बैठी हुई यह दृश्य देख रही थी। घाम के कारण निद्रा आ गई। नेत्रपट बन्द हो गए।

## 11

प्रकृति की इस रंग भूमि में दूजी ने अपने चौदह वर्ष व्यतीत किए। वह प्रतिदिन प्रातःकाल इसी नदी के किनारे शिलाओं पर बैठी यही दृश्य देखती और लहरों की कारुणिक ध्वनि सुनती। उस नदी की भाँति उसके मन में लहरें उठती, जो कभी धैर्य और साहस के किनारों पर चढ़कर नेत्रों द्वारा बह निकलतीं। उसे मालूम होता कि वन के वृक्ष तथा जीव-जंतु सब मेरी ओर व्यंग्यपूर्ण नेत्रों से देख रहे हैं। नदी भी उसे देखकर क्रोध से मुँह में फेन भर लेती। जब यहाँ बैठे-बैठे उसका जी ऊब जाता तो वह पर्वत पर चढ़ जाती और दूर तक देखती। पर्वतों के बीच में कहीं-कहीं मिट्टी के घरौंदों की भाँति छोटे-छोटे मकान दिखाई देते,

कही लहलहराती हुई हरियाली। सारा दृश्य एक नवीन वाटिका की भाँति मनोरम था। उसके दिन में एक तीव्र इच्छा होती कि उड़कर उन चोटियों पर जा पहुँचू। नदी के किनारे या पाकर की घनी छाया में बैठी हुई घंटों सोचा करती। बचपन के दिन याद आ जाते जब वह सहेलियों के गले में बाँहें डालकर महुए चुनने जाया करती थी। फिर गुड़ियों के ब्याह का स्मरण हो जाता। पुनः अपनी प्यारी मातृभूमि की पनघट आँखों में फिर जाती। आज भी वहाँ भीड़ होगी, वही हास्य, चहल-पहल। पुनः अपना घर ध्यान में आता और वह गाय स्मरण आती जो कि उसको देखकर हुँकारती हुई अपने प्रेम का परिचय देती थी। मुन्नू स्मरण हो आता जो उसके पीछे-पीछे छलाँगें मारता हुआ खेतों में जाया करता, जो बर्तन धोते समय बार-बार बर्तनों में मुँह डालता। तब ललनसिंह नेत्रों के सामने आ खड़े हो जाते थे। होंठों पर वही मुस्कराहट, नेत्र में वही चंचलता। तब वह उठ खड़ी होती और अपना मन दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा करती।

दिन गुजरते थे, किंतु बहुत धीरे-धीरे। वसंत आया। सेलम की लालिमा एवं कचनार की ऊदी पुष्पमाला अपनी यौवन-छटा दिखलाने लगी। मकोय के फल महके। गरमी का प्रारंभ हुआ, प्रातःकाल समीर के झोंके, दोपहर की लू, जलती हुई लपट। डालियाँ फूलों से लदीं। फिर वह समय आया कि जब न दिन

को सुख था और न रात को नींद। दिन तड़पता था, रात जलती थी। नदियाँ बधिकों के हृदयों की भाँति सूख गई। वन के पशु मध्याह्न की धूप में प्यास के कारण जिह्वा निकाले पानी की खोज में इधर-उधर दौड़ते-फिरते थे। जिस प्रकार द्वेष से भरे हुए दिल तनिक-तनिक-सी बातों पर जल उठते है उसकी प्रकार गर्मी से जलते हुए वन-वृक्ष कभी-कभी वायु के झोंकों से परस्पर रगड़ खाकर जल उठते थे। ज्वाला ऊँची उठती थी, मानों अग्निदेव ने तारागणों पर धावा मारा है। वन में एक भगदड़-सी पड़ जाती। फिर आँधी और तूफान के दिन आए। वायु की देवी गरजती हुई आती। पृथ्वी और आकाश थर्रा उठते, सूर्य छिप जाता, पर्वत भी काँप उठते। पुनः वर्षा ऋतु का जन्म हुआ। वर्षा की झड़ी लगी। वह लहराए, नदियों ने पुनः-पुनः अपने सुरीले राग छेड़े। पर्वतों के कलेजे ठंडे हुए। मैदान में हरियाली छाई। सारस की ध्वनि पर्वतों में गूँजने लगी। आषाढ़ मास में बाल्यावस्था का अल्हड़पन था। श्रावण में युवावस्था के पग बढ़े, फुहारें पड़ने लगी। भादों कमाई के दिन थे, जिसमें झीलों के कोष भर दिए। पर्वतों को धनाढ्य कर दिया। अन्त में बुढ़ापा आया। कास के उज्जवल बाल लहराने लगे। जाड़ा आ गया।

# 12

इस प्रकार ऋतु परिवर्तन हुआ। दिन और महीने गुजरे। वर्ष आए और गए; किंतु दूजी ने विंध्याचल के उस किनारे को न छोड़ा। गर्मियों के भयानक दिन और वर्षा की भयावनी रातें सब उसी स्थान पर काट दी। क्या भोजन करती थी, क्या पहनती थी; इसकी चर्चा व्यर्थ है। मन पर चाहे जो बीते किंतु भूख और ऋतु संबंधी कष्ट का निवारण करना ही पड़ता है। प्रकृति की थाल सजी हुई थी। कभी बनवेरी और शरीफों के पकवान थे, कभी तेंदू, कभी मकोय और कभी राम का नाम। वस्त्रों के लिए चित्रकूट के मेले में साल में केवल एक बार जाती, मोरों के पर, हिरणों के सींग, वन औषधियाँ महँगे दामों में बिकती। कपड़ा भी आया, बर्तन भी आए। यहाँ तक कि दीपक जैसी विलास-वस्तु भी एकत्र हो गई। एक छोटी-सी गृहस्थी जम गई।

दूजी ने निराशा की दशा में संसार से विमुख होकर जीवन व्यतीत करना जितना सहज समझा था, उससे कहीं कठिन मालूम हुआ। आत्मानुराग में निमग्न वैरागी तो वन में रह सकता है, परन्तु एक स्त्री जिसकी अवस्था हँसने-खेलने में व्यतीत हुई हो, बिना किसी नौका के सहारे विराट सागर को किस प्रकार पार करने में समर्थ

हो सकती है? दो वर्ष के पश्चात दूजी को एक-एक दिन वहाँ वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। कालक्षेप करना दुस्तर हो गया। घर की सुधि एक क्षण भी विस्मृत न होती। कभी-कभी वह इतनी व्यग्र होती कि क्षणमात्र के लिए अपमान का भय न रहता। वह दृढ़ विचार करके उन पहाड़ियों के बीच शीघ्रता से पग बढ़ाती, घर की ओर चलती, मानों कोई अपराधी कारागार से भागा जा रहा है। किंतु पहाड़ियों की सीमा से बाहर आते ही उसके पग स्वयं रुक जाते। वह आगे न बढ़ सकती। तब एक ठंडी साँस भर कर एक शिला पर बैठ जाती और फूट-फूटकर रोती। फिर वही भयानक रात्रि और वही सघन कुंज, वही नहीं की भयावनी गरज और शृगालों की वही विकराल ध्वनि!

'ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय' भाग्य को धिक्कारते-धिक्कारते उसने ललनसिंह को धिक्कारना आरंभ किया। एकांतवास ने उसमें आलोचना और विवेचना की शक्ति पैदाकर दी। मैं क्यों इस वन में मुँह छिपाए दुःख के दिन व्यतीत कर रही हूँ? यह उसी निर्दयी ललनसिंह की लगाई आग है। कैसे सुख से रहती थी। इसी ने आकर मेरे झोंपड़े को आग लगा दी। मैं अबोध और अनजान थी। उसने जान-बूझकर मेरा जीवन भ्रष्ट कर डाला। मुझे अपने आमोद का केवल एक खिलौना बनाया था। यदि उसे मुझसे प्रेम होता तो क्या वह मुझसे विवाह न कर

लेता? वह भी तो चन्देल ठाकुर था। हाय! मैं कैसी अज्ञानी थी। अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी। इस प्रकार मन की बातें करते-करते ललनसिंह की मूर्ति उसके नेत्रों के सम्मुख आ जाती तो वह घृणा से मुँह फेर लेती। वह मुस्कराहट जो उसका मन हर लिया करती थी वह प्रेममय मृदुभाषण जो उसकी नसों में सनसनाहट पैदा कर देती थी, वह क्रीड़ामय हाव-भाव जिन पर मतवाली हो जाती थी, अब कपट-प्रेम और काम-तृष्णा के गाढ़े रंग में रँगे हुए दिखाई देते थे। वह प्रेम का कच्चा घरौंदा, जिसमें वह गुड़िया बन बैठी थी, वायु के झोंके में सँभाला; किंतु जल के प्रबल प्रवाह में न सँभल सका। अब वह अभागी गुड़ियों की भाँति निर्दयी चट्टानों पर पटक दी गई है कि रो-रोकर जीवन के दिन काटे। उन गुड़ियों की भाँति जो गोटे-पट्ठे और आभूषणों से सजी हुई, मखमली पिटारे में भोग-विलास करने के पश्चात नदी और तालाब में बहा दी जाती है, डूबने के लिए तरंगों में थपेड़े खाने के लिए।

ललनसिंह की तरफ से फिरते ही दूजी का मन एक अधीरता के साथ भाइयों की ओर मुड़ा। मैं अपने साथ उन बेचारों को व्यर्थ ले डूबी। मेरे सिर पर उस घड़ी न जाने कौन-सा भूत सवार था। उन बेचारों ने तो जो कुछ किया; मेरी ही मर्यादा रखने के लिए किया। मैं तो उन्मत्त हो रही थी। समझाने-बुझाने से क्या काम

चलता! और समझाना-बुझाना तो स्त्रियों का काम है। मर्दों का समझाना तो उसी ढंग का होना चाहिए और होता भी है। नहीं मालूम, उन बेचारों पर क्या बीती! क्या मैं उन्हें फिर कभी देखूँगी? यह विचारते-विचारते भाइयों की वह मूर्ति उसके नेत्रों में फिर जाती, जो उसने अंतिम बार देखी थी, अब वह उस देश जो जा रहे थे, जहाँ से लौटकर आना मानो मृत्यु के मुख से निकल जाना है — वह रक्तपूर्ण नेत्र, वह अभिमान से भरी हुई चाल, वह फिरे हुए नेत्र जो एक बार उसकी ओर उठ गए थे। आह! उनमें क्रोध या द्वेष न था, केवल क्षमा थी। वह मुझ पर क्रोध क्या करते! फिर अदालत के इजलास का चित्र नेत्रों के सामने खिंच जाता। भाइयों के वह तेवर, उनकी वह आँखें, जो क्षणमात्र के लिए क्रोधाग्नि से फैल गई थीं, फिर उनकी प्यार की बातें, उनका प्रेम स्मरण हो आता। पुनः वे दिन याद आते जब वह उनकी गोद में खेलती थी, जब वह उनकी उँगली पकड़कर खेतों को जाया करती थी। हाय! क्या वह दिन भी आएँगे कि मैं उनको पुनः देखूँगी।

एक दिन वह था कि दूजी अपने भाइयों के रक्त की प्यासी थी; निदान एक दिन आया कि वह पयस्विनी नदी के तट पर कंकड़ियों द्वारा दिनों की गणना करती थी। एक कृपण जिस सावधानी से रुपयों को गिन-गिनकर इकट्ठा करता है, उसी सावधानी से दूजी इन कंकड़ियों को गिन-गिनकर इकट्ठा करती

थी। नित्य संध्याकाल वह इस ढेर में पत्थर का एक टुकड़ा और रख देती तो उसे क्षण-मात्र के लिए मानसिक सुख प्राप्त होता। इन कंकड़ियों का ढेर अब उसका जीवन-धन था। दिन में अनेक बार इन टुकड़ों को देखती और गिनती। असहाय पक्षी पत्थर के ढेरों से आशा के खोंते बनाता था।

यदि किसी को चिंता और शोक की मूर्ति देखनी हो तो वह पयस्विनी नदी के तट पर प्रतिदिन सायंकाल देख पड़ती है। डूबे हुए सूर्य की किरणों की भाँति उसका मुख-मंडल पीला है। वह अपने दुःखमय विचारों में डूबी हुई, तरंगों की ओर दृष्टि लगाए बैठी रहती है। यह तरंगें इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रही हैं? मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं ले जाती? क्या मेरे लिए वहाँ भी स्थान नहीं है। कदाचित शोक क्रंदन में यह भी मेरी संगिनी है। तरंगों की ओर देखते-देखते उसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानों वह स्थिर हो गईं और मैं शीघ्रता से बही जा रही हूँ। तब वह चौंक पड़ती और अँधेरी शिलाओं के बीच मार्ग खोजती हुई फिर अपने शोक-स्थल पर आ जाती है।

इसी प्रकार दूजी ने अपने दुःख के दिन व्यतीत किए। तीस-तीस के बारह ढेर बन गए; तब उसने उन्हें स्थान पर इकट्ठा किया। वह आशा का मंदिर उसी हार्दिक अनुराग से बनता रहा जो किसी भक्त को अपने इष्ट देव के साथ होता है। रात्रि के बारह घंटे

बीत गए। पूर्व की ओर प्रातःकाल का प्रकाश दिखाई देने लगा। मिलाप का समय निकट आया। इच्छा-रूपी अग्नि की लपट बढ़ी। दूजी उन ढेरों को गिनती, महीनों के दिनों की गणना करती। कदाचित एक दिन भी कम हो जाए। हाय! आजकल उसके मन की वह दशा थी जो प्रातःकाल सूर्य के सुनहरे प्रकाश में हलकोरें लेनेवाले सागर की होती है, जिसमें वायु की तरंगों से मुस्कराता हुआ कमल झूलता है।

## 13

आज दूजी इन पर्वतों और वनों से विदा होती है। वह दिन भी आ पहुँचा जिसकी राह देखते-देखते एक पूरा युग बीत गया। आज चौदह वर्ष के पश्चात उसकी प्यासी पलकें नदी में लहरा रही हैं। बरगद की जटाएँ नागिन बन गई है।

उस सुनसान वन से उसका चित्त कितना दुःखी थी। किंतु आज उससे पृथक होते हुए दूजी के नेत्र भर-भर आते है। जिस पाकर की छाया में उसने दुःख के दिन बिताए, जिस गुफा में उसने रो-रोकर रातें काटी, उसे छोड़ते आज शोक हो रहा है। यह दुःख के साथी हैं।

सूर्य की किरण दूजी की आशाओं की भाँति कुहरा की घटाओं को हटाती चली आती थीं। उसने अपने दुःख के मित्रों को अब पूर्ण नेत्रों से देखा। पुनः ढेरों के पास गई, जो उसके चौदह वर्ष की तपस्या के स्मारक चिह्न थे। उन्हें एक-एक कर चूमा, मानों वह देवी जी के चबूतरे है, तब वह रोती हुई चली जैसे लड़कियाँ ससुराल को चलती हैं।

संध्या समय उसने शहर में प्रवेश किया और पता लगाते हुए कैलासी के घर आई। घर सूना पड़ा था। तब वह विनयकृष्ण बघेल का घर पूछते-पूछते उनके बंगले पर आई। कुँवर महाशय टहलकर आए ही थे कि उसे खड़ी देखा। पास आए। उसके मुख पर घूँघट था। दूजी ने कहा — महाशय, मैं एक अनाथ दुखिया हूँ।

कुँवर साहब ने आश्चर्य भाव से कहा — तुम दूजी हो! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहीं।

कुँवर साहब के प्रेम-भाव ने घूँघट और बढ़ा दिया। इन्हें मेरा नाम स्मरण है, यह सोचकर दूजी का कलेजा धड़कने लगा। लज्जा से सिर नीचे झुक गया। लजाती हुई बोली — जिसका कोई हितू नहीं है उसका वन के सिवा अन्यत्र कहाँ ठिकाना है।

मैं भी वनों में रही। पयस्विनी नदी के किनारे एक गुफा में पड़ी रही।

कुँवर साहब विस्मित हो गए। चौदह वर्ष और नदी के किनारे गुफा में। क्या कोई संन्यासी इससे अधिक त्याग कर सकता है। वह आश्चर्य से कुछ न बोल सके।

दूजी उन्हें चुपचाप देखकर बोली — मैं कैलासी के घर से सीधे पर्वतों में चली गई और वहीं इतने दिन व्यतीत किए। चौदह वर्ष पूरे हो गए। जिन भाइयों की गरदन पर छुरी चलाई उनके छूटने के दिन अब आए है। नारायण उन्हें अब कुशलपूर्वक लावें। मैं चाहती हूँ कि उनके दर्शन करूँ और उनकी ओर से मेरे दिल में जो इच्छाएँ हैं पूर्ण हो जाएँ।

कुँवर साहब बोले — तुम्हारा हिसाब बहुत ठीक है। मेरे पास आज कलकत्ते से सरकारी पत्र आया है कि दोनों भाई चौदह तारीख को कलकत्ता पहुँचेंगे, उनके संबंधियों को सूचना दी जाए। यहाँ कदाचित दो-तीन दिन में आ जाएँगे। मैं सोच ही रहा था कि सूचना किसे दूँ।

दूजी ने विनयपूर्वक कहा — मेरा जी चाहता है कि वे जहाज पर से उतरे तो मैं उनके पैरों पर माथा नवाऊँ, उसके पश्चात मुझे संसार में कोई अभिलाषा न रहेगी। इसी लालसा ने मुझे इतने

दिनों तक जिलाया है। नहीं तो मैं आपके सम्मुख कदापि न खड़ी होती।

कुँवर विनयकृष्ण गम्भीर स्वभाव के मनुष्य थे। दूजी के आंतरिक रहस्य उनके चित्त पर एक गहरा प्रभाव डालते जाते थे। जब सारी अदालत दूजी पर हँसती थी तब उन्हें उसके साथ सहानुभूति थी और आज इसके वृत्तांत सुनकर वे इस ग्रामीण स्त्री के भक्त हो गए। बोले — यदि तुम्हारी यही इच्छा तो मैं स्वयं तुम्हें कलकत्ता पहुँचा दूँगा। तुमने उनसे मिलने की जो रीति सोची है उससे उत्तम ध्यान में नहीं आ सकती; परन्तु तुम खड़ी हो और मैं बैठा हूँ, यह अच्छा नहीं लगता दूजी, मैं बनावट नहीं करता; जिसमें इतना त्याग और संकल्प हो वह यदि पुरुष है तो देवता है, स्त्री है तो देवी है। जब मैंने तुम्हें पहले देखा उसी समय मैंने समझ लिया था कि तुम साधारण स्त्री नहीं हो। जब तुम कैलासी के घर से चली गई तो सब लोग कहते थे कि तुम जान पर खेल गई। परन्तु मेरा मन कहता था कि तुम जीवित हो। नेत्रों से पृथक होकर भी तुम मेरे ध्यान से बाहर न हो सकीं। मैंने वर्षो तुम्हारी खोज की, मगर तुम ऐसी खोह में जा छिपी थी कि तुम्हारा कुछ पता न चला।

इन बातों में कितना अनुराग था! दूजी को रोमांच हो गया। हृदय बल्लियाँ उछलने लगा। उस समय उसका मन चाहता था कि

इनके पैरों पर सिर रख दूँ। कैलासी ने एक बार जो बात उससे कहीं थी, वह बात उसे इस समय स्मरण आई। उसने भोलेपन से पूछा — क्या आप ही के कहने से कैलासी ने मुझे अपने घर में रख लिया था?

कुँवर साहब लज्जित होकर बोले — मैं इसका उत्तर कुछ न दूँगा।

रात को जब दूजी एक ब्राह्मणी के घर में नर्म बिछावन पर लेटी हुई थी तो उसके मन की वह दशा हो रही थी जो आश्विन मास के आकाश की होती है। एक ओर चंद्र प्रकाश, दूसरी ओर घनी घटा और तीसरे ओर झिलमिलाते हुए तारे।

## 14

प्रातःकाल का समय था। गंगा नामक स्टीमर बंगाल की खाड़ी में अभिमान से गर्दन उठाए, समुद्र की लहरों को पैरों से कुचलता हुआ हुगली के बन्दरगाह की ओर चला आता था। डेढ़ सहस्र से अधिक आदमी उसकी गोद में थे। अधिकतर व्यापारी थे। कुछ वैज्ञानिक तत्त्वों के अनुरागी, कुछ भ्रमण करने वाले और कुछ ऐसे हिंदुस्तानी मजदूर जिनको अपनी मातृभूमि आकर्षित कर रही थी।

उसी में दोनों भाई शानसिंह और गुमानसिंह एक कोने में बैठे निराशा की दृष्टि से किनारे की ओर देख रहे थे। दोनों हड्डियों के दो ढाँचे थे, उन्हें पहचानना कठिन था।

जहाज घाट पर पहुँचा। यात्रियों के मित्र और परिचित जन किनारे पर स्वागत करने के लिए अधीर हो रहे थे। जहाज पर से उतरते ही प्रेम की बाढ़ आ गई। मित्रगण परस्पर हाथ मिलाते थे। उनके नेत्र प्रेमाश्रु से परिपूर्ण थे। दोनों भाई शनैः-शनैः जहाज से उतरे। मानों किसी ने ढकेलकर उतार दिया। उनके लिए जहाज के तख्ते और मातृभूमि में कोई अन्तर न था। वे आए नहीं, बल्कि लाए गए थे। चिरकाल के कष्ट और शोक ने जीवन का ज्ञान भी शेष न छोड़ा था। साहस लेशमात्र भी न था। इच्छाओं का अन्त हो चुका था। वह तट पर खड़े विस्मित दृष्टि से सामने देखने लगे। कहाँ जाएँ? उनके लिए इस संसार-क्षेत्र में कोई स्थान न दिखाई देता था।

तब दूजी उस भीड़ में से निकलकर आती दिखाई दी। उसने भाइयों को खड़े देखा। तब जिस भाँति जल खाल की ओर गिरता है, उसी प्रकार अधीरता की उमंग में रोती हुई वह उनके चरणों से चिपट गई। दाहिने हाथ में शानसिंह के चरण थे, बायें हाथ में गुमानसिंह के, और नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित थी; मानों दो सूखे वृक्षों की जड़ों में एक मुरझायी बेल चिपटी हुई है या दो सन्यासी

माया और मोह की बेड़ी में बँधे खड़े हैं। भाइयों के नेत्रों से भी आँसू बहने लगे। उनके मुख-मंडल बादलों में से निकलने वाले तारों की भाँति प्रकाशित हो गए। वह दोनों पृथ्वी पर बैठ गए और तीनों भाई-बहन परस्पर गले मिलकर बिलख-बिलखकर रोए। वह गहरी खाड़ी जो भाइयों और बहन के बीच में थी, अश्रुधाराओं से परिपूर्ण हो गई। आज चौदह वर्ष के पश्चात भाई और बहन में मिलाप हुआ और वह घाव जिसने मांस को मांस से, रक्त को रक्त से, विलग कर दिया था, परिपूर्ण हो गया और वह उस मरहम का काम था जिससे अधिक लाभकारी और कोई मरहम नहीं होता, जो मन के मैल को साफ करता है, जो दुःख को भुलानेवाला और हृदय की दाह को शांत करनेवाला है, जो व्यंग विषैले घावों को भर देता है। यह काल का मरहम है।

दोनों भाई घर को लौटे। पट्टीदारों के स्वप्न भंग हो गए। हित-मित्र इकट्ठे हुए। ब्रह्मभोज का दिन निश्चित हुआ। पूड़ियाँ पकने लगी, घी की सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए, तेल की पासी-चमारों के लिए। कालेपानी का पाप इस घी के साथ भस्म हो गया।

दूजी भी कलकत्ते से भाइयों के साथ चली; प्रयाग तक आई। कुँवर विनयकृष्ण भी उनके साथ थे। भाइयों से कुँवर साहब ने दूजी के संबंध में कुछ बातें की; उनकी भनक दूजी के कानों में पड़ी। प्रयाग में दोनों भाई-बहन रुक गए कि त्रिवेणी में स्नान

करते चलें। कुँवर विनयकृष्ण अपने ध्यान में सब ठीक करके मन प्रसन्न करनेवाली आशाओं का स्वप्न देखते हुए चले गए, किंतु फिर वहाँ से दूजी का पता न चला। मालूम नहीं क्या हुई, कहाँ चली गई। कदाचित गंगा जी ने उसे अपनी गोद में लेकर सदा के दुःख से मुक्त कर दिया। भाई बहुत रोए-पीटे किंतु क्या करते। जिस स्थान पर दूजी ने वनवास के चौदह वर्ष व्यतीत किए थे वहाँ दोनों भाई प्रतिवर्ष जाते है और उन पत्थरों के ढेरों से चिमट-चिमटकर रोते है।

कुँवर साहब ने भी पेंशन ले ली। अब चित्रकूट में रहते है। दार्शनिक विचारों के पुरुष थे, जिस प्रेम की खोज थी वह न मिला। एक बार कुछ आशा दिखाई दी थी, जो चौदह वर्ष एक विचार के रूप में स्थित रही। एकाएक आशा की धुँधली झलक भी एक बार झिलमिलाते हुए दीपक की भाँति हँसकर सदा के लिए अदृश्य हो गई।

# प्रारब्ध

लाला जीवनदास को मृत्युशय्या पर पड़े 6 मास हो गए है। अवस्था दिनोंदिन शोचनीय होती जाती है। चिकित्सा पर उन्हें अब जरा भी विश्वास नहीं रहा। केवल प्रारब्ध का ही भरोसा है। कोई हितैषी वैद्य या डॉक्टर का नाम लेता है तो मुँह फेर लेते है। उन्हें जीवन की अब कोई आशा नहीं है। यहाँ तक कि अब उन्हें अपनी बीमारी के जिक्र से भी घृणा होती है। एक क्षण के लिए भूल जाना चाहते कि मैं काल के मुख में हूँ। एक क्षण के लिए इस दुस्साध्य चिंता-भार को सिर से फेंककर स्वाधीनता से साँस लेने के लिए उनका चित्त लालायित हो जाता है। उन्हें राजनीति में कभी रुचि नहीं रही। अपनी व्यक्तिगत चिंताओं ही में लीन रहते। लेकिन अब उन्हें राजनीतिक विषयों से विशेष प्रेम हो गया है। अपनी बीमारी की चर्चा के अतिरिक्त वह प्रत्येक विषय को शौक से सुनते है, किंतु ज्योंही किसी ने सहानुभूति से किसी औषधि का नाम लिया कि उनकी त्योरी बदल जाती है। अंधकार में विलापध्वनि इतनी आशाजनक नहीं होती जितनी प्रकाश की एक झलक।

यह यथार्थवादी पुरुष थे। धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरक की व्यवस्थाएँ उनकी विचार-परिधि से बाहर थी। यहाँ तक कि अज्ञात भय से भी वे शंकित न होते थे। लेकिन उसका कारण उनका मानसिक शिथिलता न था, बल्कि लोकचिंता ने परलोक-चिंता का स्थान ही शेष न रखा था। उनका परिवार बहुत छोटा था, पत्नी थी और एक बालक। लेकिन स्वभाव उदार था, ऋण से बढ़ा रहता था। उस पर यह असाध्य और चिरकालीन रोग ने ऋण पर कई दर्जे की वृद्धि कर दी थी। मेरे पीछे निस्सहायों का क्या हाल होगा? ये किसके सामने हाथ फैलाएँगे? कौन इनकी खबर लेगा? हाय! मैंने विवाह क्यों किया? पारिवारिक बंधन में क्यों फँसा? क्या इसलिए कि ये संसार के हिमतुल्य दया के पात्र बनें? क्या अपने कुल की प्रतिष्ठा और सम्मान को यों विनष्ट होने दूँ? जिस जीवनदास ने सारे नगर को अपनी अनुग्रह-दृष्टि से प्लावित कर दिया था उसी के पोते और बहू द्वार-द्वार ठोकरें खाते फिरें? हाय, क्या होगा? कोई अपना नहीं, चारों ओर भयावह वन है! कहीं मार्ग का पता नहीं। यह सरल रमणी, यह अबोध बालक! इन्हें किस पर छोड़ूँ?

हम अपनी आन पर जान देते थे। हमने किसी के सामने सिर नहीं झुकाया। किसी के ऋणी नहीं हुए। सदैव गर्दन उठाकर चले; और अब यह नौबत है कि कफन का भी ठिकाना नहीं!

## 2

आधी रात गुजर चुकी। जीवनदास की हालत आज बहुत नाजुक थी। बार-बार मूर्च्छा आ जाती। बार-बार हृदय की गति रुक जाती। उन्हें ज्ञात होता था कि अब अन्त निकट है। कमरे में एक लैंप जल रहा था। उनकी चारपाई से समीप ही प्रभावती और उसका बालक साथ सोए हुए थे। जीवनदास ने कमरे की दीवारों को निराशापूर्ण नेत्रों से देखा जैसे कोई भटका हुआ पथिक निवास-स्थान की खोज में हो! चारों ओर से घूमकर उनकी आँखें प्रभावती के चेहरे पर जम गई। हा! यह सुंदरी एक क्षण में विधवा हो जाएगी! यह बालक पितृहीन हो जाएगा। यही दोनों व्यक्ति मेरी जीवन-आशाओं के केंद्र थे। मैंने जो कुछ किया, इन्हीं के लिए किया। मैंने अपना जीवन इन्हीं पर समर्पण कर दिया था और अब इन्हें मझधार में छोड़े जाता हूँ। इसलिए कि वे विपत्ति भँवर के कौर बन जाएँ। इन विचारों ने उनके हृदय को मसोस दिया। आँखों से आँसू बहने लगे।

अचानक उनके विचार-प्रवाह में एक विचित्र परिवर्तन हुआ। निराशा की जगह मुख पर एक दृढ़ संकल्प की आशा दिखाई दी, जैसे किसी गृहस्वामिनी की झिड़कियाँ सुनकर एक दीन भिक्षुक के

तेवर बदल जाते है। नहीं, कदापि नहीं! मैं अपने प्रिय पुत्र और अपनी प्राण-प्रिय पत्नी पर प्रारब्ध का अत्याचार न होने दूँगा। अपने कुल की मर्यादा को भ्रष्ट न होने दूँगा। अबला को जीवन की कठिन परीक्षा में न डालूँगा। मैं मर रहा हूँ, लेकिन प्रारब्ध के सामने सिर न झुकाऊँगा। उसका दास नहीं, स्वामी बनूँगा। अपनी नौका को निर्दय तरंगों के आश्रित न बनने दूँगा।

निस्संदेह संसार मुँह बनाएगा। मुझे दुरात्मा, घातक नराधम कहेगा। इसलिए कि उसके पाशविक आमोद में, उनकी पैशाचिक क्रीड़ाओं में एक व्यवस्था कम हो जाएगी। कोई चिंता नहीं, मुझे संतोष तो रहेगा कि उसका अत्याचार मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। उसकी अनर्थ लीला से मैं सुरक्षित हूँ।

जीवनदास के मुख पर वर्णहीन संकल्प अंकित था। वह संकल्प जो आत्म-हत्या का सूचक है। वह बिछौने से उठे, मगर हाथ-पाँव थर-थर काँप रहे थे। कमरे की प्रत्येक वस्तु उन्हें आँखें फाड़-फाड़कर देखती हुई जान पड़ती थीं। आलमारी के शीशे में अपनी परछाई दिखाई दी। चौंक पड़े, वह कौन? खयाल आ गया, यह तो अपनी छाया है। उन्होंने आलमारी से एक चमचा और एक प्याला निकाला। प्याले में वह जहरीली दवा थी जो डॉक्टर ने उनकी छाती पर मलने के लिए दी थी! प्याले को हाथ में लिये चारों ओर सहमी हुई दृष्टि से ताकते हुए वह प्रभावती के सिरहाने

आकर खड़े हो गए। हृदय पर करुणा का आवेग हुआ। आह! इन प्यारों को क्या मेरे ही हाथों मरना लिखा था? मैं ही इनका यमदूत बनूँगा। यह अपने कर्मों का फल है। मैं आँखें बन्द करके वैवाहिक बंधन में फँसा। इन भावी आपदाओं की ओर क्यों मेरा ध्यान न गया? मैं उस समय ऐसा हर्षित और प्रफुल्लित था, मानों जीवन एक अनादि सुख-स्वर है, एक सुधामय आनन्द सरोवर। यह इसी अदूरदर्शिता का परिणाम है कि आज मैं यह दुर्दिन देख रहा हूँ।

हठात् उनके पैरों में कंपन हुआ, आँखों में अँधेरा छा गया, नाड़ी की गति बन्द होने लगी। वे करुणामयी भावनाएँ मिट गईं। शंका हुई, कौन जाने यही दौरा जीवन का अन्त न हो। वह सँभल कर उठे और प्याले से दवा का एक चम्मच निकाल कर प्रभावती के मुँह में डाल दिया। उसने नींद में दो-एक बार मुँह डुलाकर करवट बदल ली। तब उन्होंने लखनदास का मुँह खोलकर उसमें भी एक चम्मच भर दवा डाल दी और प्याले को जमीन पर पटक दिया। पर हा! मानव-परवशता! हा प्रबल भावी! भाग्य की विषम क्रीड़ा अब भी उनसे चाल चल रही थी। प्याले में विष न था। वह टानिक था जो डॉक्टर ने उनका बल बढ़ाने के लिए दिया था।

प्याले को रखते ही उनके काँपते हुए पैर स्थिर हो गए, मूर्च्छा के सब लक्षण जाते रहे। चित्त पर भय का प्रकोप हुआ। वह कमरे में एक क्षण भी न ठहर सके। हत्या-प्रकाश का भय हत्या-कर्म से भी कहीं दारुण था। उन्हें दंड की चिंता न थी, पर निंदा और तिरस्कार से बचना चाहते थे। वह घर में इस तरह बाहर निकले, जैसे किसी ने उन्हें ढकेल दिया हो, उनके अंगों में कभी इतनी स्फूर्ति न थी। घर सड़क पर था, द्वार पर एक ताँगा मिला! उस पर जा बैठे। नाड़ियों में विद्युत-शक्ति दौड़ रही थी।

ताँगेवाले ने पूछा — कहाँ चलूँ?

जीवनदास — जहाँ चाहो?

ताँगेवाला — स्टेशन चलूँ?

जीवनदास — वहीं सही।

ताँगेवाला — छोटी लैन चलूँ या बड़ी लैन?

जीवनदास — जहाँ गाड़ी जल्दी मिल जाए।

ताँगेवाले ने उन्हें कौतूहल से देखा। परिचित था, बोला — आपकी तबीयत अच्छी नहीं है, क्या और कोई साथ न जाएगा?

जीवनदास ने जवाब दिया — नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।

ताँगेवाला — आप कहाँ जाना चाहते है?

जीवनदास — बहुत बातें न करो। यहाँ से जल्दी चलो।

ताँगेवाले ने घोड़े को चाबुक लगाया और स्टेशन की ओर चला। जीवनदास वहीं पहुँचते ही ताँगे से कूद पड़े और स्टेशन के अंदर चले। ताँगेवाले ने कहा — पैसे?

जीवनदास को अब ज्ञात हुआ कि मैं घर से कुछ नहीं लेकर चला, यहाँ तक कि शरीर पर वस्त्र भी न थे। बोले — फिर मिलेंगे।

ताँगेवाला — आप न जाने कब लौटेंगे।

जीवनदास — मेरा जूता नया है, ले लो।

ताँगेवाले का आश्चर्य और भी बढ़ा, समझा इन्होंने शराब पी है, अपने आपे में नहीं है। चुपके से जूते लिये और चलता हुआ।

गाड़ी आने में अभी घंटों की देर थी। जीवनदास प्लेटफार्म पर जाकर टहलने लगे। धीरे-धीरे उनका गति तीव्र होने लगी, मानों कोई उनका पीछा कर रहा है। उन्हें इसकी बिलकुल चिंता न था कि मैं खाली हाथ हूँ। जाड़े के दिन थे। लोग सरदी के मारे अकड़े जाते थे, किंतु उन्हें ओढ़ने-बिछाने की भी सुधि न थी। उनकी चैतन्यशक्ति नष्ट हो गई थी; केवल अपने दुष्कर्म का ज्ञान जीवित था। ऐसी शंका होती थी कि प्रभावती मेरे पीछे दौड़ी चली

आती है, कभी भ्रम होता कि लखनदास भागता हुआ आ रहा है, कभी पड़ोसियों के धर-पकड़ की आवाजें कानों में आती थी, उसकी कल्पना प्रतिक्षण उत्तेजित होती जाती थी, यहाँ तक कि वह प्राणभय से माल के बोरों के बीच में जा छिपे। एक-एक मिनट पर चौंक पड़ते थे और सशंक नेत्रों से इधर-उधर देखकर फिर छिप जाते थे। उन्हें अब यह भी स्मरण न रहा कि मैं यहाँ क्या करने आया हूँ, केवल अपनी प्राणरक्षा का ज्ञान शेष था। घंटियाँ बजीं, मुसाफिरों के झुंड के झुंड आने लगे, कुलियों की बक-बक, मुसाफिरों के चीख और पुकार, आने-जानेवाले इंजिनों की धक-धक से हाहाकार मचा हुआ था; किन्तु जीवनदास उन बोरों के बीच में इस तरह पैंतरे बदल रहे थे मानो वे चैतन्य होकर उन्हें घेरना चाहते हैं।

निदान गाड़ी स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई। जीवनदास सँभल गए। स्मृति जागृत हो गई। लपककर बोरों में से निकले और एक कमरे में जा बैठे।

इतने में गाड़ी के द्वार पर 'खट-खट' की ध्वनि सुनाई दी। जीवनदास ने चौंककर देखा, टिकट का निरीक्षक खड़ा था। उनकी अचेतावस्था भंग हो गई। वह कौन-सा नशा है, जो मार के आगे भाग न जाए। व्याधि की शंका संज्ञा को जागृत कर देती है। उन्होंने शीघ्रता से जल-गृह खोला और उसमें घुस गए।

निरीक्षक ने पूछा — और कोई नहीं? मुसाफिरों ने एक स्वर से कहा — अब कोई नहीं है। जनता को अधिकारी वर्ग से एक नैसर्गिक द्वेष होता है। गाड़ी चली तो जीवनदास बाहर निकले। यात्रियों ने एक प्रचंड हास्यध्वनि से उनका स्वागत किया। यह देहरादून मेल था।

## 3

रास्ते-भर जीवनदास कल्पनाओं में मग्न रहे। हरिद्वार पहुँचे तो उनकी मानसिक अशांति बहुत कुछ कम हो गई थी। एक क्षेत्र से कंबल लाए, भोजन किया और वहीं पड़ रहे। अनुग्रह के कच्चे धागे को वह लोहे की बेड़ी समझते थे; पर दुरावस्था ने आत्म-गौरव का नाश कर दिया था।

इस भाँति कई दिन बीत गए, किंतु मौत का तो कहना ही क्या, वह व्याधि भी शांत होने लगी, जिसने जीवन से निराश कर दिया था। उनकी शक्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी। मुख की कांति प्रदीप्त होने लगी, वायु का प्रकोप शांत हो गया, मानों दो प्रिय प्राणियों के बलिदान ने वास्तव में मृत्यु को तृप्त कर दिया था।

जीवनदास को यह रोग-निवृत्ति उस दारुण रोग से भी अधिक दुखदायी प्रतीत होती थी। वे अब मृत्यु-आह्वन करते, ईश्वर से प्रार्थना करते कि फिर उसी जीर्णावस्था का दुरागम हो, नाना प्रकार के कुपथ्य करते, किंतु कोई प्रयत्न सफल न होता था। उन बलिदानों ने वास्तव में यमराज को संतुष्ट कर दिया था।

अब उन्हें चिंता होने लगी; क्या मैं वास्तव में जिंदा रहूँगा। लक्षण ऐसे ही दीख पड़ते थे। नित्यप्रति यह शंका प्रबल होती जाती थी। उन्होंने प्रारब्ध को अपने पैरों पर झुकाना चाहा था, पर अब स्वयं उसके पैरों की रज चाट रहे थे। उन्हें बार-बार अपने ऊपर क्रोध आता, कभी व्यग्र होकर उठते कि जीवन का अन्त कर दूँ, तकदीर को दिखा दूँ कि मैं अब भी उसे कुचल सकता हूँ; किंतु उसके हाथों विकट यंत्रणा भोगने के बाद उन्हें भय होता था कि कहीं इससे भी जटिल समस्या न उपस्थित हो जाए, क्यों उन्हें उसकी शक्ति का कुछ-कुछ अनुमान हो गया था। इन विचारों ने उनके मन में नास्तिकता के भाव उत्पन्न किए। वर्तमान भौतिक शिक्षा ने उन्हें पहले ही अनात्मवादी बना दिया था। अब उन्हें समस्त प्रकृति अनर्थ और अधर्म के रंग में डूबी हुई मालूम होने लगी। यहाँ न्याय नहीं, दया नहीं, सत्य नहीं। असंभव है कि यह सृष्टि किसी कृपालु शक्ति के अधीन हो और उसके ज्ञान के नित्य ऐसे वीभत्स, ऐसे भीषण अभिनय होते रहें। वह न दयालु है, न

वत्सल है। वह सर्वज्ञानी और अन्तर्यामी भी नहीं, निस्संदेह वह एक विनाशिनी, वक्र और विकारमयी शक्ति है। सांसारिक प्राणियों ने उसकी अनिष्ट क्रीड़ा से भयभीत होकर उसे सत्य का सागर, दया और धर्म का भंडार, प्रकाश और ज्ञान का स्रोत बना दिया है। यह हमारा दीन-विलाप है। अपनी दुर्बलता का अश्रुपात। इसी शक्तिहीनता को, इसी निःसहायता को हम उपासना और आराधना कहते हैं और उस पर गर्व करते है। दार्शनिकों का कथन है कि यह प्रकृति अटल नियमों के अधीन है, यह भी उनकी श्रद्धालुता है। नियम जड़, अचैतन्य होते है उनमें कपट के भाव कहाँ? इन नियमों का संचालक, इस इंद्रजाल का मदारी अवश्य है; यह स्पष्ट है, किंतु वह प्राणी देवता नहीं, पिशाच है।

इन भावों ने शनैः-शमैः क्रियात्मक रूप धारण किया। सद्भाक्ति हमें ऊपर ले जाती है, असद्भक्ति हमें नीचे गिराती है। जीवनदास की नौका का लंगर उखड़ गया। अब उसका न कोई लक्ष्य था और न कोई आधार, तरंगों में डाँवाडोल होती रहती थी।

पंद्रह वर्ष बीत गए। जीवनदास का जीवन आनन्द और विलास में कटता था। रमणीक निवास-स्थान था, सवारियाँ थी, नौकर-चाकर थे। नित्य राग-रंग होता रहता था। अब इंद्रियलिप्सा उनका धर्म था, वासना-तृप्ति उनका जीवनतत्त्व। वे विचार और विवेक के बंधनों से मुक्त हो गए थे। नीति और अनीति का ज्ञान लुप्त हो गया था। साधनों की भी कमी नहीं थी। बँधे बैल और खुले साँड़ में बड़ा अन्तर है। एक रातिब पाकर भी दुर्बल है, दूसरा घास-पात ही खाकर मस्त हो रहा है। स्वाधीनता बड़ी पोषक वस्तु है।

जीवनदास को अब अपनी स्त्री और बालक की याद न सताती थी। भूत और भविष्य का उनके हृदय पर कोई चिह्न न था। उनकी निगाह केवल वर्तमान पर रहती थी। वह धर्म को अधर्म समझते थे और अधर्म को धर्म। उन्हें सृष्टि का यह मूलतत्त्व प्रतीत होता था। उसकी जीवन स्वयं इसी दुर्नीति का उज्जवल प्रमाण था। आत्मबंधन को तोड़कर वे जितने उत्सित हुए, वहाँ तक उन बंधनों में पड़े हुए उनकी दृष्टि भी न पहुँच सकती थी। जिधर आँख उठती, अधर्म का साम्राज्य दीख पड़ता थी। यही सफल जीवन का मंत्र था। स्वेच्छाचारी हवा में उड़ते है, धर्म का सेवक एड़ियाँ रगड़ते है। व्यापार और राजनीति के भवन, ज्ञान और भक्ति के मंदिर, साहित्य और काव्य की रंगशाला, प्रेम और

अनुराग मंडलियाँ सब इसी दीपक से आलोकित हो रही हैं। ऐसी विराट ज्योति की आराधना क्यों न की जाए?

गरमी के दिन थे, संध्या का समय। हरिद्वार के रेलवे-स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ थी। जीवनदास एक गेरुए रंग का रेशमी चादर गले में डाले, सुनहरा चश्मा लगाए, दिव्य ज्ञान की मूर्ति बने हुए अपने सहचरों के साथ प्लेटफार्म पर टहल रहे थे। उनकी भेदक दृष्टि यात्रियों पर लगी हुई थी। अचानक दूसरे दर्जे के कमरे में एक शिकार दिखाई दिया। यह एक रूपवान युवक था। चेहरे से प्रतिभा चमक रही थी। उसकी घड़ी की जंजीर सुनहरी थी, तनजेब की अचकन के बटन भी सोने के थे। जिस प्रकार बधिक की दृष्टि पशु के मांस और चर्म पर रहती है, उसी प्रकार जीवनदास की दृष्टि में मनुष्य एक भोग्य पदार्थ था। उनके अनुमान ने आश्चर्यजनक कुशलता प्राप्त कर ली थी और उससे कभी भूल न होती थी। यह युवक कोई रईस है। सरल और गौरवशील भी है अतएव सुगमता से जाल में फँस जाएगा। उस पर अपनी सिद्धता का सिक्का बिठाना चाहिए। उसकी सरल-हृदयता पर निशाना मारना चाहिए। मैं गुरु बनूँ, यह दोनों मेरे शिष्य बन जाएँ, छल की घातें चलें, मेरी अपार विद्वत्ता, अलौकिक कीर्ति और अगाध वैराग्य का मधुर गान हो, शब्दाडंबरों के दाने बिखेर दिए जाएँ और मृग पर फंदा डाल दिया जाए।

यह निश्चय करके जीवनदास कमरे में दाखिल हुए। युवक ने उनकी ओर गौर से देखा, जैसा अपने भूले हुए मित्र को पहचानने की चेष्टा कर रहा हो। अब अधीर होकर बोला — महात्मा जी, आपका स्थान कहीं है?

जीवनदास प्रसन्न होकर बोला — बच्चा, संतों का स्थान कहाँ? समस्त संसार हमारा स्थान है।

युवक ने पूछा — आपका शुभ नाम लाला जीवनदास तो नहीं है?

जीवनदास चौंक पड़े। छाती बल्लियों उछलने लगी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। कहीं यह खुफिया पुलिस का कर्मचारी तो नहीं है? कुछ निश्चय न कर सके, क्या उत्तर दूँ। गुम-सुम हो गए।

युवक ने असमंजस में पड़े देखकर कहा — मेरी यह धृष्टता क्षमा कीजिएगा। मैंने यह बात इसलिए पूछी कि आपका श्रीमुख मेरे पिता जी से बहुत मिलता है। वे बहुत दिनों से गायब है। लोग कहते है, सन्यासी हो गए। बरसों से उन्हीं की तलाश में मारा फिर रहा हूँ।

जिस प्रकार क्षितिज पर मेघराशि चढ़ती है और क्षणमात्र में संपूर्ण वायु-मंडल को घेर लेती है उसी प्रकार जीवनदास को अपने हृदय में पूर्व-स्मृतियों की एक लहर-सी उठती हुई मालूम हुई। गला

फँस गया और आँखों के सामने प्रत्येक वस्तु तैरती हुई जान पड़ने लगी। युवक की ओर सचेष्ट नेत्रों से देखा, स्मृति सजग हो गई। उसके गले से लिपट कर बोले — लक्खू?

लखनदास उनके पैरों पर गिर पड़ा।

'मैंने बिलकुल नहीं पहचाना।'

'एक युग हो गया।'

## 5

आधी रात गुजर चुकी थी। लखनदास सो रहा था और जीवनदास खिड़की से सिर निकाले विचारों में मग्न थे। प्रारब्ध का एक नया अभिनय उनके नेत्रों के सामने था। वह धारणा जो अतीत काल से उनकी पथ-प्रदर्शक बनी हुई थी, हिल गई। मुझे अहंकार ने कितना विवेकहीन बना दिया था! समझता था, मैं ही सृष्टि का संचालक हूँ, मेरे मरने पर परिवार का अधःपतन हो जाएगा पर मेरी यह दुश्चिंता कितनी मिथ्या निकली। जिन्हें मैंने विष दिया, वे आज जीवित है, सुखी है और संपत्तिशाली है। असंभव था कि लक्खू को ऐसी उच्च शिक्षा दे सकता। माता के पुत्र-प्रेम और

अध्यवसाय ने कठिन मार्ग कितना सुगम कर दिया। मैं उसे इतना सच्चरित्र, इतना दृढ़ संकल्प, इतना कर्तव्यशील कभी न बना सकता। यह स्वावलंबन का फल है। मेरा विष उसके लिए अमृत हो गया। कितना विनयशील, हँसमुख, निःस्पृह और चतुर युवक है। मुझे तो अब उसके साथ बैठते भी संकोच होता है। मेरा सौभाग्य कैसे उदय हुआ है। मैं विराट जगत को किसी पैशाचिक शक्ति के अधीन समझता था, जो दीन प्राणियों के साथ बिल्ली और चूहे का खेल खेलाती है। हा मूर्खता! हा अज्ञान! आज मुझ जैसा पापी मनुष्य इतनी सुखी है! इसमें संदेह नहीं कि इस जगत का स्वामी दया और कृपा का महासागर है। प्रातःकाल मुझे उस देवी से साक्षात होगा, जिसके साथ जीवन के क्या-क्या सुख नहीं भोगे! मेरे पोते और पोतियाँ मेरी गोद में खेलेंगी। मित्रगण मेरा स्वागत करेंगे। ऐसा दयामय भगवान को मैं अमंगल का मूल समझता था?

इस विचार में पड़े हुए जीवनदास को नींद आ गई। जब आँखें खुलीं तो लखनऊ की प्रिय और अपरिचित ध्वनि कानों में आई। वे चौंककर उठ बैठे। लखनदास असबाब उतरवा रहे थे। स्टेशन के बाहर उनकी फिटन खड़ी थी। दोनों आदमी उस पर बैठे। जीवनदास का हृदय आह्वान से भर रहा था। मौन-रूप बैठे हुए थे, मानों समाधि में हों।

फिटन चली। जीवनदास को प्रायः सभी चीजें नई मालूम होती थीं। न वे बाजार न वे गली-कूचे, न वे प्राणी थे। युगांतर-सा हो गया था। निदान उन्हें एक रमणीक बंगला-सा दिखाई पड़ा, जिसके द्वार पर मोटे अक्षरों पर अंकित था -

'जीवनदास-पाठशाला'

जीवनदास ने विस्मित होकर पूछा — क्या है?

लखनदास ने कहा — माता जी ने आपकी स्मृति-रूप यह पाठशाला खोली है। कई लड़के छात्रवृत्ति पाते है!

जीवनदास का दिल और भी बैठ गया। मुँह से एक ठंडी साँस निकल आई।

थोड़ी देर बाद फिटन रुकी, लखनदास उतर पड़े। नौकरों ने असबाब उतारना शुरू किया। जीवनदास ने देखा, एक पक्का दो-मंजिला मकान था। उनके पुराने खपरैलवाले घर का कोई चिह्न न था। केवल एक नीम का वृक्ष बाकी था। दो कोमल बालक 'बाबू जी' कहते हुए दौड़े और लखनदास के पैरों से लिपट गए। घर में एक हलचल-सी मच गई। दीवानखाने के पीछे एक सुंदर पुष्पवाटिका थी। जीवनदास ऐसे चकित हो रहे थे मानों कोई तिलिस्म देख रहे हों।

## 6

रात्रि का समय था। बारह बज चुके थे। जीवनदास को किसी करवट नींद न आती थी। अपने जीवन का चित्र उनके सामने था। इन पंद्रह वर्षों में उन्होंने जो काँटे बोये थे वे इस समय उनके हृदय में चुभ रहे थे। जो गढ़े खोदे थे वे उन्हें निगलने के लिए मुँह खोले हुए थे। उनकी दशा में एक ही दिन में घोर परिवर्तन हो गया था। अभक्ति और अविश्वास की जगह विश्वास का अभ्युदय हो गया था, और यह विश्वास केवल मानसिक न था, वरन प्रत्यक्ष था। ईश्वरीय न्याय का भय एक भयंकर मूर्ति के सदृश उनके सामने खड़ा था। उससे बचने की अब उन्हें कोई युक्ति नजर न आती थी। अब तक उनकी स्थिति उस आग की चिनगारी के समान थी, जो किसी मरुभूमि पर पड़ी हो। उससे हानि की कोई शंका न थी; लेकिन आज यह चिनगारी एक खलिहान के पास पड़ी हुई थी। मालूम नहीं, कब वह प्रज्वलित होकर खलिहान को भस्मीभूत कर दे।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, यह भय ग्लानि का रूप धारण करता जाता था। हा शोक! मैं इस योग्य भी नहीं कि इस साक्षात क्षमा-दया को अपना कलुषित मुँह दिखाऊँ। उसने मुझ पर सदैव

करुणा और वात्सल्य की दृष्टि रखी और यह शुभ दिन दिखाया। मेरी कालिमा उसकी उज्जवल कीर्ति पर एक काला दाग है। मेरी कलुषता क्या इस मंगल चित्र को कलुषित न कर देगी। मेरी पापाग्नि के स्पर्श से क्या हरा-भरा उद्यान मटियामेट न हो जाएगा? मेरी अपकीर्ति कभी न कभी प्रकट होकर इस कुल की मर्यादा और सम्मान को नष्ट न कर देगी? मेरे जीवन से अब किसको सुख है? कदाचित भगवान ने मुझे लज्जित करने के लिए, मुझे अपनी तुच्छता से अवगत कराने के लिए, मेरे गले में अनुताप की फाँसी डालने के लिए यह अद्‍भुत लीला दिखाई है। हा! इसी कुल की मर्यादा-रक्षा के लिए भीषण हत्याएँ की थीं। क्या अब जीवित रहकर इसकी वह दुर्दशा कर दूँ जो मर कर भी न कर सका? मेरे हाथ खून से लाल हो रहे है। परमात्मन्! यह खून रंग न लाए। यह हृदय पापों के कीटाणुओं से जर्जर हो रहा है। भगवन्, यह कुल उनके लिए छूत से बचा रहे।

इन विचारों ने जीवनदास में ग्लानि और भय के भावों को इतना उत्तेजित किया कि वह विकल हो गए। जैसे परती भूमि में बीज का असाधारण विकास और प्रचार होता है, उसी प्रकार विश्वासहीन हृदय में जब विश्वास का बीज पड़ता है तो उसमें सजीवता और विकास का प्रादुर्भाव होता है। उसमें विचार के बदले व्यवहार का प्राधान्य होता है। आत्म-समर्पण उसका विशेष

लक्ष्य होता है। जीवनदास को अपने चारों तरफ एक सर्वव्यापी शक्ति, एक विराट आत्मा का अनुभव हो रहा था। प्रतिक्षण उनकी कल्पना सजग और प्रदीप्त होती जाती थी। अपने जीवन की घटनाएँ ज्वाला-शिखा बन-बनकर उस घर की ओर, उसे मंगल और आनन्द के निवास-भवन को ओर दौड़ती हुई जान पड़ती थीं, मानो उसे निगल जाएँगी।

पूर्व की ओर आकाश अरुण वर्ण हो रहा था। जीवनदास की आँखें भी अरुण थी। वे घर से निकले। हाथ में केवल धोती थी। उन्होंने अनिष्टमय अस्तित्व को मिटा देने का निश्चय कर लिया था। अपनी पापाग्नि की आँच से अपने परिवार को बचाने का संकल्प कर चुके थे। प्राणपण से अपने आत्मशोक और हृदयदाह को शांत करने पर उद्यत हो गए थे।

सूर्योदय हो रहा था। उसी समय जीवनदास गोमती की लहरों में समा गए।

# सुहाग की साड़ी

यह कहना भूल है कि दांपत्य-सुख के लिए स्त्री-पुरुष के स्वभाव में मेल होना आवश्यक है। श्रीमती गौरा और श्रीमान कुँवर रतनसिंह में कोई बात न मिलती थी। गौरा उदार थी, रतनसिंह कौड़ी-कौड़ी को दाँतों से पकड़ते थे। वह हँसमुख थी, रतनसिंह चिंताशील थे। वह कुल-मर्यादा पर जान देती थी, रतनसिंह इसे आडम्बर समझते थे। उनके सामाजिक व्यवहार और विचार में भी घोर अन्तर था। यहाँ उदारता की बाजी रतनसिंह के हाथ थी। गौरा को सहभोज से आपत्ति थी, विधवा-विवाह से घृणा और अछूतों के प्रश्न से विरोध। रतनसिंह इन सभी व्यवस्थाओं के अनुमोदक थे। राजनीतिक विषयों में यह विभिन्नता और भी जटिल थी। गौरा वर्तमान स्थिति को अटल, अमर, अपरिहार्य समझती थी, इसलिए वह नरम-नरम, काँग्रेस, स्वराज्य, होमरूल सभी से विरक्त थी। कहती — ये मुट्ठी भर पढ़े-लिखे आदमी क्या बना लेंगे, चने कहीं भाड़ फोड़ सकते है? रतनसिंह पक्के आशावादी थे, राजनीतिक सभा की पहली पंक्तियों में बैठने वाले, कर्मक्षेत्र में सबसे पहले कदम उठाने वाले, स्वदेशव्रतधारी और बहिष्कार के पूरे

अनुयायी। इतनी विषमताओं पर भी उनका दाम्पत्य-जीवन सुखमय था। कभी-कभी उनमें मतभेद अवश्य हो जाता था, पर वे समीर के वे झोंके थे, जो स्थिर जल को हल्की-हल्की लहरों से आभूषित कर देते थे; वे प्रचंड झोंके नहीं नहीं जिनसे सागर विप्लवक्षेत्र बन जाता है। थोड़ी-सी सदिच्छा सारी विषमताओं और मतभेदों का प्रतिकार कर देती थी।

## 2

विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। स्वयंसेवकों के जत्थे भिखारियों की भाँति द्वारों पर खड़े हो-होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा माँगते थे और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था जहाँ उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन फिर गए थे। नयनसुख, नयनदुश, मलमल मनमल और तनजेब तनबेध हो गए थे। रतनसिंह ने आकर गौरा से कहा — लाओ, अब सब विदेशी कपड़े संदूक से निकाल दो, दे दूँ।

गौरा — अरे तो इस घड़ी कोई साइत निकली जाती है, फिर कभी दे देना।

रतन — वाह, लोग द्वार पर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और तुम कहती हो, फिर कभी दे देना।

गौरा — तो यह लो कुंजी निकाल कर दे दो। मगर यह सब है लड़कों का खेल। घर फूँकने से स्वराज्य न कभी मिला है और न मिलेगा।

रतन — मैंने कल ही तो इस विषय पर तुमसे घंटों सिरपच्ची की थी और उस समय तुम मुझसे सहमत हो गई थी, आज फिर वही शंकाएँ करने लगी?

गौरा — मैं तुम्हारे अप्रसन्न हो जाने के डर से चुप हो गई थी।

रतन — अच्छा, शंकाएँ फिर कर लेना, इस समय जो करना है वह करो।

गौरा — लेकिन मेरे कपड़े तो न लोगे न?

रतन — सब देने पड़ेंगे, विलायत का एक सूत भी घर में रखना मेरे प्रण को भंग कर देना।

इतने में रामटहल साईस ने बाहर से पुकारा — सरकार, लोग जल्दी मचा रहे हैं कहते हैं, अभी कई मुहल्लों का चक्कर लगाना है। कोई गाढ़े का टुकड़ा हो तो मुझे भी मिल जाए, मैंने भी अपने कपड़े दे दिए।

केसर महरी कपड़ों की एक गठरी लेकर बाहर जाती हुई दिखाई दी। रतनसिंह ने पूछा — क्या तुम भी अपने कपड़े देने जाती हो?

केसर ने लजाते हुए कहा — हाँ, सरकार जब देश छोड़ रहा है तो मैं कैसे पहनूँ?

रतनसिंह ने गौरा की ओर आदेशपूर्ण नेत्रों से देखा। अब वह विलंब न कर सकी। लज्जा से सिर झुकाए संदूक खोलकर कपड़े निकालने लगी। एक संदूक खाली हो गया। तो उसने दूसरा संदूक खोला। सबसे ऊपर एक सुंदर रेशमी सूट रखा हुआ था जो कुँवर साहब ने किसी अंगरेजी कारखाने से सिलाया था।

गौरा ने पूछा — क्या सूट भी निकाल दूँ?

रतन — हाँ, हाँ इसे किस दिन के लिए रखोगी?

गौरा — यदि मैं यह जानती कि इतनी जल्दी हवा बदलेगी तो कभी यह सूट न बनवाने देती। सारे रुपए खून हो गए।

रतनसिंह ने कुछ उत्तर न दिया। तब गौरा ने अपना संदूक खोला और जलन के मारे स्वदेशी-विदेशी सभी कपड़े निकाल-निकालकर फेंकने लगी। वह आवेश-प्रवाह में आ गई। उनमें कितनी ही बहुमूल्य फैंसी जाकेट और साड़ियाँ थी, जिन्हें किसी समय पहनकर

वह फूली न समाती थी। बाज-बाज साड़ियों के लिए तो उसे रतनसिंह से बार-बार तकाजे करने पड़े थे। पर इस समय सब की सब आँखों में खटक रही थी। रतनसिंह उसके भावों को ताड़ रहे थे। स्वदेशी कपड़ों का निकाला जाना उन्हें अखर रहा था, पर इस समय चुप रहने ही में कुशल समझते थे। तिस पर भी दो-एक बार वाद-विवाद की नौबत आ ही गई। एक बनारसी साड़ी के लिए तो वह झगड़ बैठे, उसे गौरा के हाथों से छीन लेना चाहा, पर गौरा ने एक न मानी, निकाल ही फेंका। सहसा संदूक में से एक केसरिया रंग की तनजेब की साड़ी निकल आई जिस पर पक्के आँचल और पल्ले टँके हुए थे। गौरा ने उसे जल्दी से लेकर अपनी गोद में छिपा लिया।

रतनसिंह ने पूछा — कैसी साड़ी है।

गौरा — कुछ नहीं, तनजेब की साड़ी है। आँचल पक्का है।

रतनसिंह — तनजेब की है तब तो जरूर ही विलायती होगी। उसे अलग क्यों रख दिया? क्या वह बनारसी साड़ियों से अच्छी है?

गौरा — अच्छी तो नहीं है, पर मैं इसे न दूँगी।

रतन — वाह, विलायती चीज को मैं न रखने दूँगा। लाओ इधर।

गौरा — नहीं मेरी खातिर से इसे रहने दो।

रतन — तुमने मेरी खातिर से एक भी चीज न रखी, मैं क्यों तुम्हारी खातिर करूँ।

गौरा — पैरों पड़ती हूँ, जिद न करो।

रतन — स्वदेशी साड़ियों में से जो चाहो रख लो, लेकिन इस विलायती चीज को मैं न रखने दूँगा। इसी कपड़े की बदौलत हम गुलाम बने, यह गुलामी का दाग मैं अब नहीं रख सकता। लाओ इधर।

गौरा — मैं इसे न दूँगी, एक बार नहीं हजार बार कहती हूँ न दूँगी।

रतन — मैं इसे लेकर छोड़ूँगा, इस गुलामी के पटके को, इस दासत्व के बंधन को किसी तरह न रखूँगा।

गौरा — नाहक जिद करते हो।

रतन — आखिर तुमको इससे क्यों इतना प्रेम है?

गौरा — तुम तो बाल की खाल निकालने लगते हो। इतने कपड़े थोड़े है? एक साड़ी रख ही ली तो क्या?

रतन — तुमने अभी तक इन होलियों का आशय ही नहीं समझा।

गौरा — खूब समझती हूँ। सब ढोंग है। चार दिन में जोश ठंडा पड़ जाएगा।

रतन — तुम केवल इतना बतला दो कि यह साड़ी तुम्हें क्यों इतनी प्यारी है, तो शायद मैं मान जाऊँ।

गौरा — यह मेरी सुहाग की साड़ी है।

रतन — (जरा देर सोचकर) तब तो मैं इसे कभी न रखूँगा। मैं विदेशी वस्त्रों को यह शुभस्थान नहीं दे सकता। इस पवित्र संस्कार का यह अपवित्र स्मृति-चिह्न घर में नहीं रख सकता। मैं इसे सबसे पहले होली की भेंट करूँगा। लोग कितने हतबुद्धि हो गए थे। मैं इसे अवश्य होली में दूँगा।

गौरा — कैसा असगुन मुँह से निकालते हो।

रतन — ऐसी सुहाग की साड़ी का घर में रखना ही अशकुन, अमंगल, अनिष्ट और अनर्थ है।

गौरा — यों चाहे ज़बरदस्ती ही करूँगा। मज़बूरी है।

यह कहकर वह लपके कि गौरा के हाथों से साड़ी छीन लूँ। गौरा ने उसे मजबूती से पकड़ लिया और रतन की ओर कातर नेत्रों से देखकर कहा — तुम्हें मेरे सिर की कसम।

केसर महरी बोली — बहू जी की इच्छा है तो रहने दीजिए।

रतनसिंह के बढ़े हुए हाथ रुक गए, मुख मलिन हो गया। उदास होकर बोले — मुझे अपना व्रत तोड़ना पड़ेगा। प्रतिज्ञा-पत्र पर झूठे हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। खैर, यही सही।

## 3

शाम हो गई थी। द्वार पर स्वयंसेवकगण शोर मचा रहा थे, कुँवर साहब जल्दी आइए, श्रीमती जी से कह दीजिए, हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। बहुत देर हो रही है। उधर रतनसिंह असमंजस में पड़े हुए थे कि प्रतिज्ञा-पत्र पर कैसे हस्ताक्षर करूँ। विदेशी वस्त्र घर में रख कर स्वदेशी व्रत का पालन क्योंकर होगा? आगे कदम बढ़ा चुका हूँ, पीछे नहीं हट सकता। लेकिन प्रतिज्ञा का अक्षरशः पालन करना अभीष्ट भी तो नहीं, केवल उसके आशय पर लक्ष्य रहना चाहिए। इस विचार से मुझे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने का पूरा अधिकार है। त्रिया-हट के सामने किसी की नहीं चलती। यों चाहूँ तो एक ताने में काम निकल सकता है, पर उसे बहुत दुःख होगा, उसके भावों का आदर करना मेरा कर्तव्य है।

गौरा भी चिंता में डूबी हुई थी। सुहाग की साड़ी सुहाग का चिह्न है, उसे आग लगना कितने अशकुन की बात है। ये कभी-कभी

बालकों की भाँति जिद करने लगते है, अपनी धुन में किसी की सुनते नहीं। बिगड़ते है तो मानों मुँह ही नहीं सीधा होता।

लेकिन वे बेचारे भी तो अपने सिद्धांतों से मजबूर हैं। झूठ से उन्हें घृणा है। प्रतिज्ञा-पत्र पर झूठी स्वीकृत लिखनी पड़ेगी, उनकी आत्मा को बड़ा दुःख होगा, घोर धर्म संकट में पड़े होंगे, यह भी तो नहीं हो सकता कि सारे शहर में स्वदेशानुरागियों के सिरमौर बनकर उस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने से आनाकानी करें। कहीं मुँह दिखाने को जगह न रहेगी, लोग समझेंगे, बना हुआ है। पर शकुन की चीज कैसे दूँ?

इतने में उसने रामटहल साईस को सिर पर कपड़ों का गट्ठर लिए बाहर जाते देखा। केसर महरी भी एक गट्ठर सिर पर रखे हुए थी। पीछे-पीछे रतनसिंह हाथ में प्रतिज्ञा-पत्र लिए जा रहे थे। उनके चेहरे पर ग्लानि की झलक थी जैसे कोई सच्चा सच्चा आदमी झूठी गवाही देने जा रहा हो। गौरा को देखकर उन्होंने आँखें फेर लीं और चाहा कि उसकी निगाह बचाकर निकल जाऊँ। गौरा को ऐसा जान पड़ा कि उनकी आँखें डबडबायी हुई हैं। वह राह रोककर बोली — ज़रा सुनते जाओ।

रतन — जाने दो, दिक न करो; लोग बाहर खड़े है।

उन्होंने चाहा कि पत्र को छिपा लूँ; पर गौरा ने उसे उसके हाथ से छीन लिया; उसे गौर से पढ़ा और एक क्षण चिंतामग्न रहने के बाद बोली — यह साड़ी भी लेते जाओ।

रतन — रहने दो, अब तो मैंने झूठ लिख ही दिया।

गौरा — मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा कर रहे हो।

रतन — यह तो मैं पहले ही कह चुका था।

गौरा — मेरी भूल थी, क्षमा कर दो और इसे लेते जाओ।

रतन — जब तुम इसे देना अशकुन समझती हो तो रहने दो। तुम्हारी खातिर थोड़ा-सा झूठ बोलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

गौरा — नहीं, लेते जाओ। अमंगल के भय से तुम्हारी आत्मा का हनन नहीं करना चाहती।

यह कहकर उसने अपनी सुहाग की साड़ी उठाकर पति के हाथों में रख दी। रतन ने देखा, गौरा के चेहरे पर एक रंग आता है, एक रंग जाता है, जैसे कोई रोगी अन्तरस्थ विषम वेदना को दबाने की चेष्टा कर रहा हो। उन्हें अपनी अहृदयता पर लज्जा आई। हा! केवल अपने सिद्धांत की रक्षा के लिए, अपनी आत्मा के

सम्मान के लिए, मैं इस देवी के भावों का वध कर रहा हूँ! यह अत्याचार है। साड़ी गौरा के देकर बोले — तुम इसे रख लो, मैं प्रतिज्ञा-पत्र को फाड़े डालता हूँ।

गौरा ने दृढ़ता से कहा — तुम न ले जाओगे, तो मैं खुद जाकर दे आऊँगी।

रतनसिंह विवश हो गए। साड़ी ली और बाहर चले आए।

## 4

उसी दिन से गौरा के हृदय पर एक बोझ-सा रहने लगा। वह दिल बहलाने के लिए नाना उपाय करती; जलसों में भाग लेती, सैर करने जाती, मनोरंजक पुस्तकें पढ़ती, यहाँ तक कि कई बार नियम के विरुद्ध थियेटरों में भी गई, किसी प्रकार अमंगल कल्पना को शांत करना चाहती थी, पर यह आशंका एक मेघ-मंडल की भाँति उसके हृदय पर छाई रहती थी।

जब एक पूरा महीना गुजर गया और उसकी मानसिक वेदना दिनों-दिन बढ़ती ही गई तो कुँवर साहब ने उसे कुछ दिनों के लिए अपने इलाके पर ले जाने का निश्चय किया। उसका मन

उन्हें उनके आदर्श प्रेम पर नित्य तिरस्कार किया करता था। वह अक्सर देहातों में प्रचार का काम करने जाया करते थे! पर अब अपने गाँवों से बाहर न जाते, या जाते तो संध्या तक जरूर लौट आते। उनकी एक दिन की देर, उनका साधारण सिर दर्द और जुकाम उसे अव्यवस्थित कर देते थे। वह बहुधा बुरे स्वप्न देखा करती। किसी अनिष्ट के काल्पनिक अस्तित्व की छाया उसे अपने चारों ओर मँडराती हुई प्रतीत होती थी।

वह तो देहात में पड़ी हुई आशंकाओं की कठपुतली बनी हुई थी। इधर उसकी सुहाग की साड़ी स्वदेश-प्रेम की वेदी पर भस्म होकर ऋद्धि-प्रदायिनी भभूत बनी हुई थी।

दूसरे महीने के अन्त में रतनसिंह उसे लेकर लौट आए।

## 5

गौरा को वापस आए तीन-चार दिन हो चुके थे, पर असबाब के सँभालने और नियत स्थान पर रखने में वह इतनी व्यस्त रही कि घर से बाहर न निकल सकी थी। कारण यह था कि केसर महरी उसके जाने के दूसरे ही दिन छोड़कर चली गई थी और अभी उतनी चतुर दूसरी महरी मिली न थी। कुँवर साहब का साईस

रामटहल भी छोड़ गया था। बेचारे कोचवान को साईस का काम करना पड़ता था।

संध्या का समय था। गौरा बरामदे में बैठी आकाश की ओर एकटक होकर ताक रही थी। चिंताग्रस्त प्राणियों का एकमात्र यही अवलंब है! सहसा रतनसिंह ने आकर कहा — चलो, आज तुम्हें स्वदेशी बाजार की सैर करा लावें। यह मेरा ही प्रस्ताव था, पर चार दिन यहाँ आए हो गए, उधर जाने का अवकाश ही न मिला।

गौरा — मेरा तो जाने का जी नहीं चाहता। यहीं बैठकर कुछ बातें करो।

रतन — नहीं, चलो देख आवें। एक घंटे में लौट आवेंगे।

अन्त में गौरा राजी हो गई। इधर महीनों से बाहर न निकली थी। आज उसे चारों तरफ एक विचित्र ही शोभा दिखाई दी। बाजार कभी इतने रौनक पर न था। वह स्वदेशी बाजार में पहुँची तो जुलाहों और कोरियों को अपनी-अपनी दुकानें सजाए बैठे देखा। सहसा एक वृद्ध कोरी ने आकर रतनसिंह को सलाम किया। रतनसिंह चौककर बोले — रामटहल, तुम अब कहाँ हो?

रामटहल का चेहरा श्रीसंपन्न था। उसके अंग-अंग से आत्म-सम्मान की आभा झलक रही थी। आँखों में गौरव-ज्योति थी।

रतनसिंह को कभी अनुमान न हुआ था कि अस्तबल साफ करनेवाला बुड्ढा रामटहल इतना सौम्य, इतना भद्र पुरुष है। वह बोला — सरकार, अब तो अपना कारबार करता हूँ। जब से आपकी गुलामी छोड़ी तब से अपने काम में लग गया। आप लोगों की निगाह हम गरीबों पर हो गई, हमारा भी गुजर हो रहा है, नहीं तो आप जानते ही है कि किस हालत में पड़ा हुआ था। जात का कोरी हूँ, पर पापी पेट के लिए चमार बन गया था।

रतन — तो भाई, अब मुँह मीठा कराओ। यह बाजार लगाने की मेरी ही सलाह थी, बिक्री तो अच्छी होती है।

रामटहल — हाँ सरकार! आजकल खूब बिक्री हो रही है। माल हाथों-हाथ उड़ जाता है। यहाँ बैठते हुए एक महीना हो गया है, पर आपकी कृपा से लोगों के चार पैसे थे वे बेबाक हो गए। भगवान की दया से रूखा-सूखा भोजन भी दोनों समय मिल जाता है और क्या चाहिए। मलकिन की सुहाग की साड़ी का होली में आना कहिए और बाजार का चमकना कहिए। लोगों ने कहा, जब इतने बड़े आदमी होकर ऐसे शकुन की चीज की परवाह नहीं करते तो फिर हम विदेशी कपड़े क्यों रखें। जिस दिन होली जली है उसके दो-तीन दिन पहले ही सरकार इलाके पर चले गए थे। उसके पहले भी सरकार कई दिनों तक घर से बहुत कम

निकलते थे। मैं तो यही कहूँगा कि यह सारी माया उसी सुहाग की साड़ी की है।

इतने में एक अधेड़ स्त्री गौरा के सामने आकर बोली — बहू जी मुझे भूल तो नहीं गई.

गौरा ने सिर उठाया तो सामने केसर महरी खड़ी थी। वह सुंदर साड़ी पहने हुए थी, हाथ-पाँव में मामूली गहने भी थे, चेहरा खिला हुआ था। स्वाधीन जीवन का गौरव एक-एक भाव से प्रस्फुटित हो रहा था।

गौरा ने कहा — इतनी जल्दी भूल जाऊँगी? अब कहाँ हो? हमें लौटने भी न दिया, बीच में ही उड़ भागी?

केसर — क्या करूँ सरकार, अपना काम चलते देखकर सबर न हो सका। जब तक रोजगार न चलता था तब तक लाचारी थी। पेट के लिए सेवा-टहल, करम-कुकरम सभी करना पड़ता था। अब आप लोगों की दया से हमारे भी दिन लौटे है, अब दूसरा काम नहीं किया जाता। अगर बाजार का यही रंग रहा तो अपनी कमाई खाए न चुकेगी। यह सब आपकी साड़ी की महिमा है। उसकी बदौलत हम गरीबों के कितने ही घर बस गए। एक महीना पहले इन दूकानवालों में से किसी को रोटियों का ठिकाना न था। कोई साईसी करता था, कोई तासे बजाता था, यहाँ तक

कि कई आदमी मेहतर का काम करते थे। कितने ही भीख माँगते थे। अब सब अपने धंधे में लग गए हैं। सच पूछो तो तुम्हारी सुहाग की साड़ी ने हमें सुहागिन बना दिया, नहीं तो हम सुहागिन होते हुए भी विधवाएँ थीं। सच कहती हूँ, सैकड़ों जवानों से नित्य यही दुआ निकलती है कि आपका सुहाग अमर हो, जिसने हमारी राँड़ जाति को सुहाग दान दिया।

रतनसिंह एक दुकान पर बैठकर कुछ कपड़े देखने लगे। गौरा का भावुक हृदय आनन्द से पुलकित हो रहा था। उसकी सारी अमंगल कल्पनाएँ स्वप्नवत विच्छिन्न होती जाती थीं। आँखें सजल हो गई थी और सुहाग की देवी अश्रुसंचित नेत्रों के सामने खड़ी आँचल फैला कर उसे आशीर्वाद दे रही थी।

उसने रतनसिंह को भक्तिपूर्ण आँखों से देखकर कहा — मेरे लिए भी एक साड़ी ले लो।

## 6

जब गौरा यहाँ से चली तो सड़क की बिजलियाँ जल चुकी थीं। सड़कों पर खूब प्रकाश था। उसका हृदय भी आनन्द के प्रकाश से जगमगा रहा था।

रतनसिंह ने पूछा — सीधे घर चलूँ?

गौरा — नहीं, छावनी की तरफ होते चलो।

रतन — बाजार खूब सजा हुआ था।

गौरा — यह जमीन लेकर एक स्थाई बाजार बनवा दो। स्वदेशी कपड़ों की दूकानें हो और किसी से किराया न लिया जाए।

रतन — बहुत खर्च पड़ेगा।

गौरा — मकान बेच दो, रुपए ही रुपए हो जाएंगे।

रतन — और रहे, पेड़ तले?

गौरा — नहीं, गाँववाले मकान में।

रतन — सोचूँगा।

गौरा — (जरा देर में) इलाके-भर में खूब कपास की खेती कराओ, जो कपास बोये उसकी बेगार माफ कर दो।

रतन — हाँ, तदबीर अच्छी है, दूनी उपज हो जाएगी।

गौरा — (कुछ देर सोचने के बाद) लकड़ी बिना दाम दो तो कैसा हो? जो चाहे, चरखे बनवाने के लिए काट ले जाए।

रतन — लूट मच जाएगी।

गौरा — ऐसी बेईमानी कोई न करेगा।

जब उसने गाड़ी से उतर कर घर में कदम रखा तो चित्त शुभ-कल्पनाओं से प्रफुल्लित हो रहा था। मानों कोई बछड़ा खूँटे से छूटकर किलोलें कर रहा हो।

# लोकमत का सम्मान

बेचू धोबी को अपने गाँव और घर से उतना ही प्रेम था, जितना प्रत्येक मनुष्य को होता है। उसे रूखी-सूखी और आधे पेट खाकर भी अपना गाँव समग्र संसार से प्यारा था। यदि उसे वृद्धा किसान स्त्रियों की गालियाँ खानी पड़ती थी तो बहुओं से 'बेचू दादा' कहकर पुकारे जाने का गौरव भी प्राप्त था। आनन्द और शोक के प्रत्येक अवसर पर उसका बुलावा होता था विशेषतः विवाहों में तो उसकी उपस्थिति वर और वधू से कम आवश्यक न थी। उसकी स्त्री घर में पूजी जाती थी, द्वार पर बेचू का स्वागत होता था। वह पेशवाज पहने कमर में घंटियाँ बाँधे साजिंदों को साथ लिये एक हाथ में मृदंग और दूसरा अपने कान पर रखकर जब तत्कालरचित विरहे और बोल कहने लगता तो आत्मसम्मान से उसकी आँखें उन्मत्त हो जाती थीं। हाँ, धेले पर कपड़े धोकर भी वह अपनी दशा से संतुष्ट रह सकता था, किंतु जमींदार के नौकरों की क्रूरता और अत्याचार कभी-कभी इतने असह्य हो जाते थे कि उसकी जी गाँव छोड़कर भाग जाने को चाहने लगता था। गाँव में कारिंदा साहब के अतिरिक्त पाँच-छह

चपरासी थे। उनके सहवासियों की संख्या कम न थी। बेचू को इन सज्जनों के कपड़े मुफ्त धोने पड़ते थे। उसके पास इस्तरी न थी। उनके कपड़ों पर इस्तरी करने के लिये उसे दूसरे-दूसरे गाँव के धोबियों की चिरौरी करनी पड़ती थी। अगर कभी बिना इस्तरी किए ही कपड़े ले जाता तो उसकी शामत आ जाती थी। मार पड़ती, घंटों चौपाल के सामने खड़ा रहना पड़ता, गालियों की वह बौछार पड़ती थी सुननेवाला कानों पर हाथ रख लेते, उधर से गुजरने वाली स्त्रियाँ लज्जा से सिर झुका लेतीं।

जेठ का महीना था। आसपास की ताल-तलैया सब सूख गई थी। बेचू को पहर रात रहते दूर के एक ताल पर जाना पड़ता था। यहाँ भी धोबियों की ओसरी बँधी हुई थी। बेचू की ओसरी पाँचवें दिन पड़ती थी। पहर रात रहे लादी लाद कर ले जाता। मगर जेठ की धूप में 9-10 बजे के बाद खड़ा न हो सकता। आधी लादी भी न धुल पाती, बिना धुले कपड़े समेटकर घर चला आता। गाँव के सरल जजमान उसकी विपत्ति कथा सुनकर शांत हो जाते थे; न कोई गालियाँ देता, न मारने दौड़ता। जेठ की धूप में उन्हें भी पुर चलाना और खेत गोड़ना पड़ता था। अपने पैरों में बिवाय फटी थी, उसकी पीर जानते थे। परन्तु कारिंदा महाशय को प्रसन्न करना इतना सहज न था। उनके आदमी नित्य बेचू पर सवार रहते थे। वह बड़ी गंभीरता से कहते — तू एक-एक

अठवारे तक कपड़े नहीं लाता, क्या यह भी कोई जाड़े के दिन है, आजकल पसीने से दूसरे दिन कपड़े मैले हो जाते है; कपड़ों से बू आने लगती है और तुझे कुछ भी परवाह नहीं रहती। बेचू हाथ-पैर जोड़कर किसी तरह उन्हें मनाता रहता था, यहाँ तक कि एक बार उसे बातें करते 9 दिन हो गए और कपड़े तैयार न हो सके। धुल तो गए थे, पर इस्तरी न हुई थी। अन्त में विवश होकर बेचू दसवें दिन कपड़े लेकर चौपाल पहुँचा। मारे डर के पैर आगे न उठते थे। कारिंदा साहब उसे देखते ही क्रोध से लाल हो गए। बोले — क्यों वे पाजी, तुझे गाँव में रहना है कि नहीं?

बेचू ने कपड़ों की गठरी तख्त पर रख दी और बोला — क्या करूँ सरकार कहीं भी पानी नहीं है और न मेरे पास इस्तरी है।

कारिंदा — पानी तेरे पास नहीं है और सारी दुनिया में है। अब तेरा इलाज इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि गाँव से निकाल दूँ। शैतान, दाई से पेट बनाता है, पानी नहीं, इस्तरी नहीं।

बेचू — मालिक, गाँव आपका है, चाहे रहने दे, चाहे निकाल दे, लेकिन यह कलंक न लगाएँ, इतनी उमिर आप ही लोगों की खिदमत करते हो गई, पर चाहे कितनी ही भूल-चूक हुई हो, कभी नीयत बद नहीं हुई। अगर गाँव में कोई कह दे कि मैंने कभी

ग्राहकों के साथ ऐसी चालें चली है तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ। यह दस्तूर शहर के धोबियों का है।

निरंकुशता का तर्क से विरोध है। कारिंदा साहब ने कुछ और अपशब्द कहे। बेचू ने भी न्याय और दया की दुहाई दी। फल यह हुआ कि उसे आठ हल्दी और गुड़ पीना पड़ा। नवें दिन उसने सब गाहकों के कपड़े जैसे-तैसे धो दिए, अपना बोरिया-बँधना सँभाला और बिना किसी से कुछ कहे-सुने रात को पटने की राह ली। अपने पुराने गाहकों से विदा होने के लिए जितने धैर्य की जरूरत थी, उससे वह वंचित था।

## 2

बेचू शहर में आया तो ऐसा जान पड़ा कि मेरे लिए पहले से ही जगह खाली थी। उसे केवल एक कोठरी किराए पर लेनी पड़ी और काम चल निकला। पहले तो वह किराया सुनकर चकराया। देहात में तो उसे महीने में इतनी धुलाई भी न मिलती थी। पर जब धुलाई की दर मालूम हुई तो किराए की अखर मिट गई। एक ही महीने में गाहकों की संख्या उसकी गणना-शक्ति से अधिक हो गई। यहाँ पानी की कमी न थी। वह वादे

का पक्का था। अभी नागरिक-जीवन के कुसंस्कारों से मुक्त था। कभी-कभी उसकी एक दिन की मजदूरी देहात की वार्षिक आय से बढ़ जाता थी।

लेकिन तीन ही चार महीने में उसे शहर की हवा लगने लगी। पहले नारियल पीता था, अब एक गुड़गुड़ी लाया। नंगे पाँव जूते से वेष्टित हो गए और मोटे अनाज से पाचन-क्रिया में विघ्न पड़ने लगा। पहले कभी-कभी तीज-त्यौहार के दिन शराब पी लिया करता था, अब थकान मिटाने के लिए नित्य उसका सेवन होने लगा। स्त्री को आभूषणों की चाट पड़ी। और धोबिन बन-ठनकर निकलती है, मैं किससे कम हूँ। लड़के खोमचे पर लट्टू हुए, हलवे और मूँगफली की आवाज सुनकर अधीर हो जाते। उधर मकान के मालिक ने किराया बढ़ा दिया; भूसा और खली भी मोतियों के मोल बिकती थी। लादी के दोनों बैलों का पेट भरने में एक खासी रकम निकल जाती थी। अतएव पहले कई महीनों में जो बचत हो जाती थी, वह अब गायब हो गई। कभी-कभी खर्त का पलड़ा भारी हो जाता; लेकिन किफायत करने की कोई विधि समझ में न आती थी। निदान स्त्री ने बेचू की नज़र बचाकर गाहकों के कपड़े पछाई देने शुरू किए। बेचू को यह बात मालूम हुई तो बिगड़ कर बोला — अगर मैंने फिर यह शिकायत सुनी

तो मुझसे बुरा कोई न होगा। इसी इलजाम पर तो मैंने बाप-दादे का गाँव छोड़ दिया। यहाँ से भी निकालना चाहती है क्या?

स्त्री ने उत्तर दिया — तुम्हीं से तो एक दिन भी दारू के बिना नहीं रहा जाता। मैं क्या पैसे लाकर लुटाती हूँ। जो खर्च लगे वह देते जाओ। मुझे इससे कुछ मिठाई थोड़े ही मिलती है। पर शनैः-शनैः नैतिक ज्ञान ने आवश्यकता के सामने सिर झुकाना शुरू किया। एक बार उसे कई दिन तक ज्वर आया। स्त्री उसे डोली में बिठाकर वैद्य जी के यहाँ ले गई। वैद्य जी ने नुस्खा लिख दिया। घर में पैसे न थे। बेचू स्त्री को कातर नेत्रों से देखकर बोला — तो क्या होगा? दवा मँगानी ही है?

स्त्री — जो कहो वह करूँ।

बेचू — किसी से उधार न मिलेगा?

स्त्री — सबसे तो उधार ले चुकी हूँ। मुहल्ले में राह चलना मुश्किल है। अब किससे लूँ। अकेले जितना काम हो सकता है, करती हूँ। अब छाती फाड़ के मर थोड़ी ही जाऊँगी? कुछ पैसे ऊपर से मिल जाते थे, लेकिन तुमने उसकी मनाही कर दी है। तो मेरा क्या बस? दो दिन से बैल भूखे खड़े है। दो रुपए हों तो इनका पेट भरे।

बेचू — अच्छा, जो तेरे जी में आए कर, किसी तरह से काम तो चला। मुझे मालूम हो गया कि शहर में अच्छी नीयतवाले आदमी का निर्वाह नहीं हो सकता।

उस दिन से यहाँ अन्य धोबियों की नीति का व्यवहार होने लगा।

## 3

बेचू के पड़ोस में एक वकील के मुहर्रिर मुंशी दाताराम रहा करते थे। बेचू कभी-कभी अवकाश के समय उनके पास जा बैठता। पड़ोस की बात थी धुलाई का कोई हिसाब-किताब न था। मुंशी जी बेचू की खातिर करते, अपनी चिलम उतारकर उसकी तरफ बढ़ा देते, कभी घर में कोई अच्छी चीज पकती तो बेचू के लड़कों के लिए भेजवा देते। हाँ, इसका विचार रखते थे कि इन सत्कारों का मूल्य धुलाई के पैसे से बढ़ने न पाए।

गर्मियों के दिन थे, बरातों की धूम थी। मुंशी जी को एक बरात में शरीक होना था। गुड़गुड़ी के लिए पेचवान बनवाया, रोगनी चिलम आए, सलेमशाही जूते खरीदे, अपने लिए वकील साहब के घर से एक कालीन मँगनी लाए, अपने मित्र से सोने की अँगूठी और बटन लिए। इस सामग्रियों के एकत्रित करने में ज्यादा

कठिनाई न पड़ी, किंतु कपड़े मँगनी लेते हुए शर्म आती थी। बरात के योग्य कपड़े बनवाने की गुंजाइश न थी। तनजेब के कुरते, रेशमी अचकन, नैनसुख का चुन्नटदार पायजामा, बनारसी साफा बनवाना आसान न था। खासी रकम लगती थी। रेशमी किनारे की धोतियाँ और काशी सिल्क की चादर खरीदनी भी कठिन समस्या था। कई दिनों तक बेचारे इसी चिंता में पड़े रहे। अन्त में बेचू के सिवाय और कोई इस चिंता का निवारण करनेवाला न दिखाई दिया। संध्या समय जब बेचू उनके पास बैठा तो बड़ी नम्रता से बोले — बेचू, एक बरात में जाना था और सब सामान तो मैंने जमा कर लिए है, मगर कपड़े बनवाने में झंझट है। रुपयों की तो कोई चिंता नहीं, तुम्हारी दया से हाथ कभी खाली नहीं रहता। पेशा भी ऐसा है कि जो कुछ मिल जाए वह थोड़ा है, एक न एक आँख का अंधा गाँठ का पूरा नित्य फँसा ही रहता है, पर जानते हो आजकल लग्न ही तेजी है, दरजियों को सिर उठाने की फुरसत नहीं, दूनी सिलाई लेते हैं, तिस पर भी महीनों दौड़ाते हैं। अगर तुम्हारे यहाँ मेरे लायक कपड़े हों तो दो-तीन दिन के लिए दे दो, किसी तरह सिर से यह बला टले। नेवता दे देने में किसी का खर्च होता है, बहुत किया तो पत्र छपवा लिये, लेकिन लोग यह नहीं सोचते कि बरातियों को कितनी तैयारियाँ करनी पड़ती है, क्या-क्या कठिनाइयाँ पड़ती है। अगर

बिरादरी में यह रिवाज हो जाता कि जो महाशय निमंत्रण भेजें, वही उसके लिए सब सामान भी जुटाएँ तो लोग इतनी बेपरवाही से नेवते न दिया करते। तो बोलो — इतनी मदद करोगे न?

बेचू ने मुरौवत में पड़कर कहा — मुंशी जी, आपके लिए किसी बात से इनकार थोड़ी ही है। लेकिन बात यह है कि आजकल लग्न की तेजी से सभी गाहक अपने-अपने कपड़ों की जल्दी मचा रहे है, दिन में दो-तीन बेर आदमी भेजते है। ऐसा न हो, इधर आपको कपड़े दे दूँ, उधर कोई जल्दी मचाने लगे।

मुंशी जी — अजी, दो-तीन दिन के लिए टालना कौन बड़ा काम है। तुम चाहो तो हफ्तों टाल सकते हो, अभी भट्ठी नहीं दी, अभी इस्तरी नहीं हुई, घाट बन्द है। तुम्हारे पास बहानों की क्या कमी है। पड़ोस में रहकर मेरी खातिर से इतना भी न करोगे?

बेचू — नहीं मुंशी जी, आपके लिए जान हाजिर है। चलिए कपड़े पसंद कर लीजिए, तो मैं उनपर और एक बेर इस्तरी करके ठीक कर दूँ। यही न होगा, गाहकों की घुड़कियाँ खानी पड़ेगी। दो-चार गाहक टूट ही जाएँगे तो कौन गम है।

मुंशी दाताराम ठाट से बारात में पहुँचे। यहाँ उनके बनारसी साफे, रेशमी अचकन और रेशमी चादर ने ऐसा रंग जमाया कि लोग समझने लगे, यह कोई बड़े रईस है। बेचू भी उनसे साथ हो लिया था। मुंशी जी उसकी बड़ी खातिर कर रहे थे। उसे एक बोतल शराब दिला दी, भोजन करने गए तो एक पत्तल उसके वास्ते भी लेते आए। बेचू के बदले उसके चौधरी कहकर पुकारते थे। यह सारा ठाट-बाट उसी की बदौलत तो था।

आधी रात गुजर चुकी थी। महफिल उठ गई थी। लोग सोने की तैयारियाँ कर रहे थे। बेचू मुंशी जी की चारपाई के पास एक चदरा ओढ़े पड़ा था। मुंशी जी ने कपड़े उतारे और बड़ी सावधानी से अलगनी पर लटका दिए। हुक्का तैयार था। लेटकर पीने लगे कि अकस्मात साजिंदों में से एक अताई आकर सामने खड़ा हो गया और बोला — कहिए हजरत यह अचकन और साफा आपने कहाँ पाया?

मुंशी जी ने उसकी ओर सशंक नेत्रों से देखकर कहा — इसका क्या मतलब?

अताई — इसका मतलब यह है, यह दोनों चीजें मेरी हैं।

मुंशी जी दुस्साहसपूर्ण भाव से कहा — क्या तुम्हारे खयाल में रेशमी अचकन और साफा तुम्हारे सिवाय और किसी के पास हो ही नहीं सकता।

अताई — हो क्यों नहीं सकता। अल्लाह ने जिसे दिया है, वह पहनता है। एक से एक पड़े हुए है। मैं किस गिनती में हूँ। लेकिन ये दोनों चीजें मेरी है। अगर ऐसी अचकन शहर में किसी के पास निकल आए तो जो जरीबाना कहिए दूँ। मैंने इसकी सिलाई दस रुपए दिए है। ऐसा कोई कारीगर ही शहर में नहीं। ऐसी तराश करता है कि हाथ चूम लें। साफे पर भी मेरा निशान बना हुआ है। लाइए दिखा दूँ। मैं आपसे महज इतना पूछता चाहता हूँ कि आपने यह चीजें कहाँ पाईं।

मुंशी जी समझ गए कि अब तर्क-वितर्क का स्थान नहीं है। कहीं बात बढ़ जाय तो बेइज्जती हो। कूटनीति से काम न चलेगा। नम्रता से बोले — भाई, यह न पूछो, यहाँ इन बातों के कहने का मौका नहीं। हमारी और तुम्हारी इज्जत एक है। बस, इतना ही समझ लो कि इसी तरह दुनिया का काम चलता है। अगर ऐसे कपड़े बनवाने बैठता तो इस वक्त सैंकड़ों के माथे जाती। यहाँ तो किसी तरह नवेद में शरीक होना था। तुम्हारे कपड़े खराब न होंगे, इसका जिम्मा मेरा। मैं इनकी एहतियात अपने कपड़ों से भी ज्यादा करता हूँ।

अताई — कपड़े की मुझे फिकर नहीं, आपकी दुआ से अल्लाह ने बहुत दिया है। रईसों को खुदा सलामत रखे, उनकी बदौलत पाँचों उँगलियाँ घी में हैं। न मैं आपको बदनाम करना चाहता हूँ। आपकी जूतियों का गुलाम हूँ। मैं सिर्फ इतना जानना चाहता था कि कपड़े यह आपने किससे पाए। मैंने बेचू धोबी को धोने के लिए दिए थे। ऐसा तो नहीं हुआ कि कोई चोर बेचू के घर से उड़ा लाया हो, या किसी धोबी ने बेचू के घर से चुराकर आपको दे दिए हों, क्योंकि बेचू ने अपने हाथ से आपको हरगिज कपड़े न दिए होंगे। वह ऐसा छिछोरापन नहीं करता। मैं खुद उससे इस तरह का मुआमला करना चाहता था, हाथों पर रुपए रख देता था, पर उसने कभी परवा न की। साहब रुपए उठाकर फेंक दिए और ऐसी डाँट बताई कि मेरे होश उड़ गए। इधर का हाल मैं नहीं जानता, क्योंकि अब मैं उससे ऐसी बातचीत ही नहीं करता। पर मुझे यकीन नहीं आता कि वह इतना बदनीयत हो गया होगा। इसलिए आपसे बार-बार पूछता हूँ कि आपने यह कपड़े कहाँ पाएँ?

मुंशी जी — बेचू की निस्बत तुम्हारा जो खयाल है, वह बिलकुल ठीक है। वह ऐसा ही बेगरज आदमी है, लेकिन भाई पड़ोस का भी तो कुछ हक होता है। मेरे पड़ोस में रहता है, आठों पहर का

साथ है। इधर से कुछ न कुछ सलूक होता ही रहता है। मेरी जरूरत देखी, पसीज गया। बस, और कोई बात नहीं।

अताई ने बेचू की निस्पृहता के विषय में बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया था। न उसने बेचू के हाथ पर रुपए रखे थे और न बेचू ने कभी उसे डाँट बताई थी। पर इस अतिशयोक्ति का प्रभाव बेचू पर उससे कहीं ज्यादा पड़ा जितना केवल बात को यथार्थ कह देने से पड़ सकता था। बेचू नींद में न सोया था। अताई की एक-एक बात उसने सुनी थी। उसे ऐसा जान पड़ता था कि मेरी आत्मा किसी गहरी नींद से जाग रही है। दुनिया मुझे कितना ईमानदार, कितना सच्चा, कितना निष्कपट समझती है और मैं कितना बेईमान कितना दगाबाज हूँ। इसी झूठे इलजाम पर मैंने वह गाँव छोड़ा जहाँ बाप-दादों से रहता आता था। लेकिन यहाँ आकर दारू-शराब, घी-चीनी के पीछे तबाह हो गया।

बेचू यहाँ से लौटा तो दूसरा ही मनुष्य हो गया था या यों कहिए कि वह फिर अपनी खोई हुई आत्मा को पा गया।

छह महीने बीत गए। संध्या का समय था। बेचू के लड़के मलखान के ब्याह की बातचीत करने के लिए मेहमान लोग आए हुए थे। बेचू स्त्री से कुछ सलाह करने के लिए घर में आया तो वह बोली — दारू कहाँ से आएगी? तुम्हारे पास कुछ है?

बेचू — मेरे पास जो कुछ था, वह तुम्हें पहले ही नहीं दे दिया था?

स्त्री — उससे तो मैं चावल, दाल, घी, यह सब सामान लाई। सात आदमियों का खाना बनाना हैं। सब उठ गए।

बेचू — तो फिर मैं क्या करूँ?

स्त्री — बिना दारू लिए वह लोग भला खाने उठेंगे? कितनी नामूसी होगी।

बेचू — नामूसी हो चाहे बदनामी हो, दारू लाना मेरे बस की बात नहीं। यही न होगा, ब्याह न ठीक होगा, न सही।

स्त्री — यह दुशाला धुलने के लिए नहीं आया है? न हो किसी बनिए के यहाँ गिरवी रखकर चार-पाँच रुपए ले आओ, दो-तीन दिन में छुड़ा लेना, किसी तरह मरजाद तो निभानी चाहिए? सब कहेंगे, नाम बड़े दरसन थोड़े। दारू तक न दे सका।

बेचू — कैसी बात कहती हो। यह दुशाला मेरा है?

स्त्री — किसी का हो, इस बखत काम निकाल लो। कौन किसी से कहने जाता है।

बेचू — न, यह मुझसे न होगा, चाहे दारू मिले या न मिले।

यह कहकर बाहर चला आया। दोबारा भीतर गया तो देखा स्त्री जमीन से खोदकर कुछ निकाल रही है। उसे देखते ही गड्ढे का आँचल से छिपा लिया?

बेचू मुस्कराता हुआ बाहर चला आया।

# नाग-पूजा

प्रातःकाल था। आषाढ़ का पहला दौंगड़ा निकल गया था। कीट-पतंग चारों तरफ रेंगते दिखायी देते थे। तिलोत्तमा ने वाटिका की ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे जैसे साबुन से मैने कपड़े निखर जाते हैं। उन पर एक विचित्र आध्यात्मिक शोभा छायी हुई थी मानों योगीवर आनन्द में मग्न पड़े हों। चिड़ियों में असाधारण चंचलता थी। डाल-डाल, पात-पात चहकती फिरती थीं। तिलोत्तमा बाग में निकल आयी। वह भी इन्हीं पक्षियों की भाँति चंचल हो गयी थी। कभी किसी पौधे की देखती, कभी किसी फूल पर पड़ी हुई जल की बूँदों को हिलाकर अपने मुँह पर उनके शीतल छींटे डालती। लाज बीरबहूटियाँ रेंग रही थी। वह उन्हें चुनकर हथेली पर रखने लगी। सहसा उसे एककाला वृहत्काय साँप रेंगता दिखायी-दिया। उसने चिल्लाकर कहा — अम्माँ, नागजी जा रहे हैं। लाओ थोड़ा-सा दूध उनके लिए कटोरे में रख दूँ।

अम्माँ ने कहा — जाने दो बेटी, हवा खाने निकले होंगे।

तिलोत्तमा — गर्मियों में कहाँ चले जाते हैं? दिखायी नहीं देते।

माँ — कहीं जाते नहीं बेटी, अपनी बाँबी में पड़े रहते हैं।

तिलोत्तमा — और कहीं नहीं जाते?

माँ — बेटी, हमारे देवता है और कहीं क्यों जायेंगे? तुम्हारे जन्म के साल से ये बराबर यही दिखायी देते हैं। किसी से नही बोलते। बच्चा पास से निकल जाय, पर जरा भी नहीं ताकते। आज तक कोई चुहिया भी नहीं पकड़ी।

तिलोत्तमा — तो खाते क्या होंगे?

माँ — बेटी, यह लोग हवा पर रहते हैं। इसी से इनकी आत्मा दिव्य हो जाती है। अपने पूर्वजन्म की बातें इन्हें याद रहती हैं। आनेवाली बातों को भी जानते हैं। कोई बड़ा योगी जब अहंकार करने लगता है तो उसे दंडस्वरुप इस योनि में जन्म लेना पड़ता है। जब तक प्रायश्चित पूरा नहीं होता तब तक वह इस योनि में रहता है। कोई-कोई तो सौ-सौ, दो-दो सौ वर्ष तक जीते रहते हैं।

तिलोत्तमा — इसकी पूजा न करो तो क्या करें।

माँ — बेटी, कैसी बच्चों की-सी बातें करती हो। नाराज हो जायँ तो सिर पर न जाने क्या विपत्ति आ पड़े। तेरे जन्म के साल पहले-पहल दिखायी दिये थे। तब से साल में दस-पाँच बार

अवश्य दर्शन दे जाते हैं। इनका ऐसा प्रभाव है कि आज तक किसी के सिर में दर्द तक नहीं हुआ।

## 2

कई वर्ष हो गये। तिलोत्तमा बालिका से युवती हुई। विवाह का शुभ अवसर आ पहुँचा। बारात आयी, विवाह हुआ, तिलोत्तमा के पति-गृह जाने का मुहूर्त आ पहुँचा।

नयी वधू का श्रृंगार हो रहा था। भीतर-बाहर हलचल मची हुई थी, ऐसा जान पड़ता था भगदड़ पड़ी हुई है। तिलोत्तमा के हृदय में वियोग दुःख की तरंगें उठ रही हैं। वह एकांत में बैठकर रोना चाहती है। आज माता-पिता, भाईबन्द, सखियाँ-सहेलियाँ सब छूट जायेगी। फिर मालूम नहीं कब मिलने का संयोग हो। न जाने अब कैसे आदमियों से पाला पड़ेगा। न जाने उनका स्वभाव कैसा होगा। न जाने कैसा बर्ताव करेंगे। अम्माँ की आँखें एक क्षण भी न थमेंगी। मैं एक दिन के लिए कही, चली जाती थी तो वे रो-रोकर व्यथित हो जाती थी। अब यह जीवनपर्यन्त का वियोग कैसे सहेंगी? उनके सिर में दर्द होता था जब तक मैं धीरे-धीरे न मलूँ, उन्हें किसी तरह कल-चैन ही न पड़ती थी। बाबूजी

को पान बनाकर कौन देगा? मैं जब तक उनका भोजन न बनाऊँ, उन्हें कोई चीज रुचती ही न थी? अब उनका भोजन कौन बनायेगा? मुझसे इनको देखे बिना कैसे रहा जायगा? यहाँ जरा सिर में दर्द भी होता था तो अम्माँ और बाबूजी घबरा जाते थे। तुरंत बैद-हकीम आ जाते थे। वहाँ न जाने क्या हाल होगा। भगवान् बन्द घर में कैसे रहा जायगा? न जाने वहाँ खुली छत है या नहीं। होगी भी तो मुझे कौन सोने देगा? भीतर घुट-घुट कर मरूँगी। जगने में जरा देर हो जायगी तो ताने मिलेंगे। यहाँ सुबह को कोई जगाता था, तो अम्माँ कहती थीं, सोने दो। कच्ची नींद जाग जायगी तो सिर में पीड़ा होने लगेगी। वहाँ व्यंग सुनने पड़ेंगे, बहू आलसी है, दिन भर खाट पर पड़ी रहती है। वे (पति) तो बहुत सुशील मालूम होते हैं। हाँ, कुछ अभिमान अवश्य हैं। कही उनका स्वभाव निठुर हुआ तो...?

सहसा उनकी माता ने आकर कहा — बेटी, तुमसे एक बात कहने की याद न रही। वहाँ नाग-पूजा अवश्य करती रहना। घर के और लोग चाहे मना करें; पर तुम इसे अपना कर्तव्य समझना। अभी मेरी आँखें जरा-जरा झपक गयी थीं। नाग बाबा ने स्वप्न में दर्शन दिये।

तिलोत्तमा — अम्माँ, मुझे भी उनके दर्शन हुए हैं, पर मुझे तो उन्होंने बड़ा विकाल रुप दिखाया। बड़ा भयंकर स्वप्न था।

माँ — देखना, तुम्हारे घर में कोई साँप न मारने पाये। यह मंत्र नित्य पास रखना।

तिलोत्तमा अभी कुछ जवाब न देने पायी थी कि अचानक बारात की ओर से रोने के शब्द सुनायी दिये, एक क्षण में हाहाकार मच गया। भयंकर शोक-घटना हो गयी। वर को साँप ने काट लिया। वह बहू को विदा कराने आ रहा था। पालकी में मसनद के नीचे एक काला साँप छिपा हुआ था। वर ज्यों ही पालकी में बैठा, साँप ने काट लिया।

चारों ओर कुहराम मच गया। तिलोत्तमा पर तो मनों वज्रपात हो गया। उसकी माँ सिर पीट-पीट रोने लगी। उसके पिता बाबू जगदीशचंद्र मूर्च्छित होकर गिर पड़े। हृदयरोग से पहले ही से ग्रस्त थे। झाड़-फूँक करने वाले आये, डाक्टर बुलाये गये, पर विष घातक था। जरा देर में वर के होंठ नीले पड़ गये, नख काले हो गये, मूर्छा आने लगी। देखते-देखते शरीर ठंडा पड़ गया। इधर उषा की लालिमा ने प्रकृति को आलोकित किया, उधर टिमटिमाता हुआ दीपक बुझ गया।

जैसे कोई मनुष्य बोरों से लदी हुई नाव पर बैठा हुआ मन में झुँझलाता है कि यह और तेज क्यों नहीं चलती, कहीं आराम से बैठने की जगह नहीं, राह इतनी हिल क्यों रही हैं, मैं व्यर्थ ही

इसमें बैठा; पर अकस्मात् नाव को भँवर में पड़ते देख कर उसके मस्तूल से चिपट जाता है, वही दशा तिलोत्तमा की हुई। अभी तक वह वियोगी दुःख में ही मग्न थी, ससुराल के कष्टों और दुर्व्यवस्थाओं की चिंताओं में पड़ी हुई थी। पर, अब उसे होश आया की इस नाव के साथ मैं भी डूब रही हूँ। एक क्षण पहले वह कदाचित् जिस पुरुष पर झुँझला रही थी, जिसे लुटेरा और डाकू समझ रही थी, वह अब कितना प्यारा था। उसके बिना अब जीवन एक दीपक था; बुझा हुआ। एक वृक्ष था; फल-फूल विहीन। अभी एक क्षण पहले वह दूसरों की ईर्ष्या का कारण थी, अब दया और करुणा की।

थोड़े ही दिनों में उसे ज्ञात हो गया कि मैं पति-विहीन होकर संसार के सब सुखों से वंचित हो गयी।

## 3

एक वर्ष बीत गया। जगदीशचंद्र पक्के धर्मावलम्बी आदमी थे, पर तिलोत्तमा का वैधव्य उनसे न सहा गया। उन्होंने तिलोत्तमा के पुनर्विवाह का निश्चय कर लिया। हँसनेवालों ने तालियाँ बजायीं पर जगदीश बाबू ने हृदय से काम लिया। तिलोत्तमा पर सारा

घर जान देता था। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात न होने पाती यहाँ तक कि वह घर की मालकिन बना दी गई थी। सभी ध्यान रखते कि उसकी रंज ताजा न होने पाये। लेकिन उसके चेहरे पर उदासी छायी रहती थी, जिसे देख कर लोगों को दुःख होता था। पहले तो माँ भी इस सामाजिक अत्याचार पर सहमत न हुई; लेकिन बिरादरीवालों का विरोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया उसका विरोध ढीला पड़ता गया। सिद्धांत रुप से तो प्राय: किसी को आपत्ति न थी किन्तु उसे व्यवहार में लाने का साहस किसी में न था। कई महीनों के लगातार प्रयास के बाद एक कुलीन सिद्धांतवादी, सुशिक्षित वर मिला। उसके घरवाले भी राजी हो गये। तिलोत्तमा को समाज में अपना नाम बिकते देख कर दुःख होता था। वह मन में कुढ़ती थी कि पिताजी नाहक मेरे लिए समाज में नक्कू बन रहे हैं। अगर मेरे भाग्य में सुहाग लिखा होता तो यह वज्र ही क्यों गिरता। तो उसे कभी-कभी ऐसी शंका होती थी कि मैं फिर विधवा हो जाऊँगी। जब विवाह निश्चित हो गया और वर की तस्वीर उसके सामने आयी तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। चेहरे से कितनी सज्जनता, कितनी दृढ़ता, कितनी विचारशीलता टपकती थी। वह चित्र को लिए हुए माता के पास गयी और शर्म से सिर झुकाकर बोली — अम्माँ, मुँह मुझे तो न खोलना चाहिए, पर अवस्था ऐसी आ पड़ी है कि बिना मुँह खोले

रहा नहीं जाता। आप बाबूजी को मना कर दें। मैं जिस दशा में हूँ संतुष्ट हूँ। मुझे ऐसा भय हो रहा है कि अबकी फिर वही शोक घटना....

माँ ने सहमी हुई आँखों से देख कर कहा — बेटी कैसी अशगुन की बात मुँह से निकाल रही हो। तुम्हारे मन में भय समा गया है, इसी से यह भ्रम होता है। जो होनी थी, वह हो चुकी। अब क्या ईश्वर क्या तुम्हारे पीछे पड़े ही रहेंगे?

तिलोत्तमा — हाँ, मुझे तो ऐसा मालूम होता है?

माँ — क्यों, तुम्हें ऐसी शंका क्यों होती है?

तिलोत्तमा — न जाने क्यो? कोई मेरे मन मे बैठा हुआ कह रहा है कि फिर अनिष्ट होगा। मैं प्रायः: नित्य डरावने स्वप्न देखा करती हूँ। रात को मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई प्राणी जिसकी सूरत साँप से बहुत मिलती-जुलती है मेरी चारपाई के चारों ओर घूमता है। मैं भय के मारे चुप्पी साध लेती हूँ। किसी से कुछ कहती नहीं।

माँ ने समझा यह सब भ्रम है। विवाह की तिथि नियत हो गयी। यह केवल तिलोत्तमा का पुनर्संस्कार न था, बल्कि समाज-सुधार का एक क्रियात्मक उदाहरण था। समाज-सुधारकों के दल दूर से विवाह सम्मिलित होने के लिए आने लगे, विवाह वैदिक रीति से

हुआ। मेहमानों ने खूब व्याख्यान दिये। पत्रों ने खूब आलोचनाएँ कीं। बाबू जगदीशचंद्र के नैतिक साहस की सराहना होने लगी। तीसरे दिन बहू के विदा होने का मुहूर्त था।

जनवासे में यथासाध्य रक्षा के सभी साधनों से काम लिया गया था। बिजली की रोशनी से सारा जनवास दिन-सा हो गया था। भूमि पर रेंगती हुई चींटी भी दिखाई देती थी। केशों में न कहीं शिकन थी, न सिलवट और न झोल। शामियाने के चारों तरफ कनातें खड़ी कर दी गयी थी। किसी तरफ से कीड़ो-मकोड़ों के आने की सम्भावना न थी; पर भावी प्रबल होती है। प्रातःकाल के चार बजे थे। तारागणों की बारात विदा हो रही थी। बहू की विदाई की तैयारी हो रही थी। एक तरफ शहनाइयाँ बज रही थी। दूसरी तरफ विलाप की आर्त्तध्वनि उठ रही थी। पर तिलोत्तमा की आँखों में आँसू न थे, समय नाजुक था। वह किसी तरह घर से बाहर निकल जाना चाहती थी। उसके सिर पर तलवार लटक रही थी। रोने और सहेलियों से गले मिलने में कोई आनन्द न था। जिस प्राणी का फोड़ा चिलक रहा हो उसे जर्राह का घर बाग में सैर करने से ज्यादा अच्छा लगे, तो क्या आश्चर्य है।

वर को लोगों ने जगाया। बाजा बजने लगा। वह पालकी में बैठने को चला कि वधू को विदा करा लाये। पर जूते में पैर

डाला ही था कि चीख मार कर पैर खींच लिया। मालूम हुआ, पाँव चिनगारियों पर पड़ गया। देखा तो एक काला साँप जूते में से निकलकर रेंगता चला जाता था। देखते-देखते गायब हो गया। वर ने एक सर्द आह भरी और बैठ गया। आँखों में अंधेरा छा गया।

एक क्षण में सारे जनवासे में खबर फैली गयी, लोग दौड़ पड़े। औषधियाँ पहले ही रख ली गयी थीं। साँप का मंत्र जाननेवाले कई आदमी बुला लिये गये थे। सभी ने दवाइयाँ दीं। झाड़-फूँक शुरु हुई। औषधियाँ भी दी गयी, पर काल के समान किसी का वश न चला। शायद मौत साँप का वेश धर कर आयी थी। तिलोत्तमा ने सुना तो सिर पीट लिया। वह विकल होकर जनवासे की तरफ दौड़ी। चादर ओढ़ने की भी सुधि न रही। वह अपने पति के चरणों को माथे से लगाकर अपना जन्म सफल करना चाहती थी। घर की स्त्रियों ने रोका। माता भी रो-रोकर समझाने लगी। लेकिन बाबू जगदीशचन्द्र ने कहा-कोई हरज नहीं, जाने दो। पति का दर्शन तो कर ले। यह अभिलाषा क्यों रह जाय। उसी शोकान्वित दशा में तिलोत्तमा जनवासे में पहुँची, पर वहाँ उसकी तस्कीन के लिए मरनेवाले की उल्टी साँसें थी। उन अधखुले नेत्रों में असह्य आत्मवेदना और दारुण नैराश्य।

# 4

इस अद्भुत घटना का समाचार दूर-दूर तक फैल गया। जड़वादीगण चकित थे, यह क्या माजरा है। आत्मवाद के भक्त ज्ञातभाव से सिर हिलाते थे मानों वे चित्रकालदर्शी हैं। जगदीशचंद्र ने नसीब ठोंक लिया। निश्चय हो गया कि कन्या के भाग्य में विधवा रहना ही लिखा है। नाग की पूजा साल में दो बार होने लगी। तिलोत्तमा के चरित्र में भी एक विशेष अन्तर दीखने लगा। भोग और विहार के दिन भक्ति और देवाराधना में कटने लगे। निराश प्राणियों का यही अवलम्ब है।

तीन साल बीत थे कि ढाका विश्वविद्यालय के अध्यापक ने इस किस्से को फिर ताजा किया। वे पशु-शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने साँपों के आचार-व्यवहार का विशेष रीति से अध्ययन किया। वे इस रहस्य को खोलना चाहते थे। जगदीशचंद्र को विवाह का संदेश भेजा। उन्होंने टाल-मटोल किया। दयाराम ने और भी आग्रह किया। लिखा, मैंने वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए यह निश्चय किया है। मैं इस विषधर नाग से लड़ना चाहता हूँ। वह अगर सौ दाँत ले कर आये तो भी मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, वह मुझे काट कर आप ही मर जायेगा। अगर वह मुझे काट भी

ले तो मेरे पास ऐसे मंत्र और औषधियाँ है कि मैं एक क्षण में उसके विष को उतार सकता हूँ। आप इस विषय में कुछ चिंता न कीजिए। मैं विष के लिए अजेय हूँ। जगदीशचंद्र को अब कोई उज्र न सूझा। हाँ, उन्होंने एक विशेष प्रयत्न यह किया कि ढाके में ही विवाह हो। अतएव वे अपने कुटुम्बियों को साथ ले कर विवाह के एक सप्ताह पहले गये। चलते समय अपने संदूक, बिस्तर आदि खूब देखभाल कर रखे कि साँप कहीं उनमें उनमें छिप कर न बैठा जाय। शुभ लगन में विवाह-संस्कार हो गया। तिलोत्तमा विकल हो रही थी। मुख पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था, पर संस्कार में कोई विघ्न-बाधा न पड़ी। तिलोत्तमा रो धो-कर ससुराल गयी। जगदीशचंद्र घर लौट आये, पर ऐसे चिंतित थे जैसे कोई आदमी सराय मे खुला हुआ संदूक छोड़ कर बाजार चला जाय।

तिलोत्तमा के स्वभाव में अब एक विचित्र रुपांतर हुआ। वह औरों से हँसती-बोलती आराम से खाती-पीती सैर करने जाती, थियेटरों और अन्य सामाजिक सम्मेलनों में शरीक होती। इन अवसरों पर प्रोफेसर दया राम से भी बड़े प्रेम का व्यवहार करती, उनके आराम का बहुत ध्यान रखती। कोई काम उनकी इच्छा के विरुद्ध न करती। कोई अजनबी आदमी उसे देखकर कह सकता था, गृहिणी हो तो ऐसी हो। दूसरों की दृष्टि में इस दम्पति का

जीवन आदर्श था, किन्तु आंतरिक दशा कुछ और ही थी। उनके साथ शयनागार में जाते ही उसका मुख विकृत हो जाता, भौंहें तन जाती, माथे पर बल पड़ जाते, शरीर अग्नि की भाँति जलने लगता, पलकें खुली रह जाती, नेत्रों से ज्वाला-सी निकलने लगती और उसमें से झुलसती हुई लपटें निकलती, मुख पर कालिमा छा जाती और यद्यपि स्वरुप में कोई विशेष अन्तर न दिखायी देता; पर न जाने क्यों भ्रम होने लगता, यह कोई नागिन है। कभी-कभी वह फुँकारने भी लगतीं। इस स्थिति में दयाराम को उनके समीप जाने या उससे कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती। वे उसके रुप-लावण्य पर मुग्ध थे, किन्तु इस अवस्था में उन्हें उससे घृणा होती। उसे इसी उन्माद के आवेग में छोड़ कर बाहर निकल आते। डाक्टरों से सलाह ली, स्वयं इस विषय की कितनी ही किताबों का अध्ययन किया; पर रहस्य कुछ समझ में न आया, उन्हें भौतिक विज्ञान में अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करनी पड़ी।

उन्हें अब अपना जीवन असह्य जान पड़ता। अपने दुस्साहस पर पछताते। नाहक इस विपत्ति में अपनी जान फँसायी। उन्हें शंका होने लगी कि अवश्य कोई प्रेत-लीला है! मिथ्यावादी न थे, पर जहाँ बुद्धि और तर्क का कुछ वश नहीं चलता, वहाँ मनुष्य विवश होकर मिथ्यावादी हो जाता है।

शनैः-शनैः उनकी यह हालत हो गयी कि सदैव तिलोत्तमा से सशंक रहते। उसका उन्माद, विकृत मुखाकृति उनके ध्यान से न उतरते। डर लगता कि कहीं यह मुझे मार न डाले। न जाने कब उन्माद का आवेग हो। यह चिन्ता हृदय को व्यथित किया करती। हिप्नाटिज्म, विद्युत्शक्ति और कई नये आरोग्यविधानों की परीक्षा की गयी। उन्हें हिप्नाटिज्म पर बहुत भरोसा था; लेकिन जब यह योग भी निष्फल हो गया तो वे निराश हो गये।

## 5

एक दिन प्रोफेसर दयाराम किसी वैज्ञानिक सम्मेलन में गए हुए थे। लौटे तो बारह बज गये थे। वर्षा के दिन थे। नौकर-चाकर सो रहे थे। वे तिलोत्तमा के शयनगृह में यह पूछने गये कि मेरा भोजन कहाँ रखा है। अन्दर कदम रखा ही था कि तिलोत्तमा के सिरहाने की ओर उन्हें एक अति भीमकाय काला साँप बैठा हुआ दिखायी दिया। प्रो. साहब चुपके से लौट आये। अपने कमरे में जाकर किसी औषधि की एक खुराक पी और पिस्तौल तथा साँगा लेकर फिर तिलोत्तमा के कमरे में पहुँचे। विश्वास हो गया कि यह वही मेरा पुराना शत्रु है। इतने दिनों में टोह लगाता हुआ

यहाँ आ पहुँचा। पर इसे तिलोत्तमा से क्यों इतना स्नेह है। उसके सिरहाने यों बैठा हुआ है मानो कोई रस्सी का टुकड़ा है। यह क्या रहस्य है! उन्होंने साँपों के विषय में बड़ी अद्‌भुत कथाएँ पढ़ी और सुनी थी, पर ऐसी कुतूहलजनक घटना का उल्लेख कहीं न देखा था। वे इस भाँति सशस्त्र हो कर फिर कमरे में पहुँचे तो साँप का पात न था। हाँ, तिलोत्तमा के सिर पर भूत सवार हो गया था। वह बैठी हुई आग्नेय हुई नेत्रों से द्वार की ओर ताक रही थी। उसके नयनों से ज्वाला निकल रही थी, जिसकी आँच दो गज तक लगती। इस समय उन्माद अतिशय प्रचंड था। दयाराम को देखते ही बिजली की तरह उन पर टूट पड़ी और हाथों से आघात करने के बदले उन्हें दाँतों से काटने की चेष्टा करने लगी। इसके साथ ही अपने दोनों हाथ उनकी गरदन डाल दिये। दयाराम ने बहुतेरा चाहा, ऐड़ी-चोटी तक का जोर लगा कि अपना गला छुड़ा लें, लेकिन तिलोत्तमा का बाहुपाश प्रतिक्षण साँप की केड़ली की भाँति कठोर एवं संकुचित होता जाता था। उधर यह संदेह था कि इसने मुझे काटा तो कदाचित् इसे जान से हाथ धोना पड़े। उन्होंने अभी जो औषधि पी थी, वह सर्प विष से अधिक घातक थी। इस दशा में उन्हें यह शोकमय विचार उत्पन्न हुआ। यह भी कोई जीवन है कि दम्पति का उत्तरदायित्व तो सब सिर पर सवार, उसका सुख नाम का नहीं, उलटे रात-दिन

जान का खटका। यह क्या माया है। वह साँप कोई प्रेत तो नही है जो इसके सिर आकर यह दशा कर दिया करता है। कहते है कि ऐसी अवस्था में रोगी पर चोट की जाती है, वह प्रेत पर ही पड़ती हैं नीचे जातियों में इसके उदाहरण भी देखे हैं। वे इसी हैंस-बैस में पड़े हुए थे कि उनका दम घुटने लगा। तिलोत्तमा के हाथ रस्सी के फंदे की भाँति उनकी गरदन को कस रहे थे। वे दीन असहाय भाव से इधर-उधर ताकने लगे। क्योंकर जान बचे, कोई उपाय न सूझ पड़ता था। साँस लेना दुस्तर हो गया, देह शिथिल पड़ गयी, पैर थरथराने लगे। सहसा तिलोत्तमा ने उनके बाँहों की ओर मुँह बढ़ाया। दयाराम काँप उठे। मृत्यु आँखें के सामने नाचने लगी। मन में कहा — यह इस समय मेरी स्त्री नहीं विषैली भयंकर नागिन है: इसके विष से जान बचानी मुश्किल है। अपनी औषधि पर जो भरोसा था, वह जाता रहा। चूहा उन्मत्त दशा में काट लेता है तो जान के लाले पड़ जाते है। भगवान्? कितना विकराल स्वरुप है? प्रत्यक्ष नागिन मालूम हो रही है। अब उलटी पड़े या सीधी इस दशा का अन्त करना ही पड़ेगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि अब गिरा ही चाहता हूँ। तिलोत्तमा बार-बार साँप की भाँति फुँकार मार कर जीभ निकालते हुए उनकी ओर झपटती थी। एकाएक वह बड़े कर्कश स्वर से बोली — 'मूर्ख? तेरा इतना साहस कि तू इस सुंदरी से प्रेमालिंगन करे।' यह

कहकर वह बड़े वेग से काटने को दौड़ी। दयाराम का धैर्य जाता रहा। उन्होंने दाहिना हाथ सीधा किया और तिलोत्तमा की छाती पर पिस्तौल चला दिया। तिलोत्तमा पर कुछ असर न हुआ। बाहें और भी कड़ी हो गयी; आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी। दयाराम ने दूसरी गोली दाग दी। यह चोट पूरी पड़ी। तिलोत्तमा का बाहु-बंधन ढीला पड़ गया। एक क्षण में उसके हाथ नीचे को लटक गये, सिर झुक गया और वह भूमि पर गिर पड़ी।

तब वह दृश्य देखने में आया जिसका उदाहरण कदाचित् अलिफलैला चंद्रकांता में भी न मिले। वही पलंग के पास, जमीन पर एक काला दीर्घकाय सर्प पड़ा तड़प रहा था। उसकी छाती और मुँह से खून की धारा बह रही थी।

दयाराम को अपनी आँखों पर विश्वास न आता था। यह कैसी अदभुत प्रेत-लीला थी! समस्या क्या है किससे पूछूँ? इस तिलस्म को तोड़ने का प्रयत्न करना मेरे जीवन का एक कर्त्तव्य हो गया। उन्होंने साँगे से साँप की देह मे एक कोचा मारा और फिर वे उसे लटकाये हुए आँगन में लाये। बिलकुल बेदम हो गया था। उन्होंने उसे अपने कमरे में ले जाकर एक खाली संदूक में बन्द कर दिया। उसमें भुस भरवा कर बरामदे में लटकाना चाहते थे। इतना बड़ा गेहुँवन साँप किसी ने न देखा होगा।

तब वे तिलोत्तमा के पास गये। डर के मारे कमरे में कदम रखने की हिम्मत न पड़ती थी। हाँ, इस विचार से कुछ तस्कीन होती थी कि सर्प प्रेत मर गया है तो उसकी जान बच गयी होगी। इस आशा और भय की दशा में वे अन्दर गये तो तिलोत्तमा आईने के सामने खड़ी केश सँवार रही थी।

दयाराम को मानो चारों पदार्थ मिल गये। तिलोत्तमा का मुख-कमल खिला हुआ था। उन्होंने कभी उसे इतना प्रफुल्लित न देखा था। उन्हें देखते ही वह उनकी ओर प्रेम से चली और बोली — आज इतनी रात तक कहाँ रहे?

दयाराम प्रेमोन्मत्त हो कर बोले — एक जलसे में चला गया था। तुम्हारी तबीयत कैसी है? कहीं दर्द नहीं है?

तिलोत्तमा ने उनको आश्चर्य से देख कर पूछा — तुम्हें कैसे मालूम हुआ? मेरी छाती में ऐसा दर्द हो रहा है, जैसे चिलक पड़ गयी हो।

•••